स्व. ब्र. सीतलप्रसाद स्मारक ग्रंथमाला

सारे दिगम्बर जैन समाजमें अनेक विद्या-संस्थाओंको जन्म दिलानेवाले, अनेक धर्म-ग्रन्थोंके अनुवादक, टीकाकार, लेखक व सम्पादक तथा "जैनमित्र" की ४० वर्षोंतक अविरल व अथक सेवा करनेवाले तथा रात दिन जैनसमाजकी अटूट सेवा करनेवाले श्रीमान् जैनधर्मभूषण, धर्मदिवाकर, श्री. ब्र० सीतलप्रसादजी (लखनऊ)का दुःखद स्वर्गवास लखनऊमें जब वीर सं० २४६८ (१५ वर्षपर) में हुआ तब हमने आपकी जैनधर्म व जाति-सेवाका स्थायी स्मारक करनेके लिये आपके नामकी एक ग्रन्थमाला निकालनेके लिये कमसे कम १००००) की अपील 'जैनमित्र' द्वारा की थी। लेकिन उसमें सिर्फ करीब ६०००) आये थे तोभी हमने जैसे तैसे प्रबन्ध करके इस ग्रन्थमालाका प्रारम्भ वीर सं० २४७० में किया था जो आजतक चालू है व जिसके द्वारा आजतक ६ ग्रन्थ प्रकट करके 'जैनमित्र'के ग्राहकोंको भेंट दिये जा चुके हैं—

१—स्वतन्त्रताका सोपान—(ब्र० सीतल) अप्राप्य ३)

२—श्री आदिपुराण—(ऋषभ पुराण) स्व० कवि पं० तुलसीदासजी जैन देहली कृत छन्दोवद्ध ४)

३—चन्द्रप्रभ पुराण—(स्व० कविरत्न पं० हीरालालजी जैन बड़ौत रचित छन्दोवद्ध) ५)

४—श्री यशोधर चरित्र—(महाकवि पुष्पदंत ग्रन्थका पं० हजारीलालजी कृत हिन्दी अनुवाद) ४)

५—सुभौम चक्रवर्ति चरित्र—(भ० रत्नचन्द्रजी विरचित मूल व लालारामजी शास्त्रीकृत हिन्दी टीका) ३)

६—श्री नेमिनाथ पुराण—(स्व० ब्र० नेमिदत्त रचित संस्कृत ग्रन्थका स्व० पं० उदयलालजी कासलीवाल कृत हिन्दी अनुवाद) ४)

और अब यह सातवाँ ग्रन्थ—

श्री प्रश्नोत्तर श्रावकाचार—

—जो स्व० आचार्य श्री सकलकीर्तिजी विरचित संस्कृत ग्रन्थकी पं० लालारामजी शास्त्री धर्मरत्नकी यह हिन्दी वचनिका है व जो ३० वर्ष हुए हमने ही मूल सहित प्रकट किया था, जो अभी अप्राप्य है उसको, दूसरीवार प्रकट करके "जैनमित्र" साप्ताहिकपत्रके ५८वें वर्षके ग्राहकोंको भेंटमें दिया जाता है।

"जैनमित्र" की संख्या बहुत अधिक है व ६०००) के स्थायी फण्डमें क्या हो सकता है ? अतः प्रत्येक ग्राहकसे सिर्फ १) अधिक लिया गया है, तब ही ऐसा महान ग्रन्थ उपहारमें दिया जा रहा है।

अभी भी यदि कोई श्रीमान् इस ग्रन्थमालामें बडी स्थायी रकम दान कर दें तो यह स्थायी फंड बढ़ सकता है।

'जैनमित्र' के ग्राहकोंको भेंट देनेके अतिरिक्त इस ग्रन्थकी कुछ प्रतियाएं विक्रयार्थ भी निकाली गई हैं। अतः इस दूसरी आवृत्तिका भी यथेष्ट प्रचार होसकेगा।

प्रथम आवृत्तिमें मूल श्लोक भी प्रकट किये थे लेकिन पृ० संख्या व व्यय बढ़ जानेके भयसे इसवार हिन्दी अनुवाद ही प्रकट किया गया है।

सूरत वीर सं० २४८३
पौष सुदी ५
ता. ६-१-५७

निवेदक—
मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
—प्रकाशक।

विषय सूची।

विषय

॥ ॐ ॥

आचार्य श्री सकलकीर्ति विरचित—

प्रश्नोत्तरश्रावकाचार

(भाषा वचनिका)

प्रथम सर्ग ।

जिनेशं वृषभं वंदे, वृषदं वृषनायकम् ।
वृषाय भुवनाधीशं, वृषतीर्थप्रवर्तकम् ॥ १ ॥

अर्थ—जो तीनों लोकोंके स्वामी हैं, धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति करनेवाले हैं, धर्मके स्वामी हैं और धर्मको देनेवाले हैं ऐसे श्री वृषभदेव जिनेन्द्रदेवको मैं (श्री सकलकीर्ति आचार्य) धर्मके लिये नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ जिन्होंने अपने वचनरूपी किरणोंसे मोहरूपी नींदको दूरकर संसारको जगा दिया अर्थात् भव्य जीवोंका मोह दूरकर मोक्षमार्गमें लगा दिया ऐसे श्री वर्द्धमानस्वामीको मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूं ॥ २ ॥ मैं अपने प्रारम्भ किये हुए ग्रन्थको पूर्ण करनेके लिये धर्मसाम्राज्यके स्वामी और भव्य जीवोंको सुख देनेवाले ऐसे शेष बाईस तीर्थंकरोंको भी नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥

जो ज्ञानावरणादि आठों कर्मोंसे रहित हैं, सम्यक्त्व आदि आठों गुणोंसे सुशोभित हैं और लोकाकाशके शिखरपर विराजमान हैं ऐसे श्री सिद्ध भगवानको मैं अपने कार्यकी सिद्धिके लिये नमस्कार करता हूँ ॥ ४ ॥ जो दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, वीर्याचार और

तपाचार इन पांचों आचारोंको स्वयं पालन करते हैं और अपने शिष्योंको पालन कराते हैं, ऐसे आचार्य परमेष्ठीके चरणकमलोंको मैं नमस्कार करता हूं ॥ ५ ॥ जो अङ्गपूर्व और प्रकीर्णक शास्त्रोंको स्वयं पढ़ते हैं और अन्य धर्मात्माओंको भी पढ़ाते हैं ऐसे उपाध्याय परमेष्ठीको मैं नमस्कार करता हूं ॥ ६ ॥ जो सवेरे दोपहर और शाम तीनों समय योग धारण करते हैं, मूलगुण और उत्तर गुणोंका पालन करते हैं तथा तप रूपी लक्ष्मीको सदा साथ रखते हैं अर्थात् सदा तपमें लीन रहते हैं, ऐसे साधु परमेष्ठीके चरणकमलोंको मैं नमस्कार करता हूं ॥ ७ ॥

जो वीतराग अरहंतदेवके मुखसे प्रगट हुई है, अङ्ग पूर्व आदि अनेक रूपसे जो विस्तृत हुई है और मुनिलोग सदा जिसकी आराधना करते रहते हैं ऐसी सरस्वतीदेवीको मैं अपनी बुद्धिको प्रसिद्ध करनेके लिये नमस्कार करता हूं ॥ ८ ॥ जो अङ्ग पूर्व आदि श्रुतज्ञानके पारगामी हैं और महा कवि हैं ऐसे गौतम आदि समस्त गणधरोंको मैं अपनी बुद्धि और ज्ञान बढ़ानेके लिये नमस्कार करता हूं ॥ ९ ॥ इस प्रकार मंगल कामनाके लिये देव सिद्धांत और श्रेष्ठ गुरुओंको नमस्कार कर मैं केवल धर्मके बहानेसे प्रश्नोत्तर श्रावकाचार नामके ग्रन्थको कहता हूं ॥१०॥ जो मतिज्ञान श्रुतज्ञानसहित है, श्रावकाचार पालन करनेमें तत्पर है, बुद्धिमान है और संवेग वैराग्यसे सुशोभित है उसको श्रावक कहते हैं ॥ ११ ॥ ऐसा कोई श्रावक केवल धर्म-श्रवणकी इच्छासे रत्नत्रयसे सुशोभित और सब तरहके परिग्रहोंसे रहित ऐसे निर्ग्रन्थ गुरुको नमस्कार कर पूछने लगा ॥ १२ ॥

प्रश्न—हे भगवन् ! अनेक दुःखोंसे भरे हुए और असार ऐसे इस अनादि संसारमें क्या सार है सो कृपाकर आज मुझसे कहिये ?

उत्तर—चारों गतिरूप बड़े बड़े भँवरोंसे शोभायमान इस संसाररूपी क्षार सागरमें संसारी जीवोंको गुणोंसे सुशोभित मनुष्य जन्म प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ वा सार है ॥ १३–१४ ॥

प्रश्न—हे भगवन्! इस मनुष्य जन्ममें भी क्या सार है जिससे यह मनुष्य जन्म सफल हो सके? मैं आपके श्रीमुखसे ये सब बात सुनना चाहता हूँ ॥ १५ ॥

उत्तर—इस मनुष्य जन्ममें भी श्रेष्ठ धर्मका प्राप्त होना ही परम सार है। यह धर्म ही संसाररूपी समुद्रसे पार करनेवाला है, सुखका परम निधि है और स्वर्ग-मोक्षके सुखोंको देनेवाला है, ऐसा श्री जिनेन्द्रदेवने कहा है ॥ १६ ॥

प्रश्न—हे देव! वह धर्म एक ही प्रकारका है या दो प्रकारका है सो मैं कुछ नहीं जानता हूँ। मैंने तो अन्य शास्त्रोंमें अनेक प्रकारका धर्म सुना है।

उत्तर—जिस प्रकार जन्मांध पुरुष सूर्यको नहीं जानते उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव पदार्थोंके स्वरूपको नहीं पहिचानते। ऐसे तत्त्वहीन पुरुष पापको ही धर्म कह देते हैं। जिस प्रकार चतुर पुरुष सुवर्णादिकको घिस देखकर लेते हैं उसी प्रकार ज्ञानी जीवोंको परीक्षाकर धर्मको स्वीकार करना चाहिये ॥ १७–१९ ॥ जिस प्रकार भैंसका दूध और आकका दूध दोनों ही नामसे दूध हैं तथा दोनों ही सफेद हैं तथापि उनके स्वादमें बड़ा भारी अन्तर है, उसी प्रकार बुद्धिमानी लोग धर्मके स्वरूपको भी अनेक प्रकारका बतलाते हैं ॥ २० ॥

जो रागद्वेष रहित हैं वे सर्वज्ञ कहलाते हैं, उन सर्वज्ञका कहा हुआ जो धर्म है वही धर्म कहलाता है। अन्य रागद्वेषसे परिपूर्ण लोगोंके द्वारा कहा हुआ धर्म कभी धर्म नहीं हो सकता ॥ २१ ॥

श्री सर्वज्ञदेवने जैन शास्त्रोंमें वह धर्म दो प्रकारका वतलाया है–एक श्रावकोंके पालन करने योग्य श्रावकाचार और दूसरा मुनियोंके पालन करने योग्य यत्याचार ॥ २२ ॥ उनमेंसे पहिला श्रावकाचार धर्म एक देशरूप है, सुगम है और उसे श्रावक लोग अपने घरके व्यापार आदि भारको चलाते हुए भी इस संसारमें अच्छी तरह पालन कर सकते हैं। दूसरे यत्याचार धर्मको घोर परीषहोंको सहन करनेवाले मुनिराज ही पालन कर सकते हैं। उसे अन्य दीन गृहस्थी मनुष्य कभी पालन नहीं कर सकते ॥ २३–२४ ॥

प्रश्न—हे स्वामिन्! आप कृपाकर श्रावकचारका वर्णन कीजिये जिसके सुननेसे मेरा आत्मा धर्म पालन करनेमें तत्पर हो और सुखी हो ॥ २५ ॥

उत्तर—हे वत्स! तू चित्त लगाकर सुन। जो श्री जिनेंद्रदेवने सातवें उपासकाध्ययन नामके अंगमें वर्णन किया है वह सव मैं कहता हूं ॥२६॥ यह उपासकाध्ययनांग वहुत वड़ा है और अंगोंमें सारभूत है। भगवान् वृषभदेवने जो अपनी दिव्यध्वनिमें कहा था उसका अर्थ लेकर श्री वृषभसेन गणधरने उसकी रचना की है ॥२७॥ उसके सव पदोंकी संख्या ग्यारह लाख सत्तर हजार है तथा एक एक पदमें सोलहसौ चौंतीस करोड़ (सोलह अरव चौंतीस करोड़) तेरासी लाख सात हजार आठसौ अठासी वर्ण हैं ॥ २८–३० ॥

यह श्रावकाचार धर्म जैसा श्री वृषभदेवने निरूपण किया था वैसा ही अजितनाथ आदि सव तीर्थंकरोंने निरूपण किया था ॥३१॥ श्रावकोंके सुखके लिये श्री वर्द्धमान स्वामीने भी निरूपण किया, और गौतम गणधरने भी निरूपण किया ॥३२॥ मुनिराज श्री सुधर्माचार्य तथा श्री जम्बूस्वामीने अपने केवलज्ञानके द्वारा इस सव गृहस्थाचारका निरूपण किया ॥३३॥ इनके अनन्तर भव्य जीवोंका उपकार करनेके

लिये द्वादशांग श्रुतज्ञानको जाननेवाले विष्णु आदि श्रुतकेवलियोंने भी इस अंगका निरूपण किया ॥ ३४ ॥ श्रुतकेवलियोंके बाद काल दोषसे मनुष्योंकी आयु बुद्धि शरीर संहनन आदि घट जानेके कारण धर्मको स्थिर रखनेवाला अंग पूर्वोंका ज्ञान भी कम होगया ॥ ३५ ॥ तब श्री कुन्दकुन्द आदि अनेक आचार्योंने इस श्रावकाचारका वर्णन किया । इस प्रकार अनुक्रमसे जिनका वर्णन चला आया है ऐसे महाशास्त्रोंको जानकर धर्मके कारण भव्य जीवोंको सुख देनेवाले और ज्ञानको बढ़ानेवाले शास्त्रको मैं कहता हूं ॥ ३६–३७ ॥

जो यह शास्त्र पहिलेके बड़े बडे बुद्धिमान और चतुर आचार्योंने निरूपण किया है उसे मैं यद्यपि अपने थोड़े ज्ञानसे कह नहीं सकता तथापि उन आचार्योंके चरणकमलोंको नमस्कार करनेसे जो पुण्य प्राप्त हुआ है उसके प्रभावसे मैं थोड़ासा सारभूत श्रावकाचार धर्म कहता हूं ॥ ३८–३९ ॥ इस जैन धमके प्रभावसे जीवोंको पाप दूरसे ही देखता रहता है पास नहीं आता, तथा स्वर्गकी लक्ष्मी अपने आप उसके पास आजाती है और मोक्षरूपी कन्या भी उसे सदा देखती रहती है ॥ ४० ॥ जो जीव धर्मसिंहासन पर विराजमान है वह तीनों लोकमें उत्पन्न हुए सुखोंमेंसे जो जो चाहता है वह सब उसके पास स्वयं आ जाता है ॥ ४१ ॥

जो जीव इस श्रेष्ठ धर्मको पालन करता है उसके हाथमें चिंतामणि रत्न हो समझना चाहिये अथवा कल्पवृक्ष उसके घरमें ही समझना चाहिये और कामधेनु उसकी दासी समझनी चाहिये ॥ ४२ ॥ इस संसारमें धर्म ही बन्धु है, धर्म ही मित्र है, धर्म ही स्वामी है, धर्म ही सुख करनेवाला है, धर्म ही हित करनेवाला है और इस लोक तथा परलोक दोनों लोकोंमें धर्म ही जीवोंको श्रेष्ठ फल देनेवाला है ॥ ४३ ॥ जो जीव इस सर्वश्रेष्ठ श्रावकाचार धर्मका पालन करता है वह सोलहवें

स्वर्गके सुख भोगकर मोक्षमहलमें जा विराजमान होता है ॥ ४४ ॥

जिस प्रकार इस लोकमें विना मेघोंकी वर्षाके अच्छे धान्योंकी उत्पत्ति नहीं होती उसी प्रकार विना धर्मके धन धान्य आदि किसी भी प्रकारकी लक्ष्मी प्राप्त नहीं होती ॥ ४५ ॥ जिस प्रकार सर्पके मुखमें पड़ी हुई कोई भी वस्तु अमृत रूप नहीं हो सकती उसी प्रकार पापाचरणोंसे धन धान्यादि ऋद्धियां कभी नहीं मिल सकतीं ॥ ४६ ॥ जो जीव इस धर्मको साक्षात् होकर पालन करता है उसको अन्य किसी फलकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि इस धर्मको पालन करनेवाला पुरुष स्वयं स्वर्गका स्वामी वन जाता है ॥ ४७ ॥ इसलिये अपने आत्माका हित चाहनेवाले जीवोंको अज्ञान छोड़कर सदा धर्मका ही पालन करते रहना चाहिए क्योंकि धर्मका पालन करनेसे ही सुखकी प्राप्ति होती है ॥ ४८ ॥

हे भाई ! तू दर्शनप्रतिमा, व्रतप्रतिमा, सामायिक प्रतिमा, प्रोषधोपवास प्रतिमा, सचित्तत्याग प्रतिमा, रात्रिभोजनत्याग प्रतिमा, ब्रह्मचर्य प्रतिमा, आरंभत्याग, परिग्रहत्याग, अनुमतित्याग और उद्दिष्ट-त्याग इन ग्यारह प्रतिमाओंको अनुक्रमसे पालन कर । ये सब प्रतिमायें पापोंको नष्ट करनेवाली हैं ॥ ४९ ॥ जिसमें दान देना और श्री जिनेंद्रदेवकी पूजा करना ही मुख्य है और जो संसारके समस्त विकारोंसे रहित हैं ऐसे इस श्रावकाचार धर्मको बुद्धिमान लोग पालन करते हैं । श्री तीर्थंकर परमदेवने इसका निरूपण किया है । यह अनेक निर्मल गुणोंकी निधि है, स्वर्गोंके सुख देनेमें चतुर है और निर्मल सुखका समुद्र है ऐसे इस श्रावकाचार धर्मको हे भव्य ! तू पालन कर ॥ ५० ॥

इस प्रकार आचार्य श्री सकलकीर्तिविरचित प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमें संक्षेपसे व्रतोंको निरूपण करनेवाला यह प्रथमसर्ग समाप्त हुआ ।

दूसरा सर्ग ।

अब मैं राग द्वेष आदि समस्त दोषोंको जीतनेवाले भगवान अजितनाथको श्रावकोंके व्रतोंको विशेष रीतिसे कहता हूं सो हे भव्य ! तू सुन ॥ १ ॥ जिस प्रकार वृक्षका आधार उसकी जड़ है उसी प्रकार समस्त व्रतोंकी जड़ सम्यग्दर्शन है । जिस प्रकार विना जड़के वृक्ष ठहर नहीं सकता उसी प्रकार विना सम्यग्दर्शनके कोई व्रत नहीं हो सकता ॥ २ ॥ इसलिये विवेकी गृहस्थोंको सबसे पहिले सब व्रतोंका सारभूत सम्यग्दर्शन ग्रहण करना चाहिये क्योंकि सम्यग्दर्शनके साथ२ होनेवाले व्रत ही समस्त पापोंको दूर कर सकते हैं अन्यथा नहीं ॥३॥ जीवादिक सातों तत्वोंका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन धारण करनेवाले जीवोंको उन तत्त्वोंका ज्ञान अवश्य कर लेना चाहिये ॥४॥

प्रश्न—हे भगवन् ! वे तत्व कौन कौन हैं ? उनमें क्या क्या गुण हैं ? उनका स्वरूप क्या है ? उनके भेद कितने हैं ? आदि सब बातें विस्तारपूर्वक मेरे लिये कहिये ?

उत्तर—हे बुद्धिमान् ! भाग्यवान् ! सुन, मैं उन तत्त्वोंका स्वरूप आदि अपनी बुद्धि और आगमके अनुसार संक्षेपसे कहता हूँ ॥ ५–६ ॥ जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्व जैन शास्त्रोंमें बतलाये हैं ॥ ७ ॥ जो द्रव्य प्राण और भाव प्राणोंसे अनादि कालसे लेकर जीवित रहता है और आगे भी बार बार जीवेगा और ऐसा होनेपर भी जिसका स्वरूप निश्चल है उसको जीव कहते हैं ॥ ८ ॥ द्रव्य प्राण दश हैं–पांच इन्द्रियां, मन, बचन, शरीर ये तीन बल, आयु और श्वासोच्छ्वास । इनसे ही यह जीव जीवित रहता है । यदि शुद्ध निश्चयनयसे देखा जाय तो केवल उपयोगमय जीव है । व्यवहार नयसे मूर्त ज्ञान तथा दर्शनके

गोचर हैं (व्यवहार नयसे मूर्त है और मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञानके गोचर है) ॥ १० ॥

निश्चय नयसे अमूर्त है और कर्मादिकोंका भोक्ता नहीं। व्यवहार-नयसे मूर्त है और कर्मोंके सुख दुःख आदि फलोंका भोक्ता है ॥११॥ शुद्ध द्रव्यार्थिकनयसे यह जीव न तो कर्म नोकर्मोंका कर्ता है न राग द्वेषोंका कर्ता है और न घट पट आदि पदार्थोंका कर्ता है। शुद्ध द्रव्यार्थिकनयसे यह जीव संसारमें परिभ्रमण भी नहीं करता ॥१२॥ व्यवहारनयसे यह जीव कर्म नोकर्म व शरीर आदिका कर्ता हैं. मोह द्वेष आदिका कर्ता है और घट पट आदि पदार्थोंका भी कर्ता है तथा दीर्घ संसारमें परिभ्रमण भी कर्ता है ॥ १३ ॥ इस आत्मामें दीपकके प्रकाशके समान संकोच और विस्तार होनेकी शक्ति है इसलिये व्यवहार नयसे यह जीव *समुद्घात अवस्थाको छोड़कर कर्मोंके उदयके अनुसार प्राप्त हुए छोटे बड़े शरीरसे प्रमाणके बराबर है—जब जितना बड़ा शरीर पाता है तब उतना ही बड़ा हो जाता है ॥१४॥ परन्तु निश्चय नयसे लोकाकाशके समान असंख्यात प्रदेशवाला है। (उन प्रदेशोंमें कभी हीनाधिकता नहीं होती) जो जीव मुक्त हो जाते हैं उनका आकार अन्तिम शरीरसे कुछ कम होता है ॥ १५ ॥

जीव दो प्रकारके हैं—संसारी और सिद्ध। (कर्म सहितको संसारी और कर्म रहितको सिद्ध कहते हैं।) यदि जाति आदिका भेद न भी गिना जाय तो भी संसारी जीव छह प्रकारके हैं (त्रस और पांच प्रकारके स्थावर) ॥ १६ ॥ पृथ्वीकायिक जीवोंकी योनियां सात लाख, जलकायिककी ७ लाख अग्निकायिककी सात लाख, वायु

*आत्माके प्रदेश शरीरमें रहते हुए भी शरीरके बाहर निकल जाते हैं उसको समुद्घात कहते हैं।

कायिककी सात लाख, नित्य निगोगकी सात लाख, इतर निगोदकी सात लाख, वनस्पतिकायिककी दश लाख, द्वींद्रिय जीवोंकी दो लाख, त्रींद्रिय जीवोंकी दो लाख, चौइंद्रिय जीवोंकी दो लाख, तिर्यंच पंचेंद्रिय जीवोंकी चार लाख, देवोंकी चार लाख, नारकियोंकी चार लाख और मनुष्योंकी चौदह लाख इस प्रकार जैन शास्त्रोंमें जीवोंकी सब चौरासी लाख योनियां बतलाई हैं। तत्त्वोंके जानकार जीवोंको आयु काय आदिके भेदसे ये सब योनियां जान लेनी चाहिये ॥ १७–१९ ॥ जो चौदह गुणस्थान और चौदह मार्गणाओंमें रहे वह भी संसारी जीव ही समझना चाहिये। इस प्रकार सम्यग्दर्शनको विशुद्ध करनेके लिये बुद्धिमानोंको जीव तत्त्वका स्वरूप समझ लेना चाहिये ॥ २० ॥

तत्त्वोंके जानकार जीवोंको अजीव तत्त्वके पांच भेद समझने चाहिये। धर्म, अधर्म, आकाश और काल चार तो ये हैं, ये चारों ही पदार्थ उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य स्वरूप हैं तथा पांचवां अजीव तत्त्व पुद्गल है उसमें स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण गुण हैं और वह अणु स्कन्ध आदि भेदसे अनेक प्रकारका है। यह पुद्गल जीवोंको सुख दुःख भी देता है ॥ २१–२२ ॥ धर्म द्रव्य असंख्यात प्रदेशवाला है और अमूर्त है तथा जिस प्रकार मछलियोंके चलनेमें पानी सहायक होता है उसी प्रकार यह धर्मद्रव्य भी जीव और पुद्गलोंके गमन करनेमें सहायक होता है ॥ २३ ॥ अधर्म द्रव्य अमूर्त है, क्रिया रहित है और जिस प्रकार पथिकोंके ठहरनेमें छाया सहायक होती है उसी-प्रकार यह अधर्म द्रव्य भी जीव पुद्गलोंके ठहरनेमें सहायक होता है ॥ २४ ॥

आकाशके दो भेद हैं—एक लोकाकाश दूसरा अलोकाकाश। जो जीवादिक समस्त पदार्थोंको जगह दे सके उसे आकाश कहते

हैं। जो समस्त द्रव्योंसे भरा हुआ है और जिसमें असंख्यात प्रदेश हैं उसको लोकाकाश कहते हैं। यह लोकाकाश भी अविनश्वर है, कभी नाश नहीं होता ॥ २५ ॥ अलोकाकाशमें अनंत प्रदेश हैं वह अकेला है। उसमें अन्य कोई द्रव्य नहीं है। वह अमूर्त है, नित्य है और जैन शास्त्रोंके द्वारा ही चतुर पुरुषोंको उसका ज्ञान होता है ॥ २६ ॥ घड़ी, घण्टा, दिन आदिको व्यवहारकाल कहते हैं। द्रव्योंकी पर्यायोंको बदलनेवाला यह व्यवहारकाल ही है। यह व्यवहार-काल अनित्य है और सूर्य चन्द्रमा आदि घूमते हुए ज्योतिषी देवोंके विमानोंसे मालूम होता है ॥ २७ ॥

निश्चयकाल अमूर्त है और क्रिया रहित है। उसके भिन्न भिन्न असंख्यात प्रदेश हैं और वे अलग अलग एक एक करके लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर ठहरे हैं ॥ २८ ॥ इस प्रकार अजीव तत्त्वके ये पांच भेद हैं। यदि इनके साथ जीव मिला लिया जाय तो ये ही (धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल, जीव) छह द्रव्य कहलाते हैं। इनमेंसे काल द्रव्यको छोड़कर बाकीके पांच द्रव्य अस्तिकाय कहलाते हैं ॥ २९ ॥ कर्मोंके आनेके कारणोंको आस्रव कहते हैं। मिथ्यात्व, अविरति, योग, कषाय और प्रमाद ये सब कर्मोंके आनेके कारण हैं अर्थात् इनसे ही कर्म आते हैं ॥ ३० ॥

जिस प्रकार किसी नावमें छिद्र होजानेके कारण उसमें पानी भर जाता है और फिर उस नावके साथ उसपर बैठनेवाला मनुष्य समुद्रमें डूब जाता है उसी प्रकार मिथ्यात्व, अविरत आदि दोषोंसे मलिन हुआ यह जीव भी कर्मोंके आश्रव होनेके दोषोंसे संसाररूपी समुद्रमें डूब जाता है ॥ ३१ ॥ बुद्धिमान लोग जीव और कर्मके सम्बन्ध होनेको बंध कहते हैं। यह कर्मबंध अनंत दुःखोंको देनेवाला

है, दाह वा जलनरूपी अग्निके लिये महा ईंधनके समान है ॥ ३२ ॥ जिस प्रकार शरीरपर तैल लगा लेनेसे उसपर धूल आकर जम जाती है उसी प्रकार राग द्वेष आदि दोषोंसे दूषित होनेपर जीवके भी कर्मोंका समूह आकर बंधको प्राप्त होजाता है ॥ ३३ ॥ सब प्रकारके आस्रवका निरोध होजाना-रुक जाना-संवर कहा जाता है। यह संवर ही अनंत कर्म समूहको नाश करनेवाला है और मोक्ष सुखको देनेवाला है ॥ ३४ ॥ मुनियोंके यह संवर तप, समिति, चारित्र, गुप्ति, धर्म, परीषहजय और ज्ञान, ध्यान, व्रत आदिके द्वारा होता है ॥ ३५ ॥

कर्मोंके एकदेश क्षय होनेको निर्जरा कहते हैं वह दो प्रकारकी होती हैं—अविपाक निर्जरा और सविपाक निर्जरा। जो ज्ञान, ध्यान और तपके द्वारा पहिलेके इकट्ठे किये हुए कर्म नष्ट होते हैं उसको अविपाक निर्जरा कहते हैं ॥ ३६ ॥ इस अविपाक निर्जराको मुनि लोग ही करते हैं, यह निर्जरा स्वर्ग मोक्षकी कारण है। तथा जो कर्मोंके विपाकसे होती है, कर्म अपना फल देकर नष्ट हो जाते हैं उसको सविपाक निर्जरा कहते हैं, यह सविपाक निर्जरा अन्य अनेक कर्मोंका आस्रव करनेवाली है ॥ ३७ ॥ यह सविपाक निर्जरा संसारी सब जीवोंके होती है, कर्मके आधीन है और अन्य अनेक कर्मोंका आस्रव करनेवाली है तथा दूसरी अविपाक निर्जरा विद्वानोंको मोक्ष देनेवाली है ॥ ३८ ॥

जीवके कर्मोंके सम्बन्धके छूट जानेको अर्थात् समस्त कर्मोंके नाश हो जानेको मोक्ष कहते हैं। संवर निर्जरा आदिको धारण करनेवाले मुनियोंके तप चारित्र आदिसे वह मोक्ष प्राप्त होती है ॥ ३९ ॥ जिस प्रकार किसी बंधनसे बंधे हुए पुरुषको छोड़ देनेसे सुख होता है उसी प्रकार कर्मोंसे बंधे हुए जीवको उन कर्मोंके नाश होजानेसे

अनंत सुख प्राप्त होता है ॥ ४० ॥ मोक्षका सुख स्वाभाविक है, अनंत है फिर कभी भी नष्ट नहीं होता, संसारमें कोई भी इसकी उपमा नहीं, संसारके परिभ्रमणसे सर्वथा रहित है और आत्यंतिक है ऐसा श्री जिनेन्द्रदेवने कहा है ॥ ४१ ॥

जीवोंके शुभ अशुभ भावोंसे पुण्य पाप होता है अर्थात् शुभ भावोंसे पाप होता है । साता वेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम और शुभ गोत्र ये कर्म पुण्य हैं और बाकीके ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय, असाता वेदनीय, अशुभ आयु, अशुभ नाम, अशुभ गोत्र ये पाप हैं ॥ ४२ ॥ मिथ्यात्व पांच, कषाय पच्चीस, प्रमाद पंद्रह, कुटिलतामें तत्पर रहनेवाले योग ये सब पापबंधके कारण हैं । इनके सिवाय मद आठ, संज्ञा चार, विषय सत्ताईस, आर्तध्यान चार, रौद्रध्यान चार, व्यसन सात, अविरति बारह, राग, द्वेष, मोह, भय सात, वेद, शोक क्रिया चौबीस, इन सबका होना कुटिलता कहलाती है ये सब पापबंधके कारण हैं ॥ ४३–४५ ॥

किसी स्वीकार किये हुए नियमके भंग करनेसे (किसी व्रतका भंग कर देनेसे) महापाप उत्पन्न होता है तथा देव शास्त्र गुरुके छिपानेसे अथवा उनकी आज्ञाका भंग करनेसे भी जीवोंको महापाप होता है ॥ ४६ ॥ धर्मकार्योंमें विघ्न करनेसे पाप और मिथ्यात्वकी पुष्टि करनेसे तथा सदा मिथ्या उपदेश देनेसे सबसे बड़ी कुटिलता प्रगट होती है अर्थात् सबसे अधिक पाप होता है ॥ ४७ ॥ यह पाप जीवोंका सबसे बड़ा शत्रु है । अनेक बड़े बड़े दुःखरूपी अग्निके लिये ईंधन है, नरक आदि दुर्गतियोंका कारण और रोग क्लेश आदिका महासागर है ॥ ४८ ॥

जब इस जीवके पहिले किये हुए पाप सामने आते हैं अर्थात् वे उदयमें आकर अपना फल देते हैं तब भोजन, वस्त्र, धन, घर

आदि सब नष्ट हो जाता है ॥ ४९ ॥ जब इस जीवके पाप रुक जाते हैं–नष्ट हो जाते हैं तब इस जीवकी सब इच्छाएं पूरी हो जाती हैं। यदि पाप न रुके हो–नष्ट न हुए हों तो फिर तप करना, चारित्र पालन करना, श्रुतज्ञानका बढ़ाना आदि सब व्यर्थ और क्लेश बढ़ानेवाला है ॥ ५० ॥ संसारमें वे ही मित्र हैं और वे ही बन्धु हैं जो हम लोगोंमें धर्मसेवन कराते हैं। जो धर्ममें विघ्न करनेवाले हैं वे शत्रु हैं इसमें कोई संदेह नहीं ॥ ५१ ॥

जो मुनिराज इस महापापरूपी सागरमें पड़े हुए भव्य जीवोंको धर्मोपदेशरूपी दोनों हाथोंका सहारा देकर उस पापरूपी महासागरसे पार कर देते हैं–मोक्षमार्गमें लगा देते हैं वे ही इस जीवके सच्चे बांधव हैं ॥ ५२ ॥ बहुत कहनेसे क्या लाभ? थोड़ेसेमें इतना समझ लेना चाहिये कि संसारमें जो कुछ बुरा है, दुःख है, दरिद्रता है, रोग आदि आधिव्याधि हैं वे सब पापसे ही उत्पन्न होती हैं ॥५३ ॥

इसलिये हे धीमन्! यदि तू स्वर्ग मोक्षके सुख चाहता है और दुःखोंसे बचना चाहता है तो बुद्धिपूर्वक पापोंका त्याग कर ॥ ५४ ॥ इन पापोंके बीजभूत कारणोंको व फलोंको जब भगवान वर्द्धमानस्वामीने कहा है फिर भला अन्य कौन कह सकता है ॥५५॥ तथापि पापके कारण जो पहिले बतलाये हैं उनके प्रतिकूल कारण पुण्य सम्पादन करनेके लिये कहे जाते हैं ॥ ५६ ॥ उत्तम क्षमा आदि दश धर्म, बारह व्रत, उत्कृष्ट श्रावकाचारका पालन करना, बारह प्रकारका तप, श्रेष्ठ मुनियोंको आहार आदि चार प्रकारका दान देना, ज्ञान सम्पादन करना, ध्यान करना, भगवान् अरहंतदेवकी पूजन करना, धर्मात्मा लोगोंका आदर सत्कार करना, गुरुकी

सेवा करना, जिन प्रतिमाका बनवाना, अरहंतदेवकी भावना करना, अनेक विभूतियोंकी देनेवाली जिनबिंबोंकी प्रतिष्ठा करना, बड़े भारी उत्सवके साथ अरहन्तदेवकी प्रतिमाका अभिषेक करना, बारह अनुप्रेक्षाओंका चिंतवन करना, तप करना, अपने आत्माका कल्याण करना, अन्य जीवोंका उपकार करना, अन्य जीवोंके लिये धर्मोपदेश देना, हृदयमें धर्म ध्यानका चिंतवन रहना आदि सब प्राणियोंको पुण्य सम्पादन करनेवाले हैं ॥ ५७–६२ ॥

जब यह मनुष्यका हृदय सब प्राणियोंके लिये दयासे द्रवीभूत होता है, दयासे पिघल जाता है तभी इस जीवको पुण्य होता है। बिना दयाके सब प्रकारके तप करनेसे भी कोई लाभ नहीं है ॥६३॥ व्यर्थ ही बहुत कहनेसे क्या लाभ है? थोड़ेमेंसे इतना समझ लेना चाहिये कि अन्य जीवोंका अनिष्ट न करना ही पुण्यकी जड़ है ॥ ६४ ॥ भव्य जीव रत्नत्रयकी भावना करनेसे, भगवान् जिनेन्द्र-देवका स्मरण करनेसे और निर्ग्रंथ मुनियोंकी भक्ति करनेसे ही अद्भुत पुण्य सम्पादन करते हैं ॥ ३५ ॥ जीवोंको देव शास्त्र गुरुकी सेवाका भाव होना, सदा संसारमें भयभीत होकर संवेग धारण करना और सम्यग्दर्शनको बढ़ानेवाली क्रियाओंका होना बड़े पुण्यसे प्राप्त होते हैं ॥ ६६ ॥

हृदयका वैराग्यसे भरपूर होना, ज्ञानके अभ्यास करनेमें सदा तत्पर रहना और सब जीवों पर दया धारण करना इन तीनों बातोंसे जीवोंको सदा पुण्य सम्पादन होता रहता है ॥ ६७ ॥ जो वाक्य धर्मके उपदेशसे परिपूर्ण हो, समस्त जीवोंका कल्याण करनेवाले हों, और विकथा आदिसे रहित हों ऐसे वाक्य भी पुण्यके कारण होते हैं। सब तरहके विकारोंसे रहित, खड्गासन वा पद्मासन लगाकर

बैठना, अपने शरीरको सौम्य और संवृत रीतिसे रखना भी मनुष्योंको पुण्य उत्पन्न करता है ॥ ६८ ॥ पंच परमेष्ठीका वाचक जो णमो अरहंताणं आदि महामंत्र है वह सबसे अधिक पुण्यका कारण है तथा वह अनंत पापोंको नाश करनेवाला है ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ॥ ६९ ॥ मुनिराज जो सम्यग्दर्शन पूर्वक तप करते हैं, ज्ञानका अभ्यास करते हैं, यम नियम आदिका पालन करते हैं वह सब आगेके लिये मोक्षका कारण है और वर्तमानमें अनेक प्रकारके पुण्य सम्पादन करनेवाले हैं ॥ ७० ॥ विना सम्यग्दर्शनके दान देने व व्रत पालन करने आदिसे न तो पुण्य ही होता है और न मोक्ष ही प्राप्त होती है ऐसा श्री जिनेन्द्रदेवने कहा है ॥ ७१ ॥

हे भव्य जीव ! तू केवल मोक्षके लिये ज्ञानका अभ्यास कर, मोक्षके लिये ही ध्यान कर तथा व्रतोंका पालन व दान आदि सब मोक्षके लिये कर। केवल पुण्यके लिये मत कर ॥ ७२ ॥ जो तप दान यम नियम आदि मोक्षके लिये किया जाता है उससे जीवोंको हृदय शुद्ध होनेसे महापुण्य उत्पन्न होता है ॥ ७३ ॥ जो मुनिराज मोक्षकी प्राप्तिमें लगे रहते हैं और ज्ञान चारित्रमें सदा सुशोभित रहते हैं वे संसारको बढ़ानेवाले पुण्यकी कभी इच्छा नहीं करते ॥७४ बुद्धिमानोंको पुण्यकर्मके उदयसे अनेक भोग उपभोगोंसे परिपूर्ण और अनेक ऋद्धि सिद्धियोंसे भरी हुई स्वर्गकी लक्ष्मी प्राप्त होती है ॥७५॥

पुण्यकर्मके उदयसे इन्द्रकी विभूति प्राप्त होती है जिसमें अनेक देव सेवा करते हैं और अनेक सुन्दर देवांगनाएं प्राप्त होती हैं ॥७६॥ धर्मके ही प्रभावसे चक्रवर्तीकी दिव्य लक्ष्मी प्राप्त होती है जिसमें छहों खंडीके राजा आकर नमस्कार करते हैं और नारी-रत्न आदि चौदह रत्न तथा नौ निधियोंसे जो सदा सुशोभित रहती है ॥ ७७ ॥ इस

संसारमें जिस जीवके पुण्यकर्मका उदय होता है उसके धन धान्य आदिसे परिपूर्ण और तीनों लोकोंमें रहनेवाले समस्त लक्ष्मी वश हो जाती है ॥ ७८ ॥ संसारमें जो कुछ दुर्लभ है, जो कुछ सारभूत ऋद्धियां हैं और जो कुछ सुख हैं वे सब मनुष्योंको पुण्यकर्मके ही उदयसे प्राप्त होते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ७९ ॥ इन्द्रादिकको जो प्रतिक्षण नवीन नवीन सुख उत्पन्न होते हैं अथवा तीर्थंकरोंको जो गृहस्थ अवस्थामें सुख उत्पन्न होते हैं वे सब पुण्यकर्मके उदयसे ही होते हैं ऐसा श्री सर्वज्ञ देवने कहा है ॥ ८० ॥

इस प्रकार आगमके अनुसार संक्षेपमें पदार्थोंका स्वरूप कहा। इनका विशेष वर्णन सम्यग्दृष्टि पुरुषोंको अन्य ग्रन्थोंसे जान लेना चाहिये ॥ ८१ ॥ इन सातों तत्त्वोंका श्रद्धान करनेसे जीवोंको शंका आदि सब दोषोंसे रहित और सुखकी निधि ऐसा निर्मल सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है ॥ ८२ ॥

हे भव्य जीव! यह सम्यग्दर्शन समस्त तत्त्वोंका सारभूत है, अनेक देव इसकी सेवा करते हैं, यह अत्यंत विशाल है और अनंत-ज्ञान आदि परम गुणोंसे पवित्र, समस्त लोक अलोकको प्रकाशित करनेवाले तथा समस्त दोषोंसे रहित ऐसे तीर्थंकर परमदेवने इसको वर्णन किया है। इसलिये सम्यग्ज्ञान प्रगट करनेके लिये तू भी शंका आदि सब दोषोंको छोड़कर इस सम्यग्दर्शनका सेवन कर–इसको धारण कर ॥ ८३ ॥

इन सब तत्त्वोंका स्वभाव भिन्न भिन्न है। ये सब तत्त्व अनेक निर्मल गुणोंसे ही उत्तम गिने जाते हैं, इनका स्वरूप श्री जिनेन्द्र-देवने कहा है, इनका स्वरूप अनेक नयोंसे कहा जाता है और सम्यग्दर्शन रूपी रत्नके लिये ये मुख्य कारण हैं इसलिये हे भव्य

जीव ! ज्ञानको बढ़ानेके लिये और मोक्ष प्राप्त करनेके लिये तू इन तत्त्वोंको धारण कर—इनको जान ॥ ८४ ॥

इसप्रकार आचार्य श्रीसकलकीर्ति विरचित प्रश्नोत्तर श्रावकाचारमें सात तत्त्व और नौ पदार्थोंके स्वरूपको वर्णन करनेवाला यह दूसरा सर्ग समाप्त हुआ ।

तीसरा सर्ग ।

अथानंतर—अब मैं भव्य जीवोंको सुख देनेवाले भगवान संभव-नाथको नमस्कार कर सम्यग्दर्शनको दृढ़ करनेके लिये धर्म और गुरुका स्वरूप वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥ जो वीतराग है वही देव है, जो हिंसासे रहित है वही धर्म है और जो परिग्रह रहित है वही गुरु है । इसके सिवाय न देव है, न धर्म है और न गुरु है ऐसा श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहलाता है ॥ २ ॥ अब मैं भगवान जिनेन्द्रदेवके कुछ नाम उनके अर्थ सहित बतलाता हूँ । वे नाम भव्य जीवोंका उपकार करनेवाले हैं और मुनियोंके द्वारा ध्यान करने योग्य हैं ॥ ३ ॥ वे भगवान पंच कल्याणक पूजाके योग्य हैं, स्वर्गके अनेक इंद्रोने उनके गर्भ जन्म आदि संस्कार किये हैं और विद्वान् लोग सदा उनका स्मरण करते रहते हैं इसीलिये उनका नाम अर्हत् (जो पूज्य हो) प्रसिद्ध हुआ है ॥ ४ ॥ वे भगवान दुःख शोक आदिको बढ़ानेवाले कर्मरूप शत्रुओंको नाश करनेवाले हैं इसीलिये अरिहंत (अरि—कर्मरूप शत्रुको हंत—मारनेवाले, नाश करनेवाले) कहलाते हैं । ऐसा भगवान जिनेन्द्रदेवने कहा है ॥ ५ ॥ अथवा उनका मोहरूपी सबसे अधिक अशुभ कर्म नष्ट हो गया है तथा धूलिके समान ज्ञान दर्शनको रोकनेवाले ज्ञानावरण दर्शनावरण नष्ट

हो गये हैं और अन्तराय कर्म नष्ट हो गया है। इस प्रकार चारों घातिया कर्म नष्ट होनेसे अरहंत कहलाते हैं ॥ ६ ॥

उन भगवानने अनंतानंत जन्मों तक बराबर दुःख देनेवाले कर्मरूप शत्रुओंको जीता है अर्थात् समस्त कर्मरूप शत्रुओंको नष्ट किया है इसलिये वे जिन (कर्मोंको जीतनेवाले) कहलाते हैं ॥ ७ ॥ उनका केवलज्ञान समस्त लोक अलोकमें व्याप्त होकर रहता है तथा लोक अलोक दोनोंको प्रकाशित करता है इसलिये वे विष्णु कहलाते हैं। भगवान् जिनेन्द्रदेवके सिवाय अन्य कोई विष्णु नहीं है ॥ ८ ॥ केवलज्ञानके उत्पन्न होनेसे उनके अनन्त चतुष्टय वा समवशरण आदि अनेक प्रकारकी लक्ष्मी प्रगट हुई है इसलिये वे ईश्वर कहलाते हैं। इनके सिवाय अन्य कोई नामका भी ईश्वर नहीं है ॥ ९ ॥ देव और मनुष्योंको समवशरण सभामें उनके चारों ओर चार मुँह दिखाई देते हैं अथवा वे भगवान् परम ब्रह्म स्वरूप हैं, शुद्ध आत्म स्वरूप हैं इसलिये वे ब्रह्मा कहलाते हैं। ब्रह्मा भी उनके सिवाय अन्य कोई नहीं है ॥ १० ॥

वे भगवान् अनन्त सुखसे परिपूर्ण और सब प्रकारकी सिद्धियोंसे सुशोभित ऐसे मोक्षपदको प्राप्त हुए हैं इसलिये संसारमें शिव (कल्याण करनेवाले) कहलाते हैं। शिव भी उनके सिवाय अन्य कोई नहीं है ॥ ११ ॥ भगवान् अरहन्तदेव लोकाकाशके समस्त पदार्थोंको तथा अलोकाकाशको उनकी अनन्त पर्यायोंसहित जानते हैं इसलिये वे ही बुद्ध हैं वे ही संसारमें मान्य हैं, उनके सिवाय संसारमें अन्य कोई बुद्ध नहीं है ॥ १२ ॥ वे भगवान् अपने आत्माको तथा अन्य समस्त द्रव्योंको उनकी भूत, भविष्यत, वर्तमान तीनों कालोंमें होने-वाली पर्यायोंसहित साक्षात् जानते हैं इसलिये सर्वज्ञ कहलाते हैं ॥ १३ ॥ वे भगवान् अपने चिदानन्दमय आत्माको स्वयं अपने

आत्मामें ही देखते हैं तथा चर अचर रूप बाहरके समस्त संसारको देखते हैं इसलिये वे सर्वदर्शी (सबको देखनेवाले) कहलाते हैं ॥१४॥

समस्त जीवोंका हित करनेवाले वे भगवान् धर्मरूप तीर्थकी और ज्ञानरूप तीर्थकी प्रवृत्ति करनेवाले हैं इसलिये तीर्थंकर कहलाते हैं ॥ १५ ॥ उन्होंने स्त्री वस्त्र आदिका सर्वथा त्याग कर दिया है इसलिये वे वीतराग कहलाते हैं, अरहन्त अवस्थामें सदा धर्मोपदेश देते रहते हैं इसलिये धर्म कहलाते हैं और सब तरहके परिग्रहसे रहित हैं इसलिये निर्ग्रन्थ कहलाते हैं ॥ १६ ॥ वे भगवान् देवोंके भी देव हैं इसलिये देवदेव वा देवाधिदेव कहलाते हैं, सबके गुरु हैं इसलिए जगद्गुरु कहलाते हैं और वस्त्रादिकके त्यागी हैं इसलिये दिगम्बर कहे जाते हैं ॥ १७ ॥ ऋषियोंमें भी सबसे बड़े हैं इसलिये ऋषीश कहे जाते हैं। सब तरहके मल वा दोषोंसे रहित हैं इसलिये विमल कहलाते हैं और मुक्तिरूपी कांताके साथ क्रीड़ा करते हैं इसलिए देव कहलाते हैं ॥ १८ ॥

इस प्रकार सार्थक अर्थको धारण करनेवाले एक हजार आठ नाम भगवान् अरहन्तदेवके ही हैं। उनकी यह नामावलि सबसे उत्तम है और पुण्य उत्पन्न करनेवाली है इसलिये हे भव्य ! तू उन्हींका जप कर ॥ १९ ॥ जो बुद्धिमान् एकाग्रचित्त होकर भगवान् जिनेन्द्रदेवका नाम लेकर जप करता है वा ध्यान करता है वह भी कालांतरमें साक्षात् जिनेन्द्रदेव हो जाता है ॥ २० ॥ हे भव्य ! यदि तू मुक्तिरूपी लक्ष्मीका साथ करना चाहता है, मोक्ष प्राप्त करना चाहता है तो सब दोषोंसे रहित और अनंत महिमाको धारण करनेवाले भगवान् जिनेन्द्रदेवकी सेवा कर ॥ २१ ॥

प्रश्न—हे भगवन् ! भगवान् जिनेन्द्रदेवने जिन दोषोंको नष्ट

कर दिया है, मूर्ख लोक ही जिनको स्वीकार वा धारण करते हैं और जो मोक्षको रोकनेवाले हैं—मोक्ष प्राप्त नहीं होने देते उन दोषोंको कहिये ।

उत्तर—भूख, प्यास, भय, द्वेष, राग, मोह, चिंता, बुढ़ापा, रोग, मृत्यु, खेद, पसीना, मद, अरति, आश्चर्य, जन्म, निद्रा, विषाद ये अठारह दोष कहलाते हैं, ये दोष नरकादि अनेक कुजन्मोंमें दुःख देनेवाले हैं और नीच लोग ही इनमें रत रहते हैं ॥ २२–२४ ॥ भगवान् अरहंतदेवके दुष्ट मोहनीय कर्म नष्ट हो गया है, वेदनीय कर्म अत्यन्त मन्द हो गया है और अनन्त सुख प्राप्त हो गया है इसलिये भगवान अरहंतदेवके भूखका (क्षुधा नामके दोषका) सर्वथा अभाव है ॥ २५ ॥

इसी प्रकार मोहनीय कर्मके नाश होनेसे, वेदनीय कर्मके मन्द होनेसे और अनंत सुख प्राप्त होनेसे उनके प्यास भी नहीं लगती है । उन्होंने समस्त अस्त्र शस्त्रोंका त्याग कर दिया है इसीसे जान पड़ता है कि उनके द्वेष नहीं है । तथा उनका स्वरूप अत्यन्त सौम्य है, सब तरहके विकारोंसे रहित है इसीलिये मालूम होता है कि उनके भय बिल्कुल नहीं है ॥ २६ ॥ उनके स्त्री समागम सर्वथा नहीं है इसलिये उनके रागका अभाव स्वयं सिद्ध हो जाता है तथा उनके वस्त्र आभरण आदिका सर्वथा त्याग है इसीलिये मालूम होता है कि उनका मोह सर्वथा नष्ट हो गया है ॥ २७ ॥ उन्होंने स्वाभाविक रीतिसे ही अपने आत्माको सिद्ध कर लिया है इसलिये अशुभ कर्मोंको उत्पन्न करनेवाली चिंता भी उनके कभी नहीं हो सकती । तथा उन्हें अजर अमर मोक्षस्थान प्राप्त हो गया है अतएव उनके बुढ़ापा भी कभी नहीं हो सकता ॥ २८ ॥

उन तीर्थंकर भगवानके असातावेदनीयकर्म सर्वथा नष्ट हो गया है और आगेके लिये आयु कर्मका बन्ध नहीं है। आयुकर्मके बंधका सर्वथा अभाव है इसलिये उनके मृत्यु भी कभी नहीं हो सकती अथवा उनका आयु कर्म ही सर्वथा नष्ट हो गया है इसलिये भी उनकी मृत्यु नहीं हो सकती ॥ २९ ॥ अहंकारका नाश होनेसे उनके मद भी नहीं है और रति कर्मके नाश होनेसे सभा आदिमें उनको रति भी नहीं है ॥ ३० ॥ वे लोक अलोक सबको एकसाथ जानते हैं इसलिये उन्हें किसी पदार्थमें भी आश्चर्य नहीं हो सकता तथा समस्त कर्मोंके नाश होनेसे वे किसी योनिमें भी जन्म नहीं ले सकते अर्थात् उनके जन्मका भी सर्वथा अभाव है ॥ ३१ ॥ निद्रा आदि कर्मोंके नाश हो जानेके कारण उनके निद्राकी संभावना भी नहीं हो सकती और वे शुक्लध्यानमें लीन रहते हैं इसलिये उनके विषाद भी किसी प्रकार नहीं हो सकता ॥ ३२ ॥ ये अठारह दोष महा निंद्य हैं और धर्मको नष्ट करनेवाले हैं, परन्तु इन दोषोंसे तीनों लोक भरा हुआ है यहां तक कि कुदेवोंके समूह भी इनसे नहीं बचे हैं ॥ ३३ ॥

जो इन अठारह दोषोंसे रहित हैं वे ही भगवान् जिनेन्द्रदेव हैं, वे ही जगत पूज्य हैं, वे ही संसारमें उत्तम हैं और वे ही मनुष्योंके परम देव हैं ॥ ३४ ॥ हे भव्य जीव! भगवान् अरहन्तदेव इन अठारह महादोषोंसे रहित हैं, समस्त जीवोंका हित करनेवाले हैं और देवोंके द्वारा भी पूज्य हैं इसलिये तू उनकी ही सेवा भक्ति कर ॥ ३५ ॥ कोई कोई लोग भगवान् वीतरागके भी आहार मानते हैं उनका कहना सत्य है अथवा असत्य है तू इस सन्देहको भी सर्वथा छोड़ दे ॥ ३६ ॥ यदि भगवान् अरहन्तदेव आहार ग्रहण करें तो उनके क्षुधा दोष अवश्य मानना पड़ेगा तथा क्षुधाके साथ साथ प्यास भी अवश्य होगी

और जब भूख प्यासकी तीव्र वेदना होगी तब भय भी अवश्य ही होगा ॥ ३७ ॥

द्वेष भूख प्यासकी वेदनासे ही उत्पन्न होता है और भोजन करनेसे राग मोह होता है। भोजन आदिका चितवन करनेसे चिंता होती ही है और फिर तीव दुःख होनेसे रोग होता ही है ॥ ३८ ॥ जो श्री जिनेन्द्रदेव ईश्वरके समान आहार संज्ञाको करते हैं—आहार लेते हैं तो फिर वे जन्म मरण आदि दोषोंको भला कैसे छोड़ सकते हैं? अर्थात् आहारके साथ जन्म मरण जरा आदि अन्य दोष भी अवश्य मानने पड़ेंगे ॥ ३९ ॥ यदि आहारकी प्राप्ति न हो तो द्वेष होता है, विषाद होता है और अरति होती है तथा आहारकी प्राप्ति होनेसे निद्रा अवश्य होती है। ऐसी अवस्थामें अरहन्तदेवकी सेवा करना हमारी सेवा करनेके हा समान है।

भावार्थ—यदि अरहन्तदेवके आहार माना जायगा तो फिर उनके भी हमारे तुम्हारे समान सब दोष मानने पड़ेंगे फिर उनमें हममें कोई अन्तर नहीं रहेगा ॥ ४० ॥ अरे जो देवाधिदेव होकर भी कातरता धारणकर आहार ग्रहण करते हैं फिर भला उनके व्यर्थ ही अनन्त वीर्यकी कल्पना क्यों करते हो अर्थात् कातरोंके अनन्तवीर्य कैसे हो सकता है ॥ ४१ ॥

इस संसारमें जीवोंके भूखके दुःखके समान और कोई पीड़ा नहीं है और ऐसी वह सबसे बड़ी पीड़ा सबसे बड़ा दुःख जिसके है उसके भला अनन्त सुख कैसे हो सकता है।

भावार्थ—भगवान् अरहन्तदेवके आहारकी कल्पना करनेपर फिर उनके अनन्त सुखका भी अभाव अवश्य मानना पड़ेगा ॥ ४२ ॥ अरे जो मुनि आहारका नाम भी लेते हैं वे भी प्रमत्तसंयमी कहलाते

हैं-प्रमाद सहित कहलाते हैं फिर भला जिन्होंने आहारका त्याग तक नहीं किया है-जो आहार ग्रहण करते हैं वे सर्वज्ञ कैसे हो सकते हैं ? ॥ ४३ ॥ जो अत्यंत अल्प शक्तिका धारण करनेवाले हैं वे भी मद्य मांस आदि निषिद्ध पदार्थोंके देख लेने पर भोजन नहीं करते, अन्तराय मानकर भोजनका त्याग कर देते हैं फिर भला वे श्री जिनेन्द्र-देव अनन्त शक्तिको धारण करते हैं-अनन्तवीर्य सहित हैं और सर्वज्ञ वा सर्वदर्शी होनेसे संसारभरके मद्य मांस आदि समस्त निषिद्ध पदार्थोंको एकसाथ देखते हैं फिर भला वे किस प्रकार आहार ग्रहण कर सकते हैं ? अर्थात् कभी नहीं ॥ ४४ ॥

विचार करनेकी बात है कि जब भगवान् अरहन्तदेवके सदा भोजन करनेकी इच्छा बनी रहेगी तो फिर उनके अन्य संसारी जीवोंके समान लोभ भी अवश्य मानना पड़ेगा (क्योंकि इच्छा लोभसे ही होती है, लोभकी ही एक पर्याय है) ॥ ४५ ॥ तथा लोभके रहते हुए उनके केवलज्ञान प्रगट नहीं हो सकता और केवलज्ञानके न होनेसे वे कभी सर्वज्ञ नहीं हो सकते ॥ ४६ ॥ इसके सिवाय एक बात यह भी है कि आहार ग्रहण करनेसे उनके आहारका स्वाद भी अवश्य होगा और स्वाद होनेसे उनका ज्ञान इंद्रियजन्य ज्ञान मानना पड़ेगा क्योंकि स्वादका ज्ञान जिह्वा इंद्रियसे ही होगा, विना जिह्वा इंद्रिय ज्ञानके स्वाद आ ही नहीं सकता तथा उनके ज्ञानको इंद्रियजन्य माननेपर केवलज्ञानके लिये पानीकी तीन अंजलि अवश्य देनी पड़ेगी अर्थात् फिर उनके केवलज्ञानका सर्वथा अभाव मान लेना पड़ेगा (और केवलज्ञानका अभाव होनेसे सर्वज्ञता आदि सबका अभाव मानना पड़ेगा । इसलिये श्री अरहन्तदेवके आहारकी कल्पना करना सर्वथा भ्रम है) ॥ ४७ ॥ जो भोजन करेगा उसके अन्य दोषोंका

समूह अवश्य उत्पन्न होगा इसमें कोई सन्देह नहीं है, ऐसा अनेक मुनिराजोंने निरूपण किया है ॥ ४८ ॥ यदि आहार ग्रहण करते हुए ही देव हो जाय तो फिर संसारके सभी मनुष्योंको सर्वज्ञ मान लेना चाहिये ॥ ४९ ॥

भगवान् अरहन्तदेव अनेक गुणोंसे परिपूर्ण हैं, सर्वज्ञ हैं, समस्त लोक अलोकके जानकार हैं और घातिया कर्मोंके नाश होनेसे आहार परिग्रह आदि सब दोषोंसे रहित हैं ॥ ५० ॥ यदि कदाचित् चन्द्रमासे अग्नि निकलने लगे और मंदराचल पर्वत चलने लगे तो भी अनंत सुखोंके निधि भगवान् जिनेन्द्रदेव आहार ग्रहण नहीं कर सकते ॥ ५१ ॥ यदि किसी जीवने उपवास किया हो और उसके लिये कोई यह कहे कि आज इसने भोजन किया है तो उस कहनेवालेको झूठ बोलनेके कारण महा पाप होता है, फिर भला जो लोग जगतगुरु देवाधिदेव वीतराग भगवान अरहंतदेवके आहार ग्रहण करनेकी कल्पना करते हैं उनके पापको हम लोग कभी नहीं जान सकते अर्थात् वे सबसे अधिक पापी हैं ॥ ५२–५३ ॥

इसलिये हे मित्र ! उन्हें निश्चय कर लेना चाहिये कि भगवान् अरहन्तदेव भूख, प्यास आदि सब दोषोंसे रहित हैं अतएव आहार भी कभी ग्रहण नहीं करते इसीलिये मुक्तिस्त्रीने उनको स्वयं स्वीकार किया है ॥ ५४ ॥ हे भव्य ! वे भगवान् जिनेन्द्रदेव अनेक अतिशयोंसे सुशोभित हैं, आठों प्रतिहार्योंसे विभूषित हैं और ज्ञानादि अनन्त गुणसहित हैं ऐसे भगवान् जिनेन्द्रदेवकी तू सेवा भक्ति कर ॥ ५५ ॥

हे बुद्धिमान् वत्स ! अब मैं समस्त दुःखोंको दूर करनेवाले भगवान् जिनेंद्रदेवके गुणोंको कहता हूं, तू चित्त लगाकर सुन ॥ ५६ ॥

उनके शरीर पर पसीना नहीं आता, उनके मलमूत्र नहीं होता, उनके शरीरका रुधिर दूधके समान सफेद होता है, उनके शरीरका संस्थान समचतुरस्र होता है, संहनन वज्रवृषभ नाराच होता है, उनका शरीर अत्यन्त रूपवान होता है, सुगन्धित होता है, उनके शरीर पर सब सुन्दर लक्षण होते हैं, प्रमाण रहित महावीर्य (महाबल) होता है और उनके वचन सत्य, सबको प्रिय लगनेवाले और सबका हित करनेवाले होते हैं। ये दश अतिशय भगवानके शरीरके साथ ही उत्पन्न होते हैं ॥ ५७–५९ ॥

जब भगवानके घातिया कर्म नष्ट हो जाते हैं तब नीचे लिखे दश अतिशय प्रगट होते हैं। भगवान् अरहन्तदेव जहां विराजमान होते हैं उसके चारों ओर चारसौ कोस तक सदा सुभिक्ष बना रहता है, वे भगवान् आकाशमें गमन करते हैं, उनके पास कोई भी प्राणी किसीकी हिंसा नहीं कर सकता अर्थात् सभी जीव आपसमें मित्रता धारण कर लेते हैं। वे भगवान् निराहार रहते हैं, उनपर कभी किसी प्रकारका उपसर्ग नहीं हो सकता, समवशरणमें उनका मुँह चारों ओर दिखाई देता है, वे समस्त विद्याओंके स्वामी होते हैं, उनके शरीरकी छाया नहीं पड़ती, उनके नेत्रोंमें टिमकार (पलकसे पलक) नहीं लगती, उनके केश और नख नहीं बढ़ते। भगवानके ये दश अतिशय घातिया कर्मोंके नाश होनेसे होते हैं ॥ ६०–६२ ॥

नीचे लिखे चौदह अतिशय देवकृत कहलाते हैं—भगवान् जिनेन्द्रदेवकी दिव्यध्वनि निरक्षरी होकर भी अर्ध मागधी भाषाके रूपमें परिणत हो जाती है फिर उसे सब जीव अपनी अपनी भाषामें समझ लेते हैं। गणधरादि उसका प्रसार वा फैलाव करते रहते हैं। चूहे बिल्ली वा बाघ हिरण आदि जातिविरोधी जीव भी (जन्मसे ही

विरोधी) अपना विरोध छोड़कर परम मित्रता धारण कर लेते हैं । भगवानके समीपवर्ती समस्त वृक्ष छहों ऋतुओंके फल फूलोंसे सुशोभित हो जाते हैं । समवशरणकी पृथ्वी रत्नमयी और दर्पणके समान अत्यन्त निर्मल हो जाती है । समस्त जीवोंको प्राण देनेवाला सुख देनेवाला वायु शीतल मन्द सुगन्धितवायु वहा करता है । देवलोग वहांकी भूमिको सदा कांटे कंकर आदिसे रहित बनाये रखते हैं। देवरूपी बाद-लोंसे सर्वदा गन्धोदककी महा वृष्टि होती रहती है । भगवान् विहार करते समय जहां जहां अपने चरणकमल रखते हैं उनके नीचे देवलोग अनेक सुवर्णके कमलोंकी रचना किया करते हैं । चांवल आदिके खेत सब फलोंसे नम्रीभूत हुए (नवे हुए) शोभायमान रहते हैं । आकाश सदा निर्मल रहता है । दिशाएँ भी सब निर्मल रहती हैं उनमें कभी अन्धकार नहीं होता । इन्द्रकी आज्ञासे देवलोग सदा आह्वान करते रहते हैं—बुलाते रहते हैं । देदीप्यमान रत्न और सुवर्णका बना हुआ एक हजार आरोंसे सुशोभित और अत्यन्त देदीप्यमान धर्मचक्र सदा तीर्थंकर भगवानके आगे रहता है । ये भगवानके महा गुणरूप चौदह अतिशय देवकृत होते हैं । इस प्रकार भगवानके चौतीस उत्तम अतिशय होते हैं ॥ ६३–७० ॥

भगवानके समीप ही अशोक महावृक्ष रहता है, अनेक गुणोंसे सुशोभित अनेक प्रकारकी पुष्पवृष्टि होती रहती है, उपमा रहित भगवानकी दिव्यध्वनि खिरती रहती है, देवलोग चौंसठ चमर सदा ढोरते रहते हैं, भगवान् सुन्दर तीन सिंहासन पर विराजमान रहते हैं, उनके पीछे देदीप्यमान भामण्डल रहता है, देवोंके द्वारा साड़े बारह करोड़ दुन्दुभी बाजे सदा बजते रहते हैं और उनके मस्तकके ऊपर सफेद तीन छत्र सदा फिरा करते हैं ॥ ७१–७३ ॥

इस प्रकार देवोंके द्वारा किये हुए इन आठ प्रातिहार्योंसे भगवान सदा सुशोभित रहते हैं। इनके सिवाय अनंत ज्ञान (केवलज्ञान) अनंत दर्शन (केवल दर्शन), अनंत महावीर्य और जो वाणीसे भी नहीं कहा जा सके ऐसा अनंत सुख ये चार अनन्त चतुष्टय भगवानके होते हैं। इस प्रकार भगवान अरहंतदेवके सब गुण मिलाकर छ्यालीस होते हैं ॥७४-७५॥

इसके सिवाय भी भगवान जिनेन्द्रदेवमें अनंत गुण रहते हैं जिन्हें मुनिराज ही जान सकते हैं ॥७६॥ जिस प्रकार महासागरकी लहरें गिनी नहीं जा सकतीं, जिस प्रकार बादलोंकी धारा गिनी नहीं जा सकती और जिस प्रकार आकाशमें ताराओंकी संख्या नहीं हो सकती उसी प्रकार भगवान जिनेन्द्रदेवके गुणोंकी संख्या भी कभी नहीं हो सकती ॥ ७७ ॥ हे भव्यजीव ! भगवान् जिनेन्द्रदेव अनन्त गुणोंसे परिपूर्ण हैं, पंचकल्याणकोंसे पूज्य हैं और अनन्त महिमासहित विराजमान हैं इसलिये तू उन्हींकी सेवा भक्ति कर ॥७८॥ जो जीव कुदेवको छोड़कर भगवान तीर्थंकर परमदेवको ही एक अद्वितीय शरण मानकर उनकी सेवा भक्ति करता है वह उन्हीं जैसा परमात्मा हो जाता है ॥ ७९ ॥

प्रश्न—हे स्वामिन् ! कुदेव कोन है कृपाकर उनको बतलाइये, क्योंकि उनका ज्ञान होनेपर ही यह जीव उनका त्याग कर सकता है ॥ ८० ॥

उत्तर—जिनके साथ स्त्रियां हैं जो शस्त्र आभरण आदिसे सुशोभित हैं और संसाररूपी महासागरमें डूबे हुए है ऐसे विष्णु, ब्रह्मा आदि सब कुदेव ही हैं ॥ ८१ ॥ जो कृष्ण गोपियोंमें आसक्त हैं पापारम्भोंकी प्रवृत्ति करता है, जिसके हाथमें शस्त्र है और जो संसारमें

तल्लीन है वह सत्र देव किस प्रकार हो सकता है ? ॥८२॥ जिसके आधे अङ्गमें पार्वती विराजमान है, जिसके गलेमें हड्डियोंकी माला पड़ी हुई है और जो लज्जासे सर्वथा रहित है ऐसा महादेव भला किस प्रकार माना जा सकता है ? ॥ ८३ ॥

देवीके नृत्यको देखकर जिसने अपने तपका अभिमान छोड़ दिया और रागमें फँस गया वह अत्यंत तुच्छ पराक्रमको धारण करनेवाला ब्रह्मा देव कैसे हो सकता है ? ॥ ८४ ॥ गणेश आदि अन्य कितने ही देव पशु रूपमें विराजमान हैं वे केवल मूर्ख लोगोंने कल्पना कर लिये हैं तथा वे इस संसारमें अनेक दुख दरिद्रता आदिको देनेवाले हैं ॥ ८५ ॥ जिसके हाथमें शस्त्र है, जो महाक्रूर है और जो जीवोंके मारनेमें सदा तत्पर है ऐसी पाप कर्म करनेवाली चण्डीदेवीको विद्वान् लोग कैसे पूजते हैं ॥ ८६ ॥ जो विष्टा भक्षण करनेमें तत्पर है, जो दुष्ट है, अपने पैर और सींगोंसे जीवोंको मारती है ऐसी गायको लोग किस प्रकार पूजते हैं ॥ ? ८७ ॥

जिनके ऊपर कौवे बैठे हैं ऐसे पीपल आदि एकेन्द्रिय वृक्ष भला किस प्रकार पूज्य हो सकते हैं ॥ ८८ ॥ जो लोग छाछकी हँडी, घरका कूआ और कौआ आदिकी पूजा करते हैं वे बड़े मूर्ख हैं उन्हें पशु कहना चाहिये, मनुष्य नहीं ॥ ८९ ॥ जो क्रूर कर्म करनेवाले दुष्ट पुरुष नीच देवोंको पूजते हैं वे अनेक पाप उत्पन्न कर नरकरूपी महासागरमें गोता खाते हैं ॥ ९० ॥ जो मूर्ख मनुष्य गाय, हाथी आदि पशुओंको नमस्कार करते हैं वे इस लोकमें भी पशु समझे जाते हैं और मरकर परलोकमें भी पशु ही होते हैं ॥९१॥ जिस प्रकार कोई पुरुष चोरोंकी संगति करनेसे चोर होजाता है उसी प्रकार जो मूर्ख भक्तिपूर्वक वृक्षोंकी पूजा करते हैं, उन्हें नमस्कार करते हैं वे परलोकमें वृक्ष ही होते हैं ॥ ९२ ॥

जो मनुष्य नदी सरोवर आदिके जलको पूजते हैं, नमस्कार करते हैं, भक्तिपूर्वक उसमें स्नान करते हैं वे परलोकमें मछली, मगर-मच्छ आदिकी योनिमें उत्पन्न होते हैं ॥९३॥ जो मूर्ख लोग गायको नमस्कार करते हैं फिर वे उसे लकड़ी आदिसे मारते क्यों हैं? जिस जलको वन्दना करते हैं फिर वे उस जलमें शौचक्रिया क्यों करते हैं ॥ ९४ ॥ आश्चर्य है कि जिन पीपल आदि वृक्षोंको पहिले पूजते हैं, नमस्कार करतें हैं फिर उन्हींको वे नष्ट बुद्धि मूर्ख काटते हैं ॥ ९९ ॥ इसलिये हे बुद्धिमान भव्य जीव! स्वर्ग मोक्षके सुख प्राप्त करनेके लिये तू एकाग्रचित्त होकर समस्त कुदेवोंको छोड़कर श्री जिनेन्द्रदेवकी ही पूजा भक्ति कर ॥ ९६ ॥ जो अज्ञानी वीतरागी परम देवको छोडकर कुदेवोंकी सेवा भक्ति करता है वह मानों अमृतको छोडकर हलाहल विष ग्रहण करता है ॥९७॥

जो तीर्थंकर परमदेवकी पूजा करता हुआ भी अन्य कुदेवोंकी पूजा करता है वह उस मूर्ख (उस श्रृगाल) के समान है जो इधरसे भी भ्रष्ट होजाता है और उधरसे भी भ्रष्ट होजाता है ॥ ९८ ॥ जिस प्रकार परमाणुसे अन्य कोई छोटा नहीं है और आकाशसे अन्य कोई बड़ा नहीं है उसी प्रकार श्री जिनेन्द्रदेवके समान अन्य कोई देव नहीं है ॥ ९९ ॥ यही समझकर हे वत्स! तू मोक्ष प्राप्त करनेके लिये आत्माको विशुद्ध करनेवाले भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा भक्ति मन वचन कायसे कर ॥ १०० ॥

इस प्रकार तीर्थंकर परमदेवका निश्चय कर लेनेपर तू उन्हींके कहे हुए धर्मका आचरण कर। वही धर्म अहिंसामय है, सारभूत है और सब जीवोंको सुख देनेवाला है ॥१०१॥ वह धर्म दो प्रकारका है-एक मुनियोंके करने योग्य और दूसरा श्रावकोंके पालने योग्य। मुनियोंका धर्म मोक्ष-सुखको देनेवाला है और एकदेश श्रावकोंका

धर्म स्वर्गोंके सुख देनेवाला है ॥१०२॥ जो संसाररूपी महासागरमें डूबे हुए जीवोंको निकालकर मोक्षपदमें विराजमान करदे उसीको गणधरादि देवोंने धर्म कहा है। वह धर्म उत्तम क्षमा आदि ही है अन्य नहीं ॥ १०३ ॥

श्री जिनेन्द्रदेवने इस धर्मका फल सदा ऐश्वर्य विभूतियोंका प्राप्त होना, स्वर्गके सुख प्राप्त होना और साक्षात् मोक्षके सुख प्राप्त होना बतलाया है ॥१०४॥ इस धर्मके प्रभावसे मनुष्योंको अनेक प्रकारके ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं और चक्रवर्ती इन्द्र आदिके सुख सदा प्राप्त होते रहते हैं ऐसा श्री तीर्थंकर परमदेवने कहा है ॥१०५॥ श्री जिनेन्द्र-देव इस धर्मको एक कल्पवृक्षके समान बतलाते हैं। सम्यग्दर्शन इसकी बड़ी भारी जड़ है, यह दयारूपी जलसे सींचा जाता है, ज्ञान और चारित्र ही इसके महा स्कन्ध हैं, उत्तम क्षमा आदि दश धर्म-रूपी शाखाओंसे यह सुशोभित है, दान पूजा आदि नित्य कर्म ही इसके पत्ते हैं, ध्यान ही इसके पुष्प हैं और स्वर्ग मोक्ष ही इसके फल हैं। इस प्रकार यह धर्म एक कल्पवृक्षके समान है ॥ १०६-७ ॥

अव्रत आदिक इस धर्मसे भिन्न हैं अधर्म हैं। जिस प्रकार कल्प-वृक्षसे अन्य कोई मधुर वृक्ष नहीं है उसी प्रकार दया धर्मके सिवाय अन्य कोई धर्म नहीं है ॥ १०८ ॥ इसलिये हे भव्य ! तू पापरूप कुधर्मको छोडकर भगवान जिनेन्द्रदेवके कहे हुए तथा सुख देनेवाले दयारूपी धर्मको प्रतिदिन एकाग्रचित होकर पालन कर ॥ १०९ ॥

प्रश्न—हे भगवन् ! अब कृपा कर मुझे कुधर्मका स्वरूप बत-लाइये। यह दुःख देनेवाला पापरूप कुधर्म इस संसारमें किसने चलाया है ॥ ११० ॥

उत्तर—यज्ञ आदिका करना और बुद्धिपूर्वक जीव हिंसा आदिका करना सब कुधर्म हैं इसके सिवाय धर्म समझकर नदी,

समुद्रोंमें स्नान करना, तर्पण श्राद्ध करना आदि भी कुधर्म हैं ॥ १११ ॥ जो यशके लिये धर्मके लिये वा कुदेवोंके लिये जीवकी हिंसा करते हैं वा कराते हैं वे अवश्य नरकमें पड़ते हैं ॥ ११२ ॥ यदि हिंसा आदि पापोंमें आसक्त रहनेवाले नीच लोग ही स्वर्गको जाते हैं तो फिर कौनसे जीव कौन कौनसे कामोंके द्वारा नरकमें जांयगे ? इसका थोड़ासा भी विचार कर ॥ ११३ ॥

प्रतिदिन नदी समुद्रमें स्नान करनेसे अनेक जीवोंका नाश होता है, रागादिक पाप बढ़ते हैं और धर्मका नाश होता है, ऐसा तू समझ ॥ ११४ ॥ यदि हिंसा करनेसे ही धर्म होता है और स्नान करनेसे ही पवित्रता आती है तो फिर मछली आदि जलचर जीव और धीवर आदि घातक जीव ही स्वर्गको जांयगे, अन्य नहीं ? ॥ ११५ ॥ जिस प्रकार मद्यसे भरे हुवे घडेकी शुद्धि धोनेसे नहीं होती उसी प्रकार जिसका हृदय सदा दुष्ट बना रहता है उसकी शुद्धि केवल स्नान करनेसे कभी नहीं हो सकती ॥ ११६ ॥ जो अज्ञानी जीव पितरोंको तृप्त करनेके लिये तिलोंका पिंड जलमें डालते हैं वे जीव त्रस जीवोंकी और जलकायिक जीवोंकी हिंसा करनेके कारण दुर्गतिमें ही उत्पन्न होते हैं ॥ ११७ ॥

जो जीव मरे हुए जीवोंका कल्याण करनेके लिये तर्पण करते हैं और उसमें अनेक जीवोंकी हिंसा करते हैं वह सब उनका मिथ्यात्व है। ऐसे मिथ्यात्वको सेवन करनेवाले जीव संसाररूपी वनमें सदा परिभ्रमण ही किया करते हैं ॥ ११८ ॥ जो जीव मृत माता पिताओंको सुख पहुँचानेके लिये श्राद्ध करते हैं वे आकाशके पुष्पोंसे वंध्यापुत्रके लिये मुकुट बनाते हैं।

भावार्थ—जिस प्रकार वंध्यापुत्रके लिये मुकुट बनाना व्यर्थ

है, क्योंकि वंध्याके पुत्र होता ही नहीं उसी प्रकार मृत पुरुषोंके लिये श्राद्ध करना भी व्यर्थ है क्योंकि वह उनके पास पहुंचता ही नहीं ॥ ११९ ॥ जिस समय पुत्र भोजन करता है और पिता उसे स्वयं देखता है तथापि वह पुत्रके भोजनसे तृप्त नहीं होता फिर भला मरने पर वह किस प्रकार तृप्त हो सकता है ॥ १२० ॥ श्राद्ध करनेके लिये द्रव्य कमाना पड़ता है, वहुतसा अन्न सेकना पड़ता है और इन दोनों कामोंमें वहुतसे जीवोंकी हिंसा होती है। इस प्रकार श्राद्ध करनेमें भारी पाप तो होता है परन्तु उससे किसी प्रकारका पुण्य उत्पन्न नहीं होता ॥ १२१ ॥ विवेकी पुरुषोंको केवल अपना धर्म पालन करनेके लिये श्रद्धापूर्वक सुपात्रोंको दान देना चाहिये यही सबसे उत्तम श्राद्ध है। दूसरोंके लिये (मृत पुरुषोंके लिये) श्राद्ध कभी नहीं करना चाहिये क्योंकि वह श्राद्ध केवल पाप उत्पन्न करनेवाला है ॥ १२२ ॥

जो अपने वर्तमान माता-पिताओंके धर्ममें तो विघ्न करते हैं और उनके मरनेपर उनका श्राद्ध करते हैं वे अवश्य नरकके स्वामी होते हैं ॥ १२३ ॥ बहुत कहनेसे क्या ? जो मूर्ख अपने पितरोंके लिये वा कुदेवोंके लिये तप करते हैं वा दान देते हैं उनका वह सब इस संसारमें व्यर्थ हो जाता है ॥ १२४ ॥ इसी प्रकार संक्रांतिके दिन वा ग्रहणके दिन दान देना, एकादशीके दिन उपवास करना, सूर्यको पूजना आदि सब कुतप हैं, सब पाप उत्पन्न करनेवाला है ॥ १२५ ॥ जो राग द्वेषमें आसक्त हैं, मिथ्या उपदेश देनेवाले हैं, कुमार्गगामी हैं, मूर्ख हैं और जिनका हृदय स्त्रियोंमें आसक्त है ऐसे लोगोंके ही द्वारा इस कुधर्मका उपदेश दिया गया है। यह कुधर्म अज्ञानियोंको ठगनेवाला है, इंद्रियोंके अनेक दोषोंको उत्पन्न करनेवाला

है और दुष्ट है इसलिये हे भव्य ! तू ऐसे इस कुधर्मको विषैले सर्पके समान छोड ॥ १२६-१२७ ॥

जो अज्ञानी हिंसा धर्ममें आसक्त हैं, जो दुष्ट हैं, कुगुरुओंकी सेवा करनेवाले हैं, कुदेवोंकी सेवा करनेवाले हैं और मिथ्या तप करनेमें लगे हुए हैं ऐसे जीव पाप करनेके कारण कुगतियोंमें जाकर जन्म लेते हैं ॥ १२८ ॥ अग्निमें जल मरना अच्छा है, गलेमें सर्पको डाल लेना अच्छा है और विष खा लेना अच्छा है परंतु मिथ्यात्वका सेवन करते हुए जीवित रहना अच्छा नहीं ॥ १२९ ॥ भगवान् जिनेन्द्र देवने जो कुछ दान, पूजा, व्रत, तप, आदिका वर्णन किया है वही धर्म है, इसके सिवाय जो कुछ है वह अधर्म है ॥ १३० ॥ जो धर्म तप दान पूजा आदि भगवान जिनेन्द्रदेवके कहे हुए मार्गसे विरुद्ध है उस सबको दुःख देनेवाला मिथ्यात्व समझना चाहिये ॥ १३१ ॥ इस प्रकार भगवान जिनेन्द्रदेवका कहा हुआ धर्म तुझे वतलाया उसका, तू निश्चय कर।

अब आगे गुरुका स्वरूप वतलाते हैं—जिनका भेष श्रीजिनेन्द्र-देवके समान हैं और चौवीस प्रकारके परिग्रहसे रहित हैं ऐसे गुरुकी तू सेवा कर ॥ १३२ ॥

जो समस्त जीवों पर दया करते हैं, उत्तम क्षमा आदि दश धर्मोंका उपदेश देते हैं, विकथा आदि पापोंसे सर्वथा रहित हैं, जो तृण और सुवर्णको समान जानते हैं, जो पर्वतों पर अथवा कोटर गुफा आदि सूने मकानोंमें रहते हैं, जिन्होंने अपने ध्यानसे समस्त पापोंको धो डाला है, जिन्होंने दश प्रकारका वाह्य परिग्रह और चौदह प्रकारका अन्तरंग परिग्रह सर्वथा छोड़ दिया है, जिन्होंने इन्द्रियरूपी चोरोंको सर्वथा जीत लिया है, कामदेवरूपी हाथीको मार भगाया है, शरीरके

नहाने धोने आदि सब संस्कारोंका त्याग कर दिया है, जो महाबलवान हैं अथवा महापुरुष हैं, जिनके परिणाम सदा निर्मल रहते हैं, यद्यपि जिनके समस्त शरीरमें मैल लगा हुआ है तथापि परिग्रह रहित होनेसे जो सदा निर्मल रहते हैं, जो प्रातःकाल, मध्याह्नकाल, सायंकाल तीनों समय योग धारण करते हैं, जो ध्यान और अध्ययन करनेमें सदा तल्लीन रहते हैं, जो मौनव्रत पालन करते हैं, धीरवीर हैं, द्वादशाङ्ग श्रुतज्ञानके पारगामी हैं, उत्तम क्षमा आदि दशों धर्मोंको पालन करते हैं, समस्त परीषहोंको जीतते हैं, दिगम्बर मुद्रा धारण करते हैं, जिन्होंने तीनों शल्य और दन्डोंका त्याग कर दिया है, जो काम भोगोंसे विरक्त हैं, मोक्ष सुखमें आसक्त हैं, जिनका समस्त शरीर दुर्बल होरहा है, परंतु श्रेष्ठ गुणोंको जिन्होंने अत्यन्त बलवान बना लिया है, जिनका हृदय सिंहनिःक्रीडित, उग्र तप आदि कठिन तपोंमें सदा तल्लीन रहता है, जो मूलगुण और उत्तर गुणोंसे सुशोभित हैं, जो कर्मरूपी ईंधनके लिये जलती हुई अग्निके समान हैं, जो समुद्रके समान गम्भीर हैं, जो वर्षाकालमें वृक्षके नीचे विराजमान रहते हैं, शीतकालमें चौहटे मैदानमें अकेले विराजमान रहते हैं और ग्रीष्मऋतुमें पर्वतकी शिखर पर जाकर तप करते हैं, जो ऋद्धि सिद्धियोंसे परिपूर्ण हैं, भव्यजावोंको संसार-समुद्रसे पार कर देनेके लिये समर्थ हैं और जो सदा निर्भय रहते हैं, ऐसे मुनिराज ही श्रेष्ठ गुरु कहे जाते हैं। हे भव्य! स्वर्ग मोक्ष प्राप्त करनेके लिये तू श्रेष्ठ गुरुओंकी ही सेवा कर ॥१३३-१४२॥

जो अनेक दुःखोंसे भरे हुए इस संसार-सागरसे स्वयं तरते हैं और अन्य भव्य जीवोंको पार कर देनेमें समर्थ हैं, ऐसे परिग्रह रहित गुरुओंकी जो बुद्धिमान सेवा भक्ति करते हैं वे स्वर्गादिकके उत्तम साम्राज्य भोगकर अंतमें मोक्ष-सुखके स्वामी होते हैं॥१४३-१४४॥ जो अधम निर्ग्रन्थ गुरुओंको छोड़कर कुगुरुओंकी सेवा करते हैं वे

चिंतामणि रत्नको छोड़कर काचको स्वीकार करते हैं ।। १४५ ।। इसलिये हे विवेकी भव्य ! तू मोक्ष प्राप्त करनेके लिये कुगुरुओंको छोड़कर एकाग्र चित्तसे महा धीरवीर दिगम्बर और निर्ग्रन्थ मुनियोंकी सेवा भक्ति कर ।। १४६ ।।

प्रश्न—हे स्वामिन् ! जो संसाररूपी महासागरमें डूब रहे हैं और धर्मध्यान आदिसे शुभ भावनाओंसे रहित हैं ऐसे कुगुरुओंका स्वरूप कृपाकर कहिये ।। १४७ ।।

उत्तर—जो धन धान्य आदिमें लगे हुए हैं, सदा अर्थ और काम दो पुरुषार्थोंकी ही लालसा रखते हैं, जो आर्तध्यान तथा रौद्र-ध्यानमें तत्पर रहते हैं, घर सम्बन्धी व्यापारके बोझसे दबे हुए हैं, मिथ्यात्वको प्रगट करनेवाले हैं, पापोंके करनेमें चतुर हैं, स्त्रियोंके आश्रय रहते हैं, सदा मांगनेमें लगे रहते हैं, जो दुष्ट हैं, मूर्ख हैं, दुर्गतिके देनेवाले हैं, मिथ्या उपदेश देनेवाले हैं, नीच हैं, मूर्ख जीवोंको ठगते फिरते हैं, क्रोधादि कषायोंमें लगे हुए हैं, सदा मिथ्यात्वको बढ़ाते रहते हैं, और जिन्होंने जिनमार्गको छोड़ रक्खा है; ऐसे अनेक कुगुरु हैं, हे भाई ! तू पापोंसे बचनेके लिये सर्पके समान दूरसे ही उनका त्याग कर ।। १४८-१५१ ।।

अनेक दुराचारोंमें लगे हुए जो कुगुरु संसाररूपी समुद्रमें स्वयं डूब रहे हैं वे भला अन्य जीवोंको कैसे पार कर सकेंगे ।। १५२ ।। सर्प, शत्रु और चोर आदिका समागम करना अच्छा, परंतु मिथ्यात्व मार्गमें लगे हुए इन कुगुरुओंका समागम अच्छा नहीं; क्योंकि सर्प शत्रु आदिके समागमसे एक ही भवमें दुःख होता है परंतु इन कुगुरु-ओंके समागमसे अनन्त भवोंतक दुःख प्राप्त होता रहता है।।१५३।। यही समझकर हे भव्यजीव ! हे भाग्यशालीन् ! स्वर्ग मोक्ष प्राप्त

करनेके लिये तू समस्त जीवोंका उपकार करनेवाले श्रेष्ठ निर्ग्रन्थ गुरुओंकी ही सेवा भक्ति कर ॥ १५४ ॥ हे भव्यजीव ! गणधरादि महापुरुष भी जिनकी सेवा करते हैं ऐसे श्रीजिनेन्द्रदेवकी सेवा कर, तथा उन ही श्रीजिनेन्द्रदेवके कहे हुए परमपवित्र धर्मको धारण कर, और अनेक गुणोंसे सुशोभित निर्ग्रन्थ गुरुओंका स्मरण कर। ये तीनों ही सम्यग्दर्शनके प्रधान कारण हैं अर्थात् इन तीनोंका यथार्थ श्रद्धान करना ही सम्यग्दर्शन कहलाता है ॥ १५५ ॥

हे वत्स ! यह सम्यग्दर्शन एक अमृतके समान है क्योंकि यह समस्त दोषोंसे रहित है। भगवान तीर्थंकर परमदेवने स्वयं इसको निरूपण किया है, तीनों लोकके इंद्र इसकी सेवा करते हैं, यह भव्यरूपी पात्रमें ही रह सकता है, अभव्यके कभी नहीं होता, तथा यह उत्तम गुणोंकी नीधि है। इसके होनेसे अनेक उत्तम गुण अपने आप प्रगट होजाते हैं और मोक्षरूपी वृक्षका तो यह वीज है। इसके प्रगट होनेसे मोक्ष अवश्य मिलता है इसलिये सवप्रकारकी शंकाओंको छोड़कर तू इसका पान कर अर्थात् इस सम्यग्दर्शनको धारण कर ॥१५६॥

इस प्रकार आचार्य श्रीसकलकीर्ति विरचित प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमें देव गुरु धर्मके स्वरूपको कहनेवाला यह तीसरा सर्ग समाप्त हुआ।

चौथा सर्ग ।

अथानन्तर—आनन्द बढ़ानेवाले भगवान् अभिनंदन परमदेवको नमस्कार कर सम्यग्दर्शनके भेद, कारण और हेतु कहता हूं ॥ १ ॥ जो जीव भव्य हो, पंचेन्द्रिय हो, संज्ञी हो, पर्याप्तक हो और काल-लब्धि आदि समस्त कारण जिसे प्राप्त हो गये हों ऐसा जीव प्रथम औपशमिक सम्यग्दर्शनको प्राप्त होता है ॥ २ ॥ फिर वह अन्तर्मुहूर्तके बाद मिथ्यात्व गुणस्थानमें निवास कर क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शनको प्राप्त होता है ।

भावार्थ—औपशमिक सम्यदर्शनका समय अन्तर्मुहूर्तके बाद मिथ्यात्व होता ही है । इसके बाद समयानुसार क्षायोपशमिक होता है ॥ ३ ॥ अत्यन्त शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करनेवाले जीव क्षायिक सम्यग्दर्शनको प्राप्त होते हैं । यह क्षायिक सम्यग्दर्शन सुमेरु पर्वतके समान अकम्प है, कभी नष्ट नहीं होता और कर्मरूपी ईंधनको अग्निके समान है ॥ ४ ॥ जिस प्रकार मिट्टी मिले पानीमें फिटकरी या कतक-फल डाल देनेसे मिट्टी नीचे बैठ जाती है और शुद्ध जल ऊपर आ जाता है उसी प्रकार अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति मिथ्यात्व इन सात प्रकृतियोंके उपशम होनेसे भव्य जीवोंके पहिला औपशमिक सम्यग्दर्शन होता है ॥ ५ ॥

जिस प्रकार उस स्वच्छ जलको दूसरे वर्तनमें उतार लेनेसे फिर उस स्वच्छ जलमें किसी प्रकारकी मिट्टी नहीं रहती, उसी प्रकार ऊपर लिखी हुई सातों प्रकृतियोंके अत्यन्त क्षय होनेसे जीवोंके क्षायिक सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, यह सम्यग्दर्शन सारभूत है और मोक्ष प्राप्त करानेवाला है ॥ ६ ॥ पहिले छह प्रकृतियोंके उदयाभावी क्षय

होनेसे तथा उपशम होनेसे और देशघाती सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय होनेसे क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन होता है । जैसे मिट्टी मिले जलमेंसे मिट्टीका कुछ भाग निकल गया हो और थोड़ासा बना हो, उसी प्रकार चल मलिन आदि दोष जिसमें हों वही क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन है ॥ ७ ॥ मिथ्यात्व प्रकृतिके तीन भेद हैं–मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति मिथ्यात्व । तथा अनन्तानुबन्धी कषायके चार भेद हैं–अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ । हे वत्स ! तू इन सातों प्रकृतियोंको नष्ट कर सम्यग्दर्शनको धारण कर । यह सम्यग्दर्शन मोक्ष महलकी प्रथम सीढी है ऐसा भगवान सर्वज्ञदेवने कहा है ॥ ८–९ ॥

प्रश्न—हे स्वामिन् ! यह मिथ्यात्व कैसा है और कषाय कैसे हैं सो कृपाकर बतलाइये । क्योंकि ये जीव जानकर ही उनका त्याग कर सकते हैं ॥ १० ॥

उत्तर—जिससे विवेक सब नष्ट हो जाय, मूढ़ता प्रगट हो और जो प्राणियोंको नरकमें पटक दे उसको श्री जिनेन्द्रदेवने मिथ्यात्व कहा है ॥ ११ ॥ यह मिथ्यात्व अनेक रोग क्लेश उत्पन्न करनेवाला है, दुष्ट है, अनन्त संसारमें परिभ्रमण करानेवाला है, और मोक्षमहलमें जानेसे रोकनेके लिये जुड़े हुए किवाड़ोंके समान है । यह मिथ्यात्व अनन्त परंपरारूप दुःखोंको देनेमें चतुर है, पापका बीज है और धर्मरूपी वनको जला देनेके लिये अग्निके समान है इसलिये हे वत्स ! इसे तू दूरसे ही छोड़ ॥ १२–१३ ॥

मिथ्यादृष्टी जीव हिंसा रहित धर्मको कभी नहीं समझ सकता । जिस प्रकार पागल पुरुष पदार्थोंको उलटा ही जानता है उसी प्रकार मिथ्यादृष्टी जीव भी असत्य और कुधर्मको ही जानता है ॥ १४ ॥

उस मिथ्यात्वसे ज्ञान चारित्र धर्म आदि सब नष्ट हो जाता है । यह जीवोंको विषके समान है और बुद्धिको नाश करनेवाला है इसलिये हे भव्य ! इसे तू शीघ्र ही छोड़ ॥ १५ ॥ मुनिराजोंने इस मिथ्यात्वके पांच भेद बतलाए हैं—एकांत, विपरीत, वैनयिक, संशय और अज्ञान ॥ १६ ॥ जिस मतमें जीव तत्त्वोंको तथा अन्य तत्त्वोंको सर्वथा क्षणिक बतलाया है, जिस मतमें कर्मोंको अन्य जीव करता है और उनके फलोंको अन्य ही भोगता है तथा जो मछली आदिके भक्षण करनेमें दोष ही नहीं समझते उनका वह दुःख देनेवाला, दुष्ट और केवल अपनी कुबुद्धिसे कल्पना किया हुआ एकांत मिथ्यात्व है ॥ १७–१८ ॥

जिस मतमें जीवोंकी हिंसासे पुण्य बतलाया गया हो, स्नानसे शुद्धि बतलाई गई हो, जिनके देव हिंसा आदि क्रूर कर्मोंमें लगे हुए हैं, गुरु लोग कामकी लालसामें लिप्त हों, जिसमें पशु वृक्ष आदिकी पूजा करना बतलाया हो और मृत मनुष्योंका तर्पण बतलाया हो, ऐसा ब्राह्मणोंका वैदिक मत विपरीत मिथ्यात्व समझना चाहिये ॥ १९–२० ॥ जिस मतमें प्रतिदिन पात्र अपात्रोंकी, देव अदेवोंकी सबकी विनय की जाती हो वह तापसियोंका विनय मिथ्यात्व कहलाता है ॥ २१ ॥ जो तीर्थंकर अरहन्तदेवमें भी आहारकी कल्पना करते हैं, स्त्रियोंको भी मोक्ष होना बतलाते हैं, जो वर्द्धमानस्वामीका गर्भापहरण मानते हैं, जो लकड़ी, वस्त्र, पात्र आदि सबको धर्मका साधन मानते हैं (धर्मोपकरण मानकर साधु लोग रखते हैं) वह दुःख देनेवाला श्वेतांबरोंका सांशयिक मिथ्यात्व है ॥ २२–२३ ॥ अज्ञान मिथ्यात्व म्लेच्छ आदि जीवोंके होता है, जिनमें भक्ष्य अभक्ष्यका कुछ विचार नहीं होता ॥ २४ ॥

यह पांचों प्रकारका मिथ्यात्व पापोंको उत्पन्न करनेवाला है, और बुद्धिके द्वारा स्वयं कल्पित किया हुआ है। इनके सिवाय अभिप्रायोंके भेदसे इस संसारमें और भी अनेक प्रकारका मिथ्यात्व समझ लेना चाहिये ॥ २५ ॥ यह मिथ्यात्व मिथ्यात्वकर्मके उदयसे होता है। यह धर्मको नाश करनेवाला है। ज्ञान चारित्रको जडसे उखाड देनेवाला और अनेक पापोंका कारण है ॥ २६ ॥ सम्यक्त्वप्रकृति सम्यग्दर्शनमें मल उत्पन्न कर देती है तथा यह जिनालय हमारा है, यह प्रतिमा हमारी है, यह दूसरेकी है, इस प्रकार हठ पूर्वक ममत्व उत्पन्न कर देती है ॥ २७ ॥ सम्यङ् मिथ्यात्व प्रकृति सब देवोंमें तथा सब धर्मोंमें समान परिणाम उत्पन्न कर देती है इसीलिये उसको मिश्र प्रकृति कहते हैं ॥ २८ ॥

इसी प्रकार अनंत संसार परिभ्रमण करानेवाले और पापोंके कारण ऐसे अनंतानुबंधी कषायके भी क्रोध मान माया लोभके भेदसे चार भेद होते हैं ॥ २९ ॥ हे वत्स ! तू इन सातों प्रकृतियोंका त्याग कर और दुःखोंको दूर करनेवाले, स्वर्ग मोक्ष प्राप्त करानेवाले तथा नरक और तिर्यंच गतिको रोकनेवाले सम्यग्दर्शनको स्वीकार कर ॥ ३० ॥ जो भव्य जीव शंका आदि दोषोंसे रहित और आठों अंगों सहित इस शुभरूप सम्यग्दर्शनको स्वीकार करते हैं वे अवश्य ही परम निर्वाण पदको प्राप्त करते हैं ॥ ३१ ॥

प्रश्न—हे प्रभो ! अब कृपाकर मेरे लिये सम्यग्दर्शनके अंगोंका निरूपण करिये, क्योंकि जान लेने पर ही वे स्वीकार किये जा सकते हैं ॥ ३२ ॥

उत्तर—चाहे पर्वतमाला चलायमान होजाय और अग्नि शीतल हो जाय तथापि भगवान सर्वज्ञदेवके कहे हुए तत्त्वोंमें कभी अंतर

नहीं पड़ सकता ऐसा श्री जिनेंद्रदेवने कहा है। इसी प्रकार सूक्ष्म तत्त्वोंमें, धर्मके स्वरूपमें, अरहंतदेवके स्वरूपमें, श्रेष्ठ मुनियोंमें और शुभ ज्ञानमें शंकाका त्याग कर देना निश्चल हो जाना निःशंकित अंग कहलाता हैं ॥ ३३–३४ ॥ जिसे किसी प्रकारका भय नहीं है जिसने कुदेवादिकोंका सर्वथा त्याग कर दिया है और भगवान जिनेंद्र-देवके कहे हुए तत्त्वोंमें किसी प्रकारकी शंका नहीं करता वह अवश्य ही मोक्ष लक्ष्मीको अपने वश कर लेता है ॥ ३५ ॥ सौभाग्य प्राप्त होनेमें, उत्तम भोगोंके मिलनेमें, स्वर्गके सुखोंमें, राज्यमें और धना-दिकमें इच्छाका त्याग कर देना—इनके प्राप्त होनेकी इच्छा न करना सो निःकांक्षित अंग कहलाता है ॥ ३६ ॥

जो मूर्ख धर्म सेवन कर अपने भोग सेवन करनेकी इच्छा करता है वह स्वर्ग मोक्षको सिद्ध करनेवाले अमूल्य रत्नको देकर काच खरीदता है ॥ ३७ ॥ जो विद्वान् धर्म सेवन कर सदा मोक्ष प्राप्त होनेकी और कर्मोंके नाश होनेकी इच्छा करते हैं वे अवश्य ही भगवान जिनेंद्रदेवको प्राप्त हुए सुखोंको पाते हैं। ॥ ३८ ॥ यदि मुनिराजका शरीर रोग आदिसे पीड़ित हो अथवा उनके सब शरीर पर मैल लगा हो तो भी उन्हें देखकर घृणा न करना, उनके गुणोंमें प्रेम करना निर्विचिकित्सा अंग कहलाता है ॥ ३९ ॥ जिनमार्गमें सब जगह परीषहोंका सहन करना ही उत्तम होता है ऐसा विचार कर घृणाका त्याग देना भावपूर्वक निर्विचिकित्सा अंग कहलाता है ॥ ४० ॥ जो धीर वीर मुनि रोगादिकसे पीड़ित होकर भी महा-व्रतोंको पालन करते हैं, घोर तपश्चरण करते हैं इसलिये वे तीनों लोकमें धन्य गिने जाते हैं ॥ ४१ ॥

जो चतुर पुरुष धर्म, देव, मुनि, पुण्यदान और शास्त्र आदिमें पूर्ण विचार करते हैं उनके वह अमूढ़दृष्टि अंग समझा जाता

है ॥ ४२ ॥ जो जीव देव, सद्धर्म, गुरु और तत्त्वोंके यथार्थ स्वरूपको विचार करनेमें चतुर है, वह स्वर्गादिकके सुख और राज्य आदिको पाकर अन्तमें मोक्षलक्ष्मीका स्वामी होता है ॥ ४३ ॥ जो मूर्ख धर्म अधर्मके स्वरूपको नहीं जानता, न देव कुदेवोंके स्वरूपको जानता है वह धर्म समझकर अनेक पाप करता है और इसलिये अन्तमें दुर्गतिको प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥ जो विवेकी पुरुष धर्मात्मा और मुनियोंके दोषोंको देखकर भी ढक देते हैं, प्रगट नहीं करते उसे उपगूहन अङ्ग कहते हैं ॥ ४५ ॥

जो विद्वान् जिनमार्गके आये हुए (अज्ञान वा प्रमादसे लगे हुए) दोषोंको देखकर ढक देते हैं उन्हें स्वर्ग मोक्षादिक प्राप्त नहीं होंगे ? अर्थात् अवश्य होंगे ॥ ४६ ॥ जो नित्य जिनधर्मकी वा मुनियोंकी निन्दा करता है वह पापके भारसे अवश्य नरकरूपी महासागरमें पड़ता है ॥ ४७ ॥ जो धर्मात्मा पुरुष व्रत चारित्र वा धर्मसे डिगते हुए पुरुषोंको फिर उसीमें स्थिर कर देता है, धर्ममें लगा देता है वह उसका स्थितिकरण अङ्ग कहलाता है ॥४८॥ जो विद्वान् अन्य मनुष्योंको धर्मादिकमें सदा स्थिर करते रहते हैं वे स्वर्गादिकके सुख पाकर अन्तमें मोक्षपदमें जा विराजमान होते हैं ॥ ४९ ॥

जो मूर्ख दान धर्म तप ज्ञान पूजा आदिमें विघ्न करते हैं वे अवश्य ही नरकोंके दुःख भोगते हैं ॥ ५० ॥ जिस प्रकार हालकी प्रसूता गाय अपने बच्चेपर प्रेम करती है उसी प्रकार जो विद्वान् धर्मात्मा भाइयोंमें मुनियोंमें और जैनधर्ममें प्रेम करते हैं उनका वह सबसे उत्तम वात्सल्य अंग समझना चाहिये ॥ ५१ ॥ जो भव्य मुनियोंमें जैनधर्ममें और धर्मात्माओंमें सुख देनेवाला धर्म रूप प्रेम करता है वह तीर्थंकरकी विभूतिको पाकर मोक्ष प्राप्त करता है ॥ ५२ ॥

जो अधम स्त्री पुत्र आदि संतानोंमें पाप उत्पन्न करनेवाला प्रेम करते हैं वे अनेक दुःखोंको पाकर अवश्य ही दुर्गतियोंमें जन्म लेते हैं ॥५३॥

ज्ञानके द्वारा, उग्र तपश्चरणके द्वारा तथा दान पूजा आदिके द्वारा जैनधर्मका माहात्म्य प्रकट करना प्रभावना अंग है ॥ ५४ ॥ जो भव्य जीव श्रुतज्ञानके द्वारा अथवा पूजा प्रतिष्ठाके द्वारा अथवा अन्य धार्मिक कार्योंके द्वारा जिनधर्मकी महिमा प्रगट करते हैं वे अवश्य ही मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ ५५ ॥ जो दुष्ट पुण्य उत्पन्न करनेवाली जिनधर्मकी प्रभावनामें विघ्न करते हैं वे अवश्य ही अनेक दुःखोंको पाकर नरकमें पड़ते हैं ॥ ५६ ॥

जिस प्रकार अपनी सेनाके साथ होनेसे राजा अपने शत्रुओंको नष्ट कर देता है उसी प्रकार इन आठों अंगोंसे परिपूर्ण और सारभूत सम्यग्दर्शन समस्त कर्मरूपी शत्रुओंको नष्ट कर देता है ॥ ५७ ॥ इस सम्यग्दर्शनके एक एक अंगको पालन करके ही अनेक भव्य जीवोंने मोक्ष प्राप्त किया है फिर भला समस्त अङ्गोंको पालन करते हैं वे क्यों नहीं मोक्ष प्राप्त कर सकते ? अर्थात् वे अवश्य मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ ५८ ॥ इसलिये हे भव्यजीव ! तू इन आंठ अङ्गोंसे परिपूर्ण सम्यग्दर्शनको धारण कर । यह सम्यग्दर्शन शुभ है, अनेक कर्म-समूहको नष्ट करनेवाला है और मोक्षका साधन है ॥ ५९ ॥

प्रश्न—हे भगवन् ! इन आठों अङ्गोंके सेवन करनेसे किसकिस भव्य जीवको क्या क्या फल प्राप्त हुआ है सो आप कृपाकर सब मुझसे कहिये ॥ ६० ॥

उत्तर—हे भव्य ! यह सम्यग्दर्शन अनुपम गुणोंकी निधि है, स्वर्ग मोक्षकी जड़ है । तीनों लोकोंके स्वामी तीर्थंकर भी इसकी सेवा करते हैं । यह कर्मरूपी वृक्षको काटनेके लिये कुठारके समान है ।

संसार रूपी महासागरसे पार होनेके लिये जहाजके समान है। पुण्यरूप है, तीर्थरूप है और अत्यंत पवित्र है। इसलिये तू सब तरहकी कुसंगतियोंसे वचकर आठों अंगोंसहित इसका पालन कर॥६१

इसप्रकार आचार्य श्रीसकलकीर्ति विरचित प्रश्नोत्तर श्रावकाचारमें आठों अङ्गोंको निरूपण करनेवाला यह चौथा सर्ग समाप्त हुआ।

पांचवां सर्ग।

अथानंतर—अपनी वुद्धिको श्रेष्ठ वनानेके लिये मैं श्री सुमतिनाथ भगवानको नमस्कार कर आठों अंगोंमें प्रसिद्ध होनेवाले अंजन आदिकी कथा कहता हूं॥ १॥ सम्यग्दर्शनके प्रथम निःशंकित अंगमें जो मनुष्य प्रसिद्ध हुआ है उसकी संवेग प्रगट करनेवाली कथा मैं कहता हूं॥ २॥ एक धन्वंतरी राजा था। विश्वानुलोम नामका एक ब्राह्मण उसका मित्र था। पुण्यके प्रभावसे धन्वंतरीका जीव तो मरकर ज्योतिष्क विमानोंमें अमितप्रभ नामका देव हुआ और उस ब्राह्मणका जीव विद्युत्प्रभ नामका देव हुआ। इनमेंसे अमितप्रभ धर्मात्मा था और अच्छी ऋद्धियां उसे प्राप्त थीं तथा विद्युत्प्रभ धर्महीन था और ऋद्धियां भी उसे उससे कम प्राप्त हुई थीं॥३-४॥ किसी एक दिन अमितप्रभ नामका देव सम्यग्दर्शन ग्रहण करानेके लिये विद्युत्प्रभके घर आया परंतु उस मूर्खने सम्यग्दर्शन स्वीकार किया ही नहीं॥ ५॥

तदनंतर वे दोनों धर्मके विषयमें कुछ विवाद करने लगे और अपने अपने धर्मकी परीक्षा करानेके लिये यमदग्नि नामके तपस्वीके पास आए॥ ६॥ उन दोनोंने पक्षीका रूप धारण कर लिया और

किसी तरह उसके तपश्चरणको भंग कर दिया । फिर वे दोनों देव विद्युत्प्रभकी सलाहसे राजगृह नगरमें आए ॥ ७ ॥ वहां पर एक जिनदत्त नामका सम्यग्दृष्टी सेठ था, वह बुद्धिमान व्रतोंसे भी सुशोभित था और दान पूजा आदि कार्योंमें सदा तत्पर रहता था ॥ ८ ॥ उस दिन कृष्ण पक्षकी अष्टमी थी । उस सेठने प्रोषधोपवास किया था और रात्रिमें कायोत्सर्ग धारण कर स्मशानमें जा विराजमान हुआ था। अकस्मात् वहीं पर वे दोनों देव आ निकले और उन्होंने ध्यान करते हुए सेठको देखा ॥ ९ ॥ तब अमितप्रभ देवने कहा कि हमारे साधु लोगोंकी बात तो दूर ही रहो, हे भाई ! यदि तुझमें शक्ति है तो ये गृहस्थ सेठ ध्यान लगाये हुए विराजमान हैं अनेक गुणोंके सागर हैं, निस्पृह हैं और अपनी शक्तिके अनुसार ध्यान कर रहे हैं इन्हींको तू ध्यानसे चलायमान कर दे ॥ १०-११ ॥

अमितप्रभकी यह बात सुनकर विद्युत्प्रभने वध, बंधन, हाव, भाव आदि अनेक कुरीतियोंसे असह्य और महा घोर उपसर्ग करना प्रारंभ किया ॥ १२ ॥ परंतु वे सेठ भगवान् वीतराग परमदेवके ध्यान करनेमें तल्लीन बने रहे, उन्होंने शरीरसे ममत्व छोड़ दिया । अपने संवेग आदि गुण बढ़ा लिये और वे निश्चल होकर ध्यान करते रहे ॥ १३ ॥ उस समय वे धीरवीर सेठ पर्वतके समान निश्चल थे, मुनिके समान परिग्रह रहित थे, जलके समान निर्मल थे, और सागरके समान गम्भीर थे ॥ १४ ॥ जब देव सब कुछ कर चुका, आगे करनेमें असमर्थ हो गया तब वह अपने चित्तमें बहुत ही लज्जित हुआ । उसने अपना अभिमान छोड़कर धर्म स्वीकार किया और संवेग धारण किया ॥ १५ ॥

इधर सबेरा होते ही सब परीषहोंको जीतकर सेठने अपने कायोत्सर्गका विसर्जन किया और कुछ देर तक सुखसे बैठे ॥ १६ ॥

इतनेमें ही वे दोनों देव इनके पास आए। दोनोंने सेठको नमस्कार किया और बड़ी भक्तिसे दिव्य वस्त्र और आभूषणोंसे सेठकी पूजा की ॥ १७ ॥ तदनंतर उन देवोंने सब हाल कहा और प्रार्थना की कि हे उत्तम विद्वान्! आप धर्मकार्योंके लिये तथा यात्रा आदि धार्मिक कार्य करनेके लिये सब कार्योंको सिद्ध करनेवाली और सारभूत इस आकाशगामिनी विद्याको स्वीकार कीजिये ॥ १८ ॥ यदि सार-भूत पंच नमस्कार मंत्रके द्वारा आराधना और पूजा की जायगी तो पुण्यकर्मके उदयसे यह विद्या अन्य लोगोंको भी सिद्ध होजायगी ॥ १९॥

इस प्रकार कहकर, उनको नमस्कार कर, वारवार उनकी प्रशंसा कर और अनेक प्रकारकी वातें कर वे दोनों देव अपने स्थानको चले गये ॥ २० ॥ इधर जिनदत्त सेठ उस आकाशगामिनी विद्याके प्रभावसे पूजाकी सामग्री लेकर मेरु आदि पर्वतोंपर ढाईद्वीपके अकृत्रिम चैत्यालयोंकी पूजा करनेके लिये प्रतिदिन जाने लगे ॥ २१ ॥

किसी एक दिन उस सेठसे सोमदत्त नामके मालीने पूछा कि हे प्रभो! आप प्रतिदिन कहां जाया करते हैं? तब सेठने उत्तर दिया कि हे वत्स सुन! मैं प्रतिदिन अकृत्रिम चैत्यालयमें विराजमान अत्यन्त मनोहर जिनप्रतिमाकी पूजा करनेके लिये और उससे पुण्य सम्पादन करनेके लिये जाया करता हूं ॥ २२-२३ ॥ तब सोमदत्तने फिर पूछा कि आप किस प्रकार जाया करते हैं तब इसके उत्तरमें सेठने विद्युत्प्रभदेवकी सब कथा कह सुनाई और उस आकाशगामिनी विद्याका भी सब हाल कह सुनाया ॥ २४ ॥ तब सोमदत्तने फिर प्रार्थना की कि हे विद्वन्! कृपाकर मुझे भी वह विद्या दे दीजिये मैं भी आपके साथ पुष्पादिक लेकर चला करूँगा ॥ २५ ॥ उसकी यह प्रार्थना सुनकर सेठने धर्मकार्य करनेके लिये धर्मकार्योंको सिद्ध

करनेवाली उस विद्याके सिद्ध करनेका सब उपाय बतला दिया ॥२६॥

उस विद्याको सिद्ध करनेके लिये सोमदत्तने पहिले दो प्रोषधोपवास किये फिर कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीके दिन किसी अत्यन्त भयानक स्मशानमें एक भारी वटवृक्षकी पूर्व शाखा पर एक दामका सींका बांधा। उस सींकेमें एकसौ आठ दाभकी लड़ियां थीं और उसके नीचे भूमिपर ऊपरको मुँह किये हुए तीक्ष्ण शस्त्र गढ़े हुए थे ॥ २७-२८ ॥ इतना काम करनेपर वह पुष्पादिक लेकर उस सींकेमें जा बैठा और सर्वश्रेष्ठ पंच नमस्कार मंत्रका उच्चारण कर एक एक लड़ी काटनेका उद्योग करने लगा।

इस प्रकार वह पहिली लड़ी काटना ही चाहता था कि नीचेके छुरा आदि तीक्ष्ण शस्त्रोंको देखकर वह डर गया और विचार करने लगा कि यदि दैवयोगसे सेठके वचन असत्य हो जांय (सब लड़ियोंके काट लेनेपर भी विद्या सिद्ध न हो) तो फिर अवश्य ही मेरा मरण हो जायगा ॥ २९-३१ ॥ इस प्रकार विचारकर वह मूर्ख सींकेसे उतर आया परन्तु कुछ सोचकर फिर चढ़ गया इसी प्रकार वह बहुत देर तक चढ़ने उतरनेका काम करता रहा। इसी बीचमें एक दूसरी घटना इस प्रकार हुई ॥ ३२ ॥

उस समय उस नगरमें प्रजापाल नामके राजा राज्य करते थे, उनको सुख देनेवाली कनकावती रानी थी उसके गलेमें एक रत्नोंका हार था जो कि बहुत ही सुन्दर था ॥ ३३ ॥ उस हारको देखकर एक वेश्याने अपने मनमें विचार किया कि इस हारके विना जीना व्यर्थ है ॥ ३४ ॥ रातको उस वेश्याके घर अञ्जन नामका चोर आया। उससे उस वेश्याने कहा कि यदि तू राजमहलमेंसे लाकर वह रानीका हार मुझे देगा तभी मैं तुझे अपना स्वामी बनाऊँगी

अन्यथा नहीं। वेश्याकी यह बात सुनकर चोरने उसे धैर्य बन्धाया और बड़े अहंकारसे उस हारको लेनेके लिये निकला॥ ३५-३६॥ अपने विज्ञान बलसे वह राजभवनमें घुस गया और अपनी कुशलतासे हार लेकर चलता बना। परन्तु उस हारमें लगे हुए रत्नोंका प्रकाश बहुत था इसलिये कोतवाल और पहरेदारोंसे छिप न सका और उन्होंने पकड़नेके लिये चोरका पीछा किया परन्तु वह चोर पहरेदारोंको अपने पीछे पीछे आता हुआ जानकर उस हारको छोड़कर भाग गया। भागते भागते वह उसी वटवृक्षके नीचे आया जहांकि सोमदत्त माली आकाशगामिनी विद्या सिद्ध करनेके लिये प्रयत्न कर रहा था और डरकर चढ़ने उतरनेका काम कर रहा था। चोरने उस सबका कारण पूछा। उत्तरसे उस सोमदत्त मालीने भी सब ज्योंका त्यों बतला दिया॥ ३७-३८॥

अंजनचोरको सेठके वचनों पर विश्वास हो गया और उसने बिना किसी शंकाके उस पर चढ़कर एक ही वार पंच नमस्कारका उच्चारण कर सब लड़ियें काट डालीं। जिस समय सब लड़ियोंके कट जाने पर वह नीचे गिरने लगा उसी समय आकाशगामिनी विद्याने आकर उसे रोक लिया और उससे प्रार्थना की कि हे स्वामिन्! कृपाकर मुझे आज्ञा दीजिये इस समय आपका कौनसा काम करूं॥ ३९-४०॥

तब अजनचोरने कहा कि इस समय मुझे जिनदत्त सेठके समीप ले चलो। यह सुनकर उस विद्यादेवताने उसी समय विमान बनाया और उस पर बिठाकर आकाश मार्गसे ले चली। उस समय सेठ सुदर्शनमेरुपर चैत्यालयमें थे इसलिये वह विद्या भी उसे अनेक महिमाओंसे सुशोभित उस सुदर्शनमेरुके चैत्यालयमें ले गई और

सेठके सामने जाकर पृथ्वी पर उसे उतार दिया ॥ ४१-४२ ॥ अँजनचोर उस सुवर्ण और रत्नोंके बने हुये अकृत्रिम दिव्य जिन चैत्यालयको देखकर बहुत ही प्रसन्न हुआ ॥ ४३ ॥ उसने बड़ी भक्तिसे अरहंत देवको नमस्कार किया और फिर उस बुद्धिमानने भव्य जिनदत्तके समीप आकर उसको नमस्कार किया और वह उनसे इसप्रकार मधुर वचन कहने लगा ॥४४॥ हे स्वामिन् ! जिस प्रकार आपके प्रसादसे मुझे महा विद्या सिद्ध हुई है इसी प्रकार इस लोक और परलोक दोनों लोकोंमें कल्याण करनेवाला धर्म मुझे बतलाइये ॥ ४५ ॥ अंजनचोरकी यह बात सुनकर वे सेठ उसको साथ लेकर समीप ही विराजमान दो चारण मुनियोंके समीप पहुँचे। दोनोंने उन मुनिराजोंके चरणकमलोंको नमस्कार किया और बैठकर सर्वोत्तम धर्मका स्वरूप पूछा ॥ ४६ ॥ उन दोनोंमेंसे बड़े मुनिराजने उन दोनोंके लिये अनेक महिमाओंसे सुशोभित और सदा सुख देनेवाला मुनि और श्रावक दोनों धर्मका निरूपण किया ॥ ४७ ॥ सब तरहके परिग्रहसे रहित और सब दोषोंसे रहित ऐसे मुनिराजके महाधर्मको सुनकर उस अंजनचोरने उन मुनिराजसे दीक्षा धारण करनेकी प्रार्थना की ॥ ४८ ॥

उत्तरमें मुनिराजने कहा—हे भद्र ! तूने यह बहुत ही अच्छा विचार किया क्योंकि अब तेरी आयु थोड़े ही दिनोंकी रह गई है इसलिये अब तपश्चरण करना ही सर्वोत्तम है ॥ ४९ ॥ तदनन्तर उस अञ्जनचोरने दीक्षा धारण की, घोर तपश्चरण किया और शुक्लध्यानके निमित्तसे चारों घातिया कर्मोंको नष्ट किया ॥ ५० ॥ उन अञ्जन मुनिराजने घातिया कर्मोंको नाशकर तीनों लोकोंमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाला और सदाकाल एकसा रहनेवाला केवलज्ञान रूपी साम्राज्य बहुत शीघ्र प्राप्त कर लिया ॥ ५१ ॥ उस बुद्धिमानने समयानुसार

चार्योके अघातिया कर्मोका नाश कर डाला और इन्द्र नरेन्द्र आदि सबसे पूज्य होकर कैलाश पर्वतसे मोक्ष प्राप्त किया ॥ ५२ ॥

देखो, जो अञ्जनचोर अनेक व्यसनोंमें लीन था वह भी निःशंकित गुणके प्रभावसे ध्यान कर अनन्त सुखोंसे परिपूर्ण मोक्षमें जा विराजमान हुआ फिर भला जो सम्यग्दृष्टी है, अनेक श्रेष्ठ व्रतोंको पालन करता है और अनेक धर्मकार्योंसे सुशोभित है वह निःशंकित गुणके प्रभावसे मोक्षका स्वामी क्यों नहीं हो सकता ? ॥ ५३–५४ ॥ इसी प्रकार महाराज विभीषणने भी निःशंकित गुणका पालन किया था उनकी कथा रामायणमें (पद्मपुराणमें) है वहांसे समझ लेना चाहिये ॥ ५५ ॥ द्वारिकापुरीके राजा वसुदेव और उनकी रानी देवकी भी निःशंकित अङ्गमें प्रसिद्ध हुई हैं उनकी कथा भी हरिवंशपुराणसे जान लेनी चाहिये ॥ ५६ ॥

इस निःशंकित गुणसे विभूषित और भी बहुतसे लोग हुए हैं उन सबकी कथाएं भगवान जिनेन्द्रदेवसे कहे हुए शास्त्रोंमे जान लेना चाहिये ॥ ५७ ॥ इसलिये भव्य जीवोंको भगवान जिनेन्द्रके कहे हुए सिद्धांतशास्त्रोंमें तथा उनके उपदेशमें कभी शंका नहीं करनी चाहिये और ज्ञानी पुरुषोंको अपना सम्यग्दर्शन निश्चल और निर्मल बना लेना चाहिये ॥ ५८ ॥ जिस अंजनने सम्यग्दर्शनके निःशंकित गुणको सबसे उत्तम रीतिसे पालन किया फिर चारित्र धारणकर परम तपश्चरण किया तथा समस्त कर्मोंको नष्ट कर मोक्षके निर्मल सुखको प्राप्त किया ऐसे संसाररूपी महासागरसे पार करनेके लिये जहाजके समान वे अंजन जिनराज हम लोगोंकी रक्षा करें ॥ ५९ ॥

इसप्रकार आचार्य सकलकीर्ति विरचित प्रश्नोत्तर श्रावकाचारमें निःशंकित गुणके वर्णनमें अंजनचोरकी कथाको कहनेवाला यह पांचवां सर्ग समाप्त हुआ ।

छठा सर्ग ।

अथानन्तर—जिन्होंने संसारमें कमलसे उत्पन्न हुई लक्ष्मीको लात मार दी है अथवा जिनके चरणकमलोंके नीचे कमलोंकी रचना होती है, जो कमलके चिन्हसे सुशोभित हैं, कमलकीसी ही जिनकी कांति है और जो अन्तरङ्ग बहिरंग लक्ष्मीके परम निधि हैं ऐसे भगवान पद्मप्रभको नमस्कार कर मैं सम्यग्दर्शनको निर्मल करनेके लिये दूसरे निःकांक्षित गुणमें प्रसिद्ध हुई अनन्तमतीकी कथा संक्षेपसे कहता हूं ॥ १-२ ॥

अनेक मनुष्योंसे भरे हुए अंग देशकी राजधानी चम्पापुरी थी। वह चम्पापुरी नगरी बड़ी ही अच्छी थी, अनेक जिनालयोंसे सुशोभित थी और सदा अनेक उत्तम मुनियोंसे विभूषित रहती थी । पुण्यकर्मके योगसे उसमें वर्द्धमान नामका राजा राज्य करता था । उसकी प्राण-प्यारी रानीका नाम लक्ष्मीमती था ॥ ४ ॥ उसी नगरीमें एक प्रियदत्त नामका धर्मात्मा सेठ रहता था । उसकी सेठानीका नाम अङ्गवती था और वह अनेक गुणोंसे सुशोभित थी ॥ ५ ॥ उन दोनोंके एक पुत्री थी जिसका नाम अनन्तमती था । वह अनन्तमती सम्यग्दर्शनसे सुशोभित थी और दान, पूजा आदि धार्मिक कार्योंमें सदा लीन रहती थी ॥ ६ ॥ किसी एक दिन नंदीश्वर पर्वके दिनोंमें केवल आठ दिनके लिये दोनों सेठ सेठानियोंने श्री धर्मकीर्ति नामके आचार्यके पास ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया ॥ ७ ॥

उस धर्मात्मा सेठने सदा धर्मकार्योंमें लगी रहनेवाली अनन्त-मतीको भी विनोदपूर्वक सुख देनेवाला ब्रह्मचर्य व्रत धारण करा दिया ॥ ८ ॥ अनन्तर जब सेठने उसके विवाहकी चर्चा चलाई तब अनन्तमतीने अपने पितासे कहा कि—हे तात ! आपने मुझे ब्रह्मचर्य

व्रत दिला दिया है फिर आप मेरे विवाहकी चर्चा क्यों करते हैं? ॥ ९ ॥ इसके उत्तरमें सेठने कहा कि–हे पुत्री! मैंने वह व्रत विनोदके लिये दिलाया था वास्तवमें नहीं। यह सुनकर अनन्तमती कहने लगी—हे तात! धर्म, दान, पूजा और व्रतोंमें भी कहीं विनोद हुआ करता है? ॥ १० ॥ तब सेठने फिर कहा कि हे पुत्री! वह तो केवल आठ दिनके लिये दिलाया था? इसके उत्तरमें अनन्तमतीने कहा कि उस समय मुनिराजने व्रतोंके पालन करनेके लिये दिनोंकी कुछ मर्यादा नहीं बतलाई थी इसलिये मैंने तो वह उत्तम ब्रह्मचर्य जीवनपर्यन्त धारण कर लिया है। अब मैं उसे प्राण नाश होनेपर भी कभी नहीं छोडूँगी और मेरु पर्वतके समान निश्चल होकर आजन्म उसका पालन करूँगी ॥ ११–१२ ॥

किसी एक दिन युवावस्था प्राप्त होनेपर चैत्रके महीनेमें अपने बगीचेमें महा रूपवती और कला विज्ञानसे परिपूर्ण वह अनन्तमती झूल रही थी ॥ १३ ॥ इसी समय विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीके किन्नरपुर नगरके विद्याधरोंका राजा कुण्डलमंडित अपनी रानी सुकेशीके साथ विमानमें बैठा हुआ आकाशमार्गसे जा रहा था। अचानक उसकी दृष्टि अनन्तमतीपर पड़ी। उसे देखकर वह मोहित हो गया और विचार करने लगा कि इसके विना मेरा जीना ही व्यर्थ है ॥ १४–१५ ॥ यही सोचकर वह घर लौटा, उसने अपनी रानीको घरपर छोड़ा फिर वह दुष्ट शीघ्र ही आकर शीलगुणसे सुशोभित और रोती हुई अनन्तमतीको लेकर आकाशमार्गसे चलने लगा ॥ १६ ॥

उसकी रानीको भी कुछ सन्देह हो गया था इसलिये वह भी उसके पीछे पीछे ही दौड़ी आई। रानीको देखकर वह विद्याधर डर

गया और शीघ्र ही अनन्तमतीको प्रज्ञप्ता और पर्णलघ्वी नामकी विद्याके आधीन किया ॥ १७ ॥ उन दोनों विद्याओंने अत्यन्त दुःखसे व्याकुल सती अनन्तमतीको किसी एक बड़े वनमें छोड़ दिया परन्तु वहां भी उस बेचारीको सुख नहीं मिला । एक भीम नामके भीलोंके राजाने उसे अपने आधीन कर लिया और अपने घर ले जाकर प्रार्थना की कि तू मुझे स्वीकार कर, मैं तुझे पट्टरानी बना लूँगा, परन्तु वह सती कब स्वीकार करनेवाली थी; उसकी अनिच्छा देखकर रात्रिमें वह भीम उसपर बलात्कार करने लगा ॥ १८-१९ ॥ परन्तु उस सतीके शीलके माहात्म्यसे क्षुब्ध होकर वनदेवी प्रगट हुई और उसने लकड़ी थप्पड़ आदिकी चोटोंसे भीमकी खूब ही खबर ली ॥२०॥ भीम बहुत ही डर गया और उसने समझ लिया कि यह नारी नहीं है किंतु नीचेको नेत्र किये हुए कोई देवता है । उसने शीघ्र ही पुष्पक नामके एक साहूकारको वह अनन्तमती सौंप दी ॥ २१ ॥ वह मूर्ख साहूकार भी लोभ दिखाकर उसके साथ विवाह करनेकी प्रार्थना करने लगा, परन्तु निःकांक्षितगुणको धारण करनेवाली उस सतीने किसीकी भी इच्छा नहीं की ॥ २२ ॥

तब उस दुष्ट साहूकारने अयोध्या नगरीमें आकर शीलगुणसे विभूषित वह अनंतमती एक कामसेना नामकी वेश्याके हाथ सौंपदी ॥ २३ ॥ उस कामसेनाने भी उसे अनेक प्रकारके दुःख दिये तथा हावभाव विकारोंसे समझाया तथापि वह अपने शीलगुणसे रंचमात्र भी न डिगी—जिस प्रकार मेरु पर्वतका शिखर निश्चल रहता है उसी प्रकार अत्यन्त धीरवीर वह अनन्तमती अपने व्रतमें निश्चल रही ॥२४॥ अन्तमें हारकर कामसेनाने वह राजा सिंहराजको दे दी । उसने भी उस पर अपना चक्र चलाना चाहा और अत्यन्त दृढ़तारूपसे व्रतको

पालन करनेवाली और किसीको भी न चाहनेवाली उस अनन्तमती पर किसी एक रातको बलात्कार करने पर उतारू हो गया ॥ २५ ॥ परन्तु उसके शीलव्रतके माहात्म्यसे नगरकी वनदेवी आ उपस्थित हुई और उसने लकड़ी घूँसोंसे राजाकी खूब ही खबर ली ॥ २६ ॥

तब तो राजाको उससे बहुत ही डर लगा और उसने उसी समय उसे अपने घरसे निकाल दिया। चलते चलते उसे पद्मश्री अर्जिकाके दर्शन हुए। उसे देखकर वह और रोने लगी और उसे अपनी सब कथा सुनाई ॥ २७ ॥ उस अर्जिकाने अपना धर्म पालन करनेके लिये उसे अच्छी श्राविका जानकर अपने ही पास रक्खा और यथायोग्य आदर सत्कारके साथ उसको अपने पास रखकर उसका निर्वाह करने लगी ॥ २८ ॥

इधर पुत्रीके हरे जानेसे सेठ प्रियदत्तको बहुत ही शोक हुआ। साथमें अन्य कुटुंबियोंको भी हुआ। उसके शोकसे वे अपना सुख और धर्म सब भूल गये ॥ २९ ॥ उस शोकको दूर करनेके लिये सेठ प्रियदत्त तीर्थयात्राको निकला और वंदना करते हुये अयोध्या-पुरीमें आया ॥ ३० ॥ अयोध्यापुरीमें एक जिनदत्त नामका सेठ रहता था। जो प्रियदत्तका साला था प्रियदत्त उसीके मकानमें आकर ठहरा। सायंकालके समय सब कामोंसे निवट लेनेपर प्रियदत्तने अपनी पुत्रीके हरे जानेके समाचार कहे ॥ ३१ ॥ प्रातः काल होनेपर नहा धोकर सेठ प्रियदत्त अयोध्या नगरके जिनमन्दिरोंकी तथा वहां टिकने-वाले मुनियोंकी वंदना करनेके लिये निकला ॥ ३२ ॥

इधर सेठ जिनदत्तकी स्त्रीने पद्मश्री अर्जिकाके समीप रहनेवाली श्राविकाको (अनंतमतीको) अपने घर भोजन करनेके लिए और चौक पूरनेके लिये बुलाया ॥ ३३ ॥ वह श्राविका (अनंतमती)

भोजनकर और चौक पूरकर अपने स्थानको चली गई। इसके बाद वंदनाकर सेठ प्रियदत्त आया और अनन्तमतीके द्वारा पूरे हुए उस चौकको देखकर और पहिचानकर उसके शोकसे आंसू डालने लगा ॥ ३४ ॥ प्रियदत्तने कहा कि जिसने यह चौक पूरा है उसे लाकर मुझे दिखाओ। तब सेठ जिनदत्तने वह श्राविका (अनन्तमती) बुलवा दी ॥ ३५ ॥ पुत्रीको देखकर प्रियदत्तने उसे गोदीमें उठा ली और फिर पाछेकी सब बातें पूछीं। सेठ जिनदत्तने अपनी भानजीके मिल जानेपर बड़ा भारी उत्सव किया ॥ ३६ ॥

सबसे मिलाभेटी हो जानेके बाद अनन्तमतीने कहा हे पिताजी! मैंने इस संसारको खूब देख लिया है इसमें अनेक प्रकारके विचित्र दुःख भरे हुए हैं। यह दुःखोंसे भर रहा है इसलिये हे तात! अब मुझे दीक्षा दिला दीजिये ॥ ३७ ॥ तब प्रियदत्तने उत्तर दिया कि पुत्री! तू शीघ्र ही तपश्चरण धारण कर, क्योंकि यह तपश्चरण ही कर्मोंको नाश करनेवाला है, स्वर्ग मोक्षका सुख देनेवाला है, सबमें सार है और दुःखरूपी दावानल अग्निके लिये मेघकी धाराके समान है ॥ ३८ ॥ तब पिताकी आज्ञासे उस अनन्तमतीने परम संयम धारण किया और वह भगवान जिनेन्द्रदेवका कहा हुआ बारह प्रकारका घोर तपश्चरण करने लगी ॥ ३९ ॥ अन्तमें उसने समाधि-मरण धारण किया, तथा प्राणोंको छोड़कर और स्त्रीलिंगको छेदकर बारहवें सहस्रार स्वर्गमें उत्तम देव हुई ॥ ४० ॥ वहांपर उसकी अठारह सागरकी आयु थी। अठारह सागर पर्यन्त उत्तम सुख भोग-कर वह अनन्तमतीका जीव सम्यग्दर्शनके प्रभावसे अनुक्रमसे मोक्ष प्राप्त करेगा ॥ ४१ ॥ रामचन्द्रजीकी पट्टमहादेवी सीताने भी निःकांक्षित अंगका पालन किया था और उसीके प्रभावसे वह

सोलहवें स्वर्गमें इन्द्र हुई थी जहां कि अनेक देव उसकी पूजा करते थे ॥ ४२ ॥ उस सती सीताकी कथा पद्मपुराणसे जान लेनी चाहिये। इनके सिवाय इस निःकांक्षित अंगको पालन करनेवाले और भी बहुतसे जीव हुए हैं उन सबको कोई कह भी नहीं सकता है ॥४३॥ यही समझकर भव्य जीवोंको सदा निःकांक्षित अंगका पालन करना चाहिये और स्वर्गादिकके सुखोंकी इच्छा कभी नहीं करना चाहिये ॥४४॥ देखो शीलव्रतको दृढ़तापूर्वक पालन करनेवाली और अनेक गुणोंसे सुशोभित तथा सम्यग्दर्शनको धारण करनेवाली अनन्तमती एक निःकांक्षित परम गुणको धारण करनेसे ही स्वर्गमें उत्तम देव हुई है और धर्मके प्रभावसे अन्तमें मोक्ष प्राप्त करेगी (वह अनन्तमती सबका कल्याण करे) ॥ ४५ ॥

इस प्रकार आचार्य सकलकीर्ति विरचित प्रश्नोत्तर श्रावकाचारमें
निःकांक्षित गुणमें प्रसिद्ध होनेवाली अनंतमतीकी कथाको
कहनेवाला यह छठा सर्ग समाप्त हुआ ।

सातवां सर्ग ।

मैं श्री सुपार्श्वनाथ भगवानको नमस्कार कर कुछ धर्मोपदेश कहता हूं और उसमें भी निर्विचिकित्सा गुणमें प्रसिद्ध होनेवाले राजा उद्दायनकी कथा कहता हूं ॥ १ ॥ किसी एक दिन देवोंसे भरी हुई सभामें भव्य जीवोंको समझानेके लिये सौधर्म इन्द्रने सम्यग्दर्शनके गुणोंका वर्णन किया ॥ २ ॥ और कहा कि भरतक्षेत्रके वंग देशांतर्गत रोचक नामके शुभ नगरमें राजा उद्दायन राज्य करता है। वह अपने पहिले जन्ममें उपार्जन किये हुए पुण्यकर्मके प्रभावसे सम्यग्दर्शनके तीसरे निर्विचिकित्सा गुणको विना किसी दोषके पालन

करता है। इस प्रकार मति श्रुत और अवधि तीनों ज्ञानोंको धारण करनेवाले इन्द्रने उदायनकी बहुत प्रशंसा की ॥ ३-४ ॥ उदायनकी ऐसी भारी प्रशंसा सुनकर वासव नामका देव उसकी परीक्षा लेनेके लिये आया। उसने एक मुनिका विकृत रूप धारण कर लिया, उस समय उसके उस बनाये हुए शरीरसे कोढ़ गल रहा था और वह बहुत ही विकृति (घृणा करने योग्य) रूपमें था ॥५॥ अपना ऐसा मुनिका रूप बनाकर वह देव उदायनके द्वार पर आया। पुण्यवान उदायनने देखते ही भक्तिपूर्वक उसका पड्गाहन किया और विधिपूर्वक आहार दिया ॥ ६ ॥

अपनी मायासे (विद्यासे) वह देव उदायनका सब अन्न खा गया और सब पानी पी गया और फिर उसने अत्यन्त दुर्गन्ध और घृणित वमन कर दिया ॥७॥ उस वमनकी असह्य दुर्गन्धसे राजाके कुटुम्बी और सेवक सब भाग गये। केवल रानी प्रभावती और पुण्यवान् राजा उदायन मुनिकी वैयावृत्य करनेके लिये रह गये ॥ ८॥ रानी उसके शरीरको पोंछने लगी। परन्तु उस मायाचारी मुनिने उसके ऊपर भी वमन कर दिया, परन्तु फिर भी वे दोनों उसके शरीरको धोने लगे और उस दुर्गन्धमय वमनको भी धोने लगे ॥९॥ इतना ही नहीं उस समय राजाने स्वयं अपनी बड़ी निंदा की और कहा कि हा हा! इन दुःखी मुनिराजके लिये मेरे द्वारा न जाने कौनसा अयोग्य आहार दिया गया है उसीके कारण इनको इतना कष्ट हुआ है ॥ १० ॥

राजाके इसप्रकारके वचनको सुनकर देवको बहुत ही आनंद हुआ और उसे निश्चय हो गया कि इन्द्रका कहा सर्वथा ठीक है। इससे अपना बनाया हुआ मुनिका रूप छोड़ दिया और अपना स्वाभाविक दिव्यरूप बनाकर अपनी सब कथा कही, राजाकी बहुत २ प्रशंसा

की और दिव्य वस्त्राभरणोंसे राजाकी पूजा कर वह देव अपने स्वर्ग-लोकको चला गया ॥११-१२॥ कुछ दिनोंके बाद राजा उद्दायनने भी अपना सब राज्य छोड़कर श्री वर्द्धमान स्वामीके समीप जिनदीक्षा धारण कर ली ॥ १३ ॥ उसने महा घोर तपश्चरण किया, सब कर्म-समूहोंका नाश किया और केवलज्ञान प्राप्त कर मुक्तिलक्ष्मीका स्वामी हुआ ॥ १४ ॥ रानी प्रभावतीने भी दीक्षा धारण कर ली और घोर तपश्चरण कर स्त्रीलिंगको छेदकर पांचवें ब्रह्मस्वर्गमें दिव्य आभरणोंसे सुशोभित देव हुई ॥१५॥ जो मुनिराज उद्दायन परम सुखके निधि थे, लोकपूज्य थे, जिन्होंने सम्यग्दर्शनके समस्त गुण धारण किये थे, जिन्होंने घोर तपश्चरण किया और समस्त कर्मोंको नष्टकर अपार परमपद-मोक्षपद प्राप्त किया वे उद्दायन मुनिराज हम लोगोंकी रक्षा करें ॥१६॥ इस निर्विचिकित्सा गुणको धारण कर और भी बहुतसे जीव मोक्ष पधारे हैं, परन्तु उन सबकी कथा कौन कह सकता है ॥१७॥

सम्यग्दर्शनके चौथे अमूढ़दृष्टि अंगमें रेवती रानी प्रसिद्ध हुई है इसलिये सम्यग्दर्शनको निर्मल करनेके लिये उसकी भी कथा कहता हूँ ॥ १८ ॥ विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें एक मेघकूट नगर है। पुण्य कर्मके उदयसे वहां पर सम्यग्दृष्टि राजा चन्द्रप्रभ नामका विद्याधर राज्य करता था ॥ १९ ॥ किसी एक समय वह राजा चन्द्रप्रभ अपने पुत्र चन्द्रशेखरको राज्य देकर भक्तिपूर्वक गुरु और देवोंकी वंदना करनेके लिये किसी एक विद्याके साथ चल दिया ॥२०॥ चलते चलते दक्षिण मथुरामें आया। वहांपर उसे श्री गुप्ताचार्यके दर्शन हुए। उनकी पूजाकर उस बुद्धिमान राजाने उनके ही पास क्षुल्लककी दीक्षा धारण कर ली ॥ २१ ॥

किसी एक दिन उस चन्द्रप्रभ क्षुल्लकने अपने गुरु गुप्ताचार्यसे

पूछा-हे स्वामिन् ! मैं तीर्थयात्रा करनेके लिये उत्तर मथुराको जा रहा हूँ, क्या आपको किसीसे कुछ कहना है ? ॥ २२ ॥ उत्तरमें मुनिराजने कहा कि पापोंसे डरनेवाले और संसार रूपी समुद्रसे पार कर देनेवाले मुनिराज सुव्रतके लिये हमारा नमस्कार कहना तथा राजा वरुणकी रानी रेवतीसे स्वर्ग मोक्षकी देनेवाली हमारी अनेक प्रकारसे धर्मवृद्धि कहना ॥ २३–२४ ॥ इतना कहकर वे चुप हो गये । तब क्षुल्लकने सोचा कि वहां पर ग्यारह अङ्गके पाठी मुनिराज भव्यसेन भी हैं तथा और भी मुनि होंगे उनका गुरुदेवने नाम तक नहीं लिया । यही सोचकर क्षुल्लकने फिर पूछा, परन्तु दुबारा पूछनेपर भी मुनिराजने यही कहा कि अब और किसीसे कुछ नहीं कहना है तब क्षुल्लकने विचार किया कि इसका कुछ भी कारण होना चाहिये; मैं उसे अभीतक समझ नहीं सका हूं ॥ २५–२६ ॥

इसके बाद वह क्षुल्लक उत्तर मथुरामें पहुंचा और सुव्रत मुनिराजके समीप जाकर मस्तक झुकाकर उनको नमस्कार किया और उनके गुणोंसे वह बहुत ही प्रसन्न हुआ ॥ २७ ॥ उनके विशेष वात्सल्यको देखकर गुरुके वाक्योंपर उसका दृढ़ निश्चय हुआ और फिर उसने गुरुका कहा हुआ नमस्कार भी उनको कह सुनाया ॥ २८ ॥ इसके बाद वह शीघ्र ही वसतिकामें आया । वहांपर भव्यसेन मुनि विराजमान थे, परन्तु उन्होंने अपने अभिमानमें आकर इससे कुछ बात भी नहीं की ॥२९॥ जब वे भव्यसेन मुनि कमंडलु लेकर शौचके लिये बाहर गये तब उनकी परीक्षा करनेके लिये वह क्षुल्लक भी उनके साथ गया ॥ ३० ॥ क्षुल्लकने कुछ आगे चलकर अपनी विद्यासे सब मार्ग अनेक जीवोंसे भरी हुई हरी घाससे आच्छादित कर दिया ॥ ३१ ॥

उस हरी घाससे भरे हुए मार्गको देखकर भी और "भगवान जिनेन्द्रदेवने इनमें एकेन्द्री जीव कहे हैं" ऐसा जानकर भी भव्यसेनने उसकी परवा नहीं की और उस घासको पैरोंसे कुचलता हुआ चला गया ॥ ३२ ॥ जब भव्यसेन शौचको वैठ गया तब उस चन्द्रप्रभ विद्याधरने अपनी विद्यासे उसके कमंडलुका पानी सुखा दिया और सामने आकर कहने लगा कि-हे स्वामिन्! कमंडलुमें जल नहीं है तो न सही इसमें कुछ चिंता करनेकी बात नहीं है, यह पासमें ही एक सरोवर स्वच्छ जलसे भरा है उसमें जाकर शुद्धि कर लीजिये। यह कहकर वह तो चला गया और मूर्ख भव्यसेनने उसी सरोवरमें जाकर अपनी शुद्धि कर ली ॥ ३३-३४ ॥ इस परसे उस क्षुल्लकने समझ लिया कि यह कुमार्गगामी मिथ्यादृष्टी है। उसने उसी दिनसे उसका नाम अभव्यसेन रख दिया ॥ ३५ ॥

अब उसने रेवतीकी परीक्षा करनी प्रारम्भ की। दूसरे दिन नगरके पूर्व दिशाकी ओर वह ब्रह्माका रूप धारण कर विराजमान हो गया। उसने विद्याके बलसे अपने चार मुँह बना लिये, यज्ञोपवीत धारण कर लिया, देवोंको अपनी पूजामें लगा लिया और इस प्रकार पद्मासन लगाकर वैठ गया। उसे इस प्रकार ब्रह्माके रूपमें देखकर राजा तथा भव्यसेन आदि सब मूर्ख उसकी पूजा करनेके लिये पहुँचे ॥ ३६-३७ ॥ अनेक अज्ञानी लोगोंने रेवती रानीको भी बहुत समझाया, चलनेके लिये बहुत प्रेरणा की परन्तु उसने सबको यही उत्तर दिया कि भाई ब्रह्मा नामका कोई देव आगया होगा ॥ ३८ ॥

तीसरे दिन नगरके पश्चिमकी ओर जाकर उस क्षुल्लकने रेवतीकी प्रसिद्धि सुनकर उसकी परीक्षा करनेके लिये विष्णुका रूव धारणकर लिया। विद्याबलसे अनेक गोपियां बना लीं, गरुडपर सवार होगया,

शंख चक्र और शस्त्र आदि चिह्न बना लिये और अनेक मिथ्यादृष्टियोंको अपनी सेवामें लगा लिया ॥ ३९–४० ॥ परंतु रेवती रानी वहांपर भी नहीं गई। चौथे दिन नगरके दक्षिण ओर जाकर उसने महादेवका रूप बना लिया; माथे पर आधा चन्द्रमा लगा लिया, मस्तकपर जटा–जूट रख लिया, वृषभपर (नादियापर) सवार हो गया और आधे अङ्गमें पार्वतीको धारण कर लिया। उसे देखकर बहुतसे मूर्ख भक्ति करते हुए चले आए, परन्तु रेवती रानी तथा कितने ही अन्य समझदार लोग वहां भी नहीं गये ॥ ४१–४२ ॥

पांचवें दिन उत्तर दिशाकी ओर जाकर उसने तीर्थंकरका रूप बनाया। अतिशय, प्रातिहार्य आदि सब गुण बना लिये, सभाके मध्यभागमें सिंहासनपर विराजमान हो गया, अनेक देव विद्याधरोंको नमस्कार करते हुए दिखला दिया और सब तरहसे धर्मको प्रगट करनेवाले तीर्थंकरका रूप बना लिया ॥ ४३–४४ ॥ अनेक श्रावक अनेक मुनि भक्ति करनेके लिये आये, रानी रेवतीसे भी अनेक लोगोंने प्रेरणा की परन्तु वह वहां भी नहीं गई ॥ ४५ ॥

उस बुद्धिमती रानीने सबसे कह दिया कि वासुदेव नौ होते हैं, महादेव ग्यारह होते हैं और तीथकर चौबीस होते हैं ऐसा जैन शास्त्रोंमें वर्णन किया है और वे सब हो चुके फिर अब वासुदेव, महादेव वा तीर्थंकर कहांसे आये। यह तो लोगोंको भ्रम जालमें फंसानेके लिये कोई देव अपनी मायासे रूप धारण कर आआ है ॥ ४६–४७ ॥ इसके दूसरे दिन उस क्षुल्लकने अपना रूप क्षुल्लकका ही रक्खा परन्तु उसे अनेक व्याधियोंसे पीड़ित बनाया और चर्याके समय रेवती रानीके राजमहलकी देहलीके निकट आकर अपनी विद्यासे ही बेहोशसा होकर गिर गया। रेवती रानी सुनते ही बाहर

आई और धर्मकी भावनासे भक्तिपूर्वक उसे उठाकर अपने भवनमें ले गई॥ ४८-४९॥

रानीने उसके लिये पथ्य और शुद्ध आहार खिलाया और उचित जल ग्रहण कराया परन्तु उसने ग्रहण करनेके बाद सब दुर्गंधमय वमन कर दिया ॥ ५० ॥ रानीने उस सब उच्छिष्टको स्वयं धोया और अपनी निंदा की कि अवश्य ही मेरेसे आहारमें कोई अपथ्य या अयोग्य वस्तु दी गई है ॥ ५१ ॥ रेवतीके अपने निंदात्मक वचन सुनकर उसने अपना बनाया हुआ रूप छोड़कर अपना असली रूप धारण कर लिया। उसने रानीकी बार बार प्रशंसा की और पहिलेका अपना सब हाल कह सुनाया ॥ ५२ ॥

तदन्तर उसने रानीके अपने गुरुदेवकी कही हुई धर्मवृद्धि कही, उनके अमूढ़दृष्टि अंगकी प्रशंसा की और फिर अपने स्थानको चला गया ॥ ५३ ॥ इसके बाद राजा वरुणने कितने ही दिन तक राज्य किया और फिर अपने पुत्र शिवकीर्तिको राज्य देकर कर्मोंका नाश करनेके लिये दीक्षा धारण कर ली ॥ ५४ ॥ उसने बहुत दिनतक सुख देनेवाला तपश्चरण किया और अन्तमें समाधिपूर्वक शरीरका त्यागकर महेन्द्र स्वर्गमें बड़ी ऋद्धिका धारक देव हुआ ॥ ५५ ॥ रानी रेवतीने भी दीक्षा धारण कर ली और भयको भी भय देनेवाला घोर तपश्चरण कर, स्त्रीलिंग छेदकर ब्रह्मस्वर्गमें उत्तम देव हुई ॥५६॥ वहांपर उसकी दस सागरकी आयु थी। दस सागर तक अनेक सुखोंका अनुभव कर वह रेवती रानीका जीव अवश्य ही मोक्ष प्राप्त करेगा ॥ ५७ ॥

इस अमूढ़दृष्टि अंगमें और भी बहुतसे लोग प्रसिद्ध हुए हैं परन्तु उन सबकी कथाएँ कौन कह सकता है। उन सबकी कथाएँ जैन

शास्त्रोंसे जान लेनी चाहिये ॥ ५८ ॥ जो विद्वान् विचार करनेमें चतुर हैं उन्हें देव, धर्म, गुरु तथा दान पूजा शास्त्र आदिमें होनेवाली मूढ़ता अवश्य छोड़ देनी चाहिये ॥ ५९ ॥ यह अमूढ़दृष्टि अंग इस संसारमें स्वर्ग मोक्षके सुखको देनेवाला है इसलिये सम्यग्दर्शन गुणको प्राप्त करनेके लिये मन वचन कायकी शुद्धतापूर्वक इस अमूढ़दृष्टि अंगको अवश्य पालन करना चाहिये ॥ ६० ॥ जिसने सम्यग्दर्शनके निर्मल गुणोंकी विभूतिसे मूढ़ता आदि सब दोषोंको छोड़दिया था, भगवान जिनेन्द्रदेवकी भक्तिपूर्वक जिसने श्रेष्ठ धर्मका पालन किया था, जो जिन वचनोंमें तल्लीन रही थी और जिसने दृढ़तापूर्वक संयम पालन किया था ऐसी रेवती रानी समस्त सुखोंकी निधि ऐसे ब्रह्म स्वर्गमें जाकर देव हुई थी ॥ ६१ ॥

इस प्रकार आचार्य श्रीसकलकीर्ति विरचित प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमें निर्विचिकित्सा और अमूढ़दृष्टि अंगमें प्रसिद्ध होनेवाले राजा उद्दायन और रेवती रानीकी कथाको निरूपण करनेवाला यह सातवां सर्ग समाप्त हुआ ।

आठवां सर्ग ।

जिनकी कांति चन्द्रमाके समान है, जिनके चन्द्रमाका ही चिह्न है और जो भव्य जीवोंको सदा आनन्द देनेवाले हैं ऐसे श्री चन्द्रप्रभ भगवानको मैं उनके गुणोंको प्राप्त करनेके लिये नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ सम्यग्दर्शनके पांचवें उपगूहन अंगमें जिनेन्द्रभक्त प्रसिद्ध हुआ है इसलिये अब मैं उस सेठकी कथा कहता हूं ॥ २ ॥ सौराष्ट्र (सोरठ) देशके पाटलीपुर नगरमें पुण्य कर्मके उदयसे राजा यशोधर राज्य करता था । उसकी रानीका नाम सुसीमा था । उन दोनोंके

एक सुवीर नामका पुत्र हुआ था जो कि पाप कर्मके उदयसे सातों व्यसनोंके सेवन करनेमें चतुर था। उसने अपने समान ही बहुतसे सेवक रख लिये थे और इस प्रकार वह कुमार्गगामी बन गया था ॥ ३-४ ॥

सोरठ देशकी पूर्व दिशामें गौड नामके देशकी तामलिप्त नामकी नगरीमें एक जिनेन्द्रभक्त नामका धनी सेठ रहता था ॥ ५ ॥ उस सेठका भवन सात मंजिलका था और वह सेठ बहुत ही बड़ा ऐश्वर्यशाली था। उसके उस भवनमें एक चैत्यालय था जिसमें श्री पार्श्वनाथ भगवानका प्रतिबिम्ब विराजमान था। सेठने उसकी रक्षाका बहुत ही अच्छा प्रबन्ध कर रक्खा था ॥६॥ उस प्रतिमापर तीन छत्र लगे हुए थे और उन छत्रोंमें एक अत्यंत बहुमूल्य वैडूर्यमणि लगा हुआ था। उस वैडूर्यमणिकी बात परम्परासे ऊपर लिखे राजपुत्र सुवीरने भी सुन ली ॥७॥ उस मणिकी बात सुनकर उसे लोभने दबाया और लोभके वश होकर उसने अपने सेवकोंसे पूछा कि तुममेंसे कोई सेवक अपना छल कपट रचकर क्या उस मणिको ला सकता है? ॥८॥ उन सेवकोंमें एक सूर्य नामक चोर था। वह गर्जकर बोला कि यह कौनसी बड़ी बात है? मैं इंद्रके मुकुटमें लगी हुई मणिको भी ला सकता हूँ ॥ ९ ॥

यह कहकर वह उस मणिको लेनेके लिये चल दिया। उसने कपट कर अपना क्षुल्लकका रूप बना लिया और नगर गांवोंमें लोगोंको क्षोभ प्रगट करता हुआ और प्रतिदिन चलता हुआ शीघ्र ही तामलिप्त नगरीमें आ पहुँचा। बुद्धिमान जिनेंद्रभक्त क्षुल्लकके आनेकी बात सुनते ही उसके समीप आया। सेठने उसे नमस्कार किया, उसके साथ बातचीत की, उसे सब तरहसे संतुष्ट किया और

अपने घर लाकर श्री पार्श्वनाथकी प्रतिमाके दर्शन कराये ॥१०-१२॥ सेठने उससे चैत्यालयमें रहनेकी प्रार्थना की परन्तु उसने कपटपूर्वक अपनी अनिच्छा प्रगट की । तथापि उस सेठने धर्मकी वृद्धि होनेके लिए उस मणिकी रक्षार्थ उस दुष्ट क्षुल्लकको वहां ठहरा लिया ॥१३॥

किसी एक दिन सेठने समुद्रयात्रा करनेका विचार किया और उस क्षुल्लकसे आज्ञा लेकर घरसे निकलकर नगरके बाहर डेरा दिये ॥ १४ ॥ उस रातको सेठके अन्य कुटुम्बी लोग भी अपना अपना सामान संभालनेमें लगे हुए थे । ऐसे समयको देखकर वह चोर क्षुल्लक भी आधी रातके समय उस मणिको लेकर चलता बना ॥ १५ ॥ वह मणिको लेकर जा रहा था परन्तु उस मणिके प्रकाशसे कोटवालको दिखाई पड़ ही गया, इसलिये वह भयंकर कोटवाल पकड़नेके लिये उसके पीछे दौड़ा ॥ १६ ॥ वह क्षुल्लक और अधिक दौड़ न सका, उसने देखा कि मैं अब किसी तरह बच नहीं सकता तब वह दुष्ट उसी सेठके शरणमें पहुँचा और कहने लगा कि इस समय मेरी रक्षा कीजिये ॥ १७ ॥

उधर सेठने पहरेदारोंका चोरके भागनेका कोलाहल भी सुन रक्खा था इसलिये उनसे उसे चोर तो समझ लिया परन्तु एक क्षुल्लक वेषधारीको चोर कहनेमें जैनधर्मकी हँसी होगी यह समझ कर उसने उस विषयको दबाना ही उचित समझा ॥ १८ ॥ सेठने आये हुए कोतवाल और अन्य लोगोंसे यही कहा कि यह तो मेरी आज्ञासे ही इस रत्नको लाया है । आप लोगोंने यह बहुत बुरा किया जो एक क्षुल्लकके लिये चोरकी घोषणा की ॥ १९ ॥ सेठकी यह बात सुन कर वे सब लोग उसे नमस्कार कर चले गये । उनके चले जानेके बाद धर्ममें सदा तत्पर रहनेवाले सेठने उस दुष्टको शीघ्र ही अपने

यहांसे निकाल दिया ॥ २० ॥ बुद्धिमान् सम्यग्दर्शनसे सुशोभित व्रत और ज्ञानादि गुणोंसे विभूषित और विचार करनेमें अत्यंत चतुर वह सेठ आगे स्वर्ग मोक्षके सुखोंको प्राप्त होगा ॥ २१ ॥ इसलिये सम्यग्दृष्टी पुरुषोंको चाहिये कि वे बालक, अज्ञानी अथवा असमर्थ लोगोंके आश्रयसे होनेवाले धर्मके दोषोंको सदा ढकते रहें ॥ २२ ॥

जो विद्वान् अपनी निंदा करते हैं और दूसरोंके गुणोंकी प्रशंसा करते हैं वे मनुष्य संसारमें धन्य हैं। वे अवश्य ही स्वर्गके सुखोंको भोगकर अनुक्रमसे मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ २३ ॥ जो मनुष्य अपने मुंहसे दोषोंको कभी नहीं कहते और दूसरोंके श्रेष्ठ गुणोंको सदा प्रगट करते रहते हैं वे इंद्रादिकके सुख भोगकर अंतमें मोक्ष पद प्राप्त करते हैं ॥२४॥ जो मूर्ख अपने गुणोंको अपनेआप कहते फिरते हैं और अपने दोषोंको कभी प्रगट नहीं करते वे गधे आदिकी कुयोनियोंमें जन्म लेते हैं अथवा नरकमें जाकर दुःख भोगते हैं ॥ २५ ॥

जो मनुष्य दूसरोंकी निन्दा करते रहते हैं और दूसरोंके गुणोंको ढंकते रहते हैं वे दुष्ट सबसे अधिक पापी हैं। उन मूर्खोंको नरकमें ही स्थान मिलता है ॥ २६ ॥ वह श्री जिनेन्द्रभक्त सेठ अनेक निर्मल गुणोंसे सुशोभित था, तीर्थंकर परमदेवका भक्त था, परम तत्त्वका जानकार था, दान धर्म आदि क्रियाओंमें निपुण था, सम्यग्दर्शनके उत्तम गुण प्रगट करनेमें चतुर था और निन्दा आदि सब दोषोंसे रहित था ॥ २७ ॥

इसी प्रकार सम्यग्दर्शनके स्थितिकरण गुणमें वारिषेण प्रसिद्ध हुआ है। अतः अब मैं सम्यग्दर्शनके गुण बढ़ानेके लिये उसकी कथा कहता हूं ॥ २८ ॥ मगधदेशके राजगृह नगरमें राजा श्रेणिक राज्य करता था। उसकी पट्टरानीका नाम चेलना था ॥२९॥ उन दोनोंके

वारिषेण नामका पुत्र था जो कि सम्यग्दृष्टि था, श्रावकोंके सब व्रतोंको पालन करता था, धीरवीर था, जिनेन्द्रदेवका भक्त और उदार हृदय था ॥ ३० ॥

किसी एक दिन चतुर्दशी पर्वके दिन उसने प्रोषधोपवास किया था इसलिये उस रातको उस बुद्धिमानने स्मशानमें जाकर कायोत्सर्ग धारण कर ध्यान लगाया था ॥ ३१ ॥ उसी दिन दिनके समय किसी बागमें सेठ श्रीकीर्ति वायु-सेवनके लिये आया था। पुण्य कर्मके उदयसे उसके गलेमें एक अत्यन्त मनोहर हार पड़ा हुआ था। वह हार मुग्धसुन्दरी नामकी किसी वेश्याने देखा। उस हारको देखकर वह विचार करने लगी कि इस हारके विना जीना व्यर्थ है। यही सोचती विचारती वह घरको चली गई और शोक करती हुई शय्या पर जा लौटी ॥ ३२-३३-३४ ॥

विद्युच्चर नामका एक चोर उस वेश्यापर आसक्त था। वह रातको उसके घर आया और उस वेश्याको रातमें भी इस प्रकार शोकाकुलित देखकर पूछने लगा—हे प्रिये ! तू आज किस चिंतामें डूब रही है ॥ ३५ ॥ इसके उतरमें उस वेश्याने कहा—हे स्वामिन् ! यदि आप सेठ श्रीकीर्तिके गलेमें पड़ा हुआ दिव्य हार लाकर मुझे दें तो मैं आपको अपना स्वामी बनाऊंगी अन्यथा नहीं ॥ ३६ ॥

यह सुनकर विद्युच्चरने उसे धीरज बंधाया और आधी रातके समय सेठ श्रीकीर्तिके घर जाकर और उस हारको लेकर कुशलपूर्वक बाहर निकल आया ॥ ३७ ॥ परन्तु उस हारका प्रकाश छिप न सका इसलिये कोतवालने और पहरेदारोंने उसे चोर समझकर पकड़ना चाहा। आगे वह चोर दोड़ता जाता था और पीछे पीछे पहरेदार थे। वह चोर उसी स्मशानकी ओर दौड़ा और अन्तमें पकड़ जानेके डरसे

उस हारको ध्यानमें लीन हुए वारिषेण कुमारके आगे पटककर छिप गया ॥ ३८-३९ ॥ कोटवालने वारिषेणको हारके पास इस प्रकार खड़े देखकर महाराज श्रेणिकसे जाकर कहा कि हे महाराज ! कुमार वारिषेण हार चुराकर इस प्रकार श्मशानमें ध्यान लगाकर जा खड़ा हुआ है ॥ ४० ॥ कोतवालकी यह बात सुनकर महाराज श्रेणिकको अपने पुत्रपर बहुत ही क्रोध आया और उसने उसका मस्तक काट डालनेकी आज्ञा दे दी ॥ ४१ ॥

प्रातः आज्ञा होते ही चांडालने जाकर उसके गलेपर तलवार चलाई परन्तु उस व्रतके माहात्म्यसे वह तलवार भी पुष्पमाला होकर उसके गलेमें जा पड़ी ॥ ४२ ॥ पुत्रका यह अतिशय सुनकर राजा श्रेणिक भी अपनी निंदा करता हुआ आया और उस कुमारसे क्षमा मांगी ॥ ४३ ॥ विद्युच्चर भी यह सब लीला देख रहा था वह तुरन्त ही आ उपस्थित हुआ और अभयदान मांगकर राजा श्रेणिकसे हार चुरानेकी तथा वारिषेणके आगे डालनेकी अपनी सब कथा कह सुनाई ॥ ४४ ॥ तदनन्तर महाराज श्रेणिकने कुमार वारिषेणसे घर चलनेके लिये कहा परंतु वारिषेणने उत्तर दिया कि अब तो मैंने जिनदीक्षा लेकर पाणिपात्र भोजन करनेकी प्रतिज्ञा ले ली है ॥४५॥ इस प्रकार अपने पिताकी आज्ञा लेकर वह कुमार वारिषेण सूर्यदेव मुनिराजके समीप गया और उन्हें नमस्कार कर उस बुद्धिमानने उनसे दीक्षा ग्रहण कर ली ॥ ४६ ॥

किसी एक दिन तपश्चरण और व्रतोंसे सुशोभित वे वारिषेण मुनि आहारके लिये राजगृहके समीपवर्ती पलासकूट गांवमें पधारे ॥ ४७ ॥ वहांपर महाराज श्रेणिकका महामन्त्री अग्निभूत रहता था और उसके पुत्रका नाम पुष्पडाल था । उस पुष्पडालने उन

मुनिराजको देखकर शीघ्र ही उनका पड़गाहन किया ॥ ४८ ॥ उसने मुनिराजको आहार दिया और फिर अपनी सोमिला ब्राह्मणीसे पूछकर उसकी आज्ञानुसार कुछ दूर तक उन मुनिराजके साथ गया ॥ ४९ ॥ कुछ दूर जाकर उसे लौटनेकी पड़ी। अपने लौट जानेकी आज्ञा मागनेके लिये कभी कोई क्षीरवृक्ष दिखाकर स्मरण कराया और कभी उन्हें वन्दना कर स्मरण कराया परन्तु वे मुनिराज कुछ न बोले, चले ही गये। लाचार होकर पुष्पडालको भी जाना पड़ा। अपने स्थानपर जाकर मुनिराजने सद्धर्म ग्रहण करनेके लिये उसे समझाया और कहा कि—॥ ५०-५१ ॥

हे मित्र! यह गृहस्थका निवास अत्यन्त निंदनीय है, पापका कारण है, अनेक दुःखोंको उत्पन्न करनेवाला है, अनेक चिंताओंसे भरपूर है और धर्मकार्योंमें विघ्न करनेवाला है, इसलिये तू इसे छोड़ और चारित्र धारण कर। यह चारित्र ही स्वर्ग मोक्षको वश करनेवाला है, सुखकी खानि है महापापोंको नाश करनेवाला है और दुखोंको दूर करनेवाला है ॥ ५२-५३ ॥ मुनिराजका उपदेश सुनकर पुष्पडालको कुछ लज्जा आई, लज्जासे कुछ अभिमान आया और कुछ वैराग्य प्रगट हुआ इसलिये उसने संयम धारण कर लिया परन्तु वह सोमिला ब्राह्मणीको अपने हृदयसे कभी नहीं भूलता था ॥ ५४ ॥

तदनन्तर वे दोनों मुनिराज तीर्थयात्राको निकले। बारह वर्षतक तीर्थयात्रा की और फिर श्री वर्द्धमानस्वामीके समवशरणमें आए ॥५५॥ वहां आकर उन दोनोंने अपने दोनों हाथ जोड़कर तीर्थंकर परमदेवको नमस्कार किया और फिर श्री वर्द्धमानस्वामीके समवशरणमें आए ॥ ५५ ॥ वहां आकर उन दोनोंने अपने दोनों हाथ जोड़कर तीर्थंकर परमदेवको नमस्कार किया और हृदयमें धर्मकी आराधना

करते हुए अपने कोठेमें जा बैठे ॥ ५६ ॥ वहांपर कुछ देव पृथ्वीके विषयमें कुछ रसीले गीत गा रहे थे और उनमेंसे एक गीत यह था "कि हे राजन्! फटे और मैले वस्त्र पहिने तथा अपने हृदयमें जलती हुई पवित्र पृथ्वी तूने छोड़ दी है इसलिये अब वह किस प्रकार जीवेगी" देवोंका यह गीत पुष्पडालने भी सुना और उसने ज्योंका त्यों अपनी सोमिला ब्राह्मणीपर घटा लिया। बस फिर क्या था वह बुद्धिहीन मुनि मोहमें फँस गया और हृदयमें राग भाव उत्पन्न हो जानेके कारण वहांसे घरके लिये चल पड़ा ॥५७-५८-५९॥

उसकी यह लीला सम्यग्दृष्टि मुनिराज वारिषेणने भी जान ली और उसको अपने धर्ममें स्थिर करनेके लिये वे उसे अपने राजभवनमें ले गये ॥ ६० ॥ रानी चेलनाने उन दोनों मुनिराजोंको आते हुए देखकर विचार किया कि वारिषेण क्यों आया? क्या वह चारित्रसे चलायमान तो नहीं हो गया? ऐसी शँका उसके हृदयमें उत्पन्न हुई ॥ ६१ ॥ उस शंकाको दूर करनेके लिये और अपने पुत्रकी परीक्षा करनेके लिये उसने उन मुनियोंके लिये दो प्रकारके आसन डलवाये। एक स्थानपर सुवर्ण चांदीके रागरूप और दूसरे स्थानपर वीतराग काठके ॥ ६२ ॥ वे मुनिराज वीतराग आसनपर विराजमान हो गये और फिर उन्होंने अपनी मातासे कहा कि-हे माता! शीघ्र ही मेरे सामने सब स्त्रियोंको बुला दो ॥ ६३ ॥

रानी चेलनाने वस्त्र और आभूषणोंसे सुशोभित तथा हावभाव विलास आदि गुणोंसे शोभायमान उनकी बत्तीसों सुन्दर स्त्रियां बुलाकर उनके सामने खड़ी कर दीं ॥ ६४ ॥ तब मुनिराज वारिषेणने पुष्पडालसे कहा कि यदि अब भी तेरी लालसा नहीं मिटी है तो इन स्त्रियोंको और मेरे युवराज पदको स्वीकार कर ॥ ६५ ॥ मुनिराजकी

यह बात सुनकर (और उनको ऐसी परम विभूतिसे भी विरक्त जानकर) पुष्पडाल हृदयमें बहुत ही लज्जित हुआ । उसे उसी समय परम वैराग्य प्रगट हुआ और वह स्वयम् अपनी निंदा करने लगा ॥ ६६ ॥ वह कहने लगा कि इनको धन्य है जिन्होंने राज्यलक्ष्मी और ऐसी ऐसी सुन्दर स्त्रियां त्याग दी हैं तथा मुझ मूर्खको बारबार धिक्कार है जो त्याग करनेपर भी स्त्रीकी चिन्तामें लगा रहता हूँ ॥ ६७ ॥

तदनन्तर पुष्पडालने परम संवेग धारण किया, निरन्तर तीव्र तपश्चरण किया और अन्तमें स्वर्ग सुख प्राप्त किया। अनुक्रमसे वह मोक्ष प्राप्त करेगा ॥ ६८ ॥ रत्नत्रयसे विभूषित हुए मुनिराज वारिषेण भी बारह प्रकारका घोर तपश्चरण कर स्वर्गमें महाऋद्धिके धारक देव हुए ॥ ६९ ॥ जो अनुपम गुणोंसे शोभायमान थे, जिन्होंने शंका आदि सब दोष दूरकर सम्यग्दर्शनके समस्त उत्तम गुणोंको धारण किया था, जिन्होंने बारह प्रकारका तपश्चरण किया था और जो ज्ञान विज्ञानसे विभूषित थे ऐसे वे मुनिराज वारिषेण हम लोगोंको मोक्ष-सुख प्रदान करें ॥ ७० ॥

इस प्रकार आचार्य सकलकीर्ति विरचित प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमें उपगूहन और स्थितिकरण अंगमें प्रसिद्ध होनेवाले जिनेन्द्रभक्त और वारिषेणकी कथाको कहनेवाला यह आठवां परिच्छेद समाप्त हुआ ।

नौवां सर्ग ।

जो सब इच्छाओंको पूर्ण करनेवाले हैं, कामदेवको नष्ट करनेवाले हैं, कुन्दके पुष्पके समान जिनका शरीर है और जो धर्मके स्वामी हैं ऐसे श्री पुष्पदन्त भगवानको मैं अपने प्रारंभ किये हुए कार्यको प्रसिद्ध करनेके लिये नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ मुनिराज श्री विष्णुकुमार सम्यग्दर्शनके वात्सल्य अंगमें प्रसिद्ध हुए हैं इसलिये उनके गुणोंकी प्राप्तिके लिये मैं उनकी कथा कहता हूं ॥ २ ॥ इसी भरतक्षेत्रके मनोहर अवन्ती देशके अन्तर्गत उज्जयिनी नगरीमें अपने पुण्यकर्मके उदयसे श्रीधर्म नामका राजा राज्य करता था ॥ ३ ॥ उसके चार मन्त्री थे—बलि, बृहस्पति, प्रल्हाद और नमुचि उनका नाम था। ये चारों ही मन्त्री बड़े दुष्ट थे ॥ ४ ॥

किसी एक समय अवधिज्ञानी अकम्पनाचार्य अनेक मुनियोंके साथ उस उज्जयिनी नगरीके बाहर वनमें आ विराजे ॥ ५ ॥ उनके साथ सातसौ मुनिराज थे, वे सब बुद्धिके पारगामी थे, तपश्चरणसे उनका शरीर कृश हो रहा था और वे अनेक गुणरूपी सम्पदाओंसे विभूषित थे ॥ ६ ॥ गुरुराज अकम्पनाचार्यने अपने निमित्त ज्ञानसे जानकर सब संघको आज्ञा दे दी थी कि राजा आदिके आनेपर भी कोई किसीसे कुछ भाषण न करे क्योंकि भाषण करनेपर संघपर किसी उपद्रवके होनेकी आशंका है ॥ ७ ॥

मुनिराजको आए हुए जानकर नगरके लोग पूजाकी सामग्री लेकर आए। किसी कारणवश उस समय राजा अपने भवनकी ऊपरी छतपर था। वहांसे उसने सब लोगोंको पूजाकी सामग्री लेकर जाते हुए देखा तब उसने मंत्रियोंसे पूछा कि आज ये लोग पुण्य उपार्जन

करनेके लिये किसकी यात्रा करनेके लिये जा रहे हैं ? मंत्रियोंने उत्तर दिया कि हे महाराज ! नगरके बाहर उद्यानमें मुनिराज पधारे हैं ॥ ८-९ ॥ उन्हींकी वंदना करनेके लिये ये लोग निरन्तर आ जा रहे हैं ? मंत्रियोंकी यह बात सुनकर राजाने भी कहा—हम भी उनकी वंदना करनेके लिये चलेंगे । यह कहकर वह राजा उन मंत्रियोंको साथ लेकर चल दिया । वहां जाकर उसने सब मुनियोंकी वन्दना की परन्तु किसी मुनिने राजाको आशीर्वाद नहीं दिया ॥ १०-११ ॥

यह देखकर राजाने समझा कि शरीरसे ममत्व छोड़े हुए ये निस्पृह और अनेक गुणोंसे विराजमान मुनिराज अपने ध्यानमें लगे हुए हैं यह समझकर वह वापिस लौट गया ॥ १२ ॥ परन्तु उन दुष्ट मंत्रियोंने उनकी हंसी उड़ाई और कहा कि ये कोरे बैल हैं, कुछ जानते नहीं । इन्होंने केवल छलकपट कर मौन धारण कर लिया है ॥१३॥ आगे जाते हुए उन मंत्रियोंको एक श्रुतसागर नामके मुनि मिले जो चर्या करके वापिस लौट रहे थे । उन्हें देखकर उन दुष्ट मंत्रियोंने कहा कि एक यह भी तरुण बैल आया । यह भी मूर्ख और ज्ञानादिकसे सर्वथा रहित है और यह अभी अपना पेट भरकर आया है ॥ १४-१५ ॥

यह सुनकर मुनिराजने राजसभाके मध्यमें उन चारों मंत्रियोंके साथ शास्त्रार्थ किया* और अनेकांतकी युक्तियोंसे उन सबको पराजित किया ॥ १६ ॥ फिर अपने संघमें आकर अपने गुरुराजको नमस्कार

* मुनिराज श्रुतसागर आहारको गये थे और उन्होंने आचार्यकी आज्ञा सुनी नहीं थी इसलिये उन्होंने मंत्रियोंके साथ बातचीत की थी ।

किया और मार्गमें होनेवाले शास्त्रार्थकी सब कथा कह सुनाई। उसे सुनकर आचार्यने कहा—हे विद्वन्! आपने संघके लिये उपद्रव खड़ा कर दिया॥ १७॥ आचार्यकी यह बात सुनकर श्रुतसागरने प्रार्थना की कि हे स्वामिन्! वह मुनियोंका उपद्रव किस प्रकार दूर हो सकता है? आप कृपाकर मुझसे कहिये॥१८॥ तब आचार्यने कहा कि जहांपर शास्त्रार्थ किया है वहीं जाकर यदि आप आज रहें तो संघका जीवन बच सकता है और आपकी शुद्धि भी हो जायगी॥१९॥

आचार्यकी यह आज्ञा सुनकर वे धीरवीर मुनिराज वहींपर गये और निर्भय होकर कायोत्सर्ग धारण कर पर्वतके समान निश्चल होकर उस रातको वहींपर विराजमान रहे॥२०॥ शास्त्रार्थमें हार जाने और मान भंग हो जानेके कारण उन चारों दुष्ट मंत्रियोंने क्रोधित होकर सब संघके मारनेका विचार किया। वे इस कामके लिये रातमें निकले परन्तु मार्गमें उन मुनिराजको देखकर परस्पर कहने लगे कि हम लोगोंका मानभंग तो इसने किया है इसलिये इसे ही मारना चाहिए, दूसरोंको नहीं। यह कह कर चारों मंत्री एकसाथ तलवार उठाकर मारनेके लिये तैयार हुए॥ २१-२२॥ परंतु जैनधर्मके प्रभावसे और मुनिराजके महात्म्यसे नगरके देवताने वे चारों ही मंत्री उसी प्रकार (मारनेके लिए हाथमें तलवार उठाए) कील दिये॥२३॥

सवेरा होते ही नगरके सब लोग मुनिराजकी वंदनाके लिये आये। सबने उन ध्यानारूढ मुनिराजको मारनेका उद्यम करनेवाले उन चारों मंत्रियोंकी निंदा की॥ २४॥ राजाने स्वयं जाकर उनको देखा। उसे बड़ा क्रोध आया परन्तु उसने उनके प्राण नहीं लिये। काला मुंह कर गधेपर सवार कराकर नगरमें फिराया और इस प्रकार महादंड देकर अपने राज्यसे बाहर निकाल दिया॥ २५॥

कुरुजांगल देशके हस्तिनागपुरमें राजा महापद्म राज्य करता था। उसकी रानीका नाम लक्ष्मीमती था। उन दोनोंके दो पुत्र थे। बड़ेका नाम पद्मकुमार था और छोटेका नाम विष्णुकुमार था। किसी निमित्तको पाकर राजा महापद्मने बड़े पुत्र पद्मकुमारको राज्य देकर छोटे पुत्र विष्णुकुमारके साथ श्रुतसागर मुनिराजके समीप आकर दीक्षा धारण कर ली ॥ २६–२८ ॥ दैवयोगसे वे बलि आदि चारों मंत्री मानभंगसे दुःखी होकर, राजा पद्मकुमारके यहां आकर मंत्री हो गये ॥ २९ ॥

हस्तिनागपुर राज्यके पास ही एक कुँभपुर नगर था। उसमें सिंहबल नामका राजा राज्य करता था। उसके पास एक सुदृढ़ किला था और इसीलिये वह हस्तिनागपुर राज्यकी प्रजापर उपद्रव किया करता था ॥३०॥ पद्मकुमार उसे अपने वश नहीं कर सकता था इसीलिये वह चिंता करते करते प्रतिदिन दुर्बलताका अनुभव करने लगे, और मंत्रियोंने कारण पूछा तब राजा पद्मकुमारने सब हाल कह सुनाया। राजाकी बात सुनकर मंत्रियोंने सेनाके साथ उसपर चढ़ाई करनेकी आज्ञा मांगी। आज्ञा पानेपर सेनाके साथ वे उसपर चढ़ाई करनेके लिये चल दिये ॥ ३१–३२ ॥

उन्होंने अपनी बुद्धिमानीसे किलेको तोड़ दिया और बलिने सिंहबलको पकड़कर राजा पद्मकुमारके सामने उपस्थित किया ॥ ३३ ॥ बलिका यह काम देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और बलिसे कहा कि इस समय तुम जो कुछ मागोगे वही दूँगा। इसके उत्तरमें बलिने प्रार्थना की कि महाराज ! जब हमें आवश्यकता होगी तब मांग लेंगे ॥ ३४ ॥

इधर अकंपनाचार्य आदि धीरवीर सातसौ ही मुनिराज विहार करते हुए हस्तिनागपुर आ पहुँचे ॥ ३५ ॥ उनके आते ही नगरमें क्षोभ हो गया। नगरके सब लोग दर्शन करने जाने लगे। इन सब कारणोंसे राग, द्वेष, मद, उन्माद, भय, शोक आदि सब दोषोंसे रहित उन मुनिराजका आना वलि मंत्रीने जान लिया। राजा पद्मकुमारको मुनिराजका भक्त जानकर वलि मंत्रीने उसके पास जाकर प्रार्थनाकी कि हे महाराज! हमें पहिले दिये हुवे वरके बदले सात दिनका राज्य दे दीजिये। इस प्रकार उस दुष्टने मुनियोंको मारनेके लिये वर मांगा। राजा वचन दे चुका था इसलिये वह लाचार होकर सात दिनके लिये वलिको राज्य देकर अन्तःपुरको चला गया ॥ ३६–३८॥ वे मुनिराज किसी पर्वतपर कायोंत्सर्गके द्वारा आतापनयोग धारण किये हुए विराजमान थे, उन सबको उस दुष्टने घेर लिया और सब स्थानके ऊपर एक मण्डप बना डाला ॥ ३९ ॥

फिर उस दुष्टने नरक निगोदके दुःख देनेवाला और धर्मको सर्वथा नाश करनेवाला नरमेध यज्ञ (जिसमें मनुष्य मारकर हवन किये जाते हैं) करना प्रारम्भ किया ॥ ४० ॥ उस नीचने मुनियोंको मारनेके लिये जीवोंके (जिसमें मनुष्य मारकर हवन किये जाते हैं) करना प्रारम्भ किया ॥ ४० ॥ उस नीचने मुनियोंको मारनेके लिये जीवोंके कलेवरोंका तथा हड्डी चमड़ा आदिका बहुतसा धुँआ किया और ऐसे ही ऐसे और भी अनेक उपसर्ग करने प्रारम्भ किये ॥ ४१ ॥ परन्तु जिनका हृदय निश्चल है, शरीर निश्चल है, जिन्होंने शरीरसे ममत्व छोड़ दिया है और जो अत्यन्त धीर-वीर हैं ऐसे वे मुनिराजने उभय विकल्पात्मक (यदि इस उपद्रवसे बचेंगे तो अन्न जलादिक ग्रहण करेंगे अन्यथा सबका त्याग है) सन्यास धारण कर लिया ॥ ४२ ॥

इसी समय मिथिला नगरीके बाहर आचार्य सागरचन्द्रने आकाशमें शुभ श्रवण नक्षत्रको कम्पायमान होते देखा। उसी समय उन्होंने अपने अवधिज्ञानको जोड़ा। अवधिज्ञानसे जानते ही उनके मुंहसे निकला कि—हा! हा! समस्त परिग्रहके त्यागी मुनिराजोंको अत्यन्त कठिन और अत्यन्त भयानक उपसर्ग हो रहा है॥ ४३–४५॥ उनके ये वचन सुनकर पुष्पदन्त नामके क्षुल्लक विद्याधरने पूछा कि हे स्वामिन्! यह उपसर्ग कहां और किनको हो रहा है॥ ४६॥ उत्तरमें आचार्यने कहा कि हे वत्स! हस्तिनापुर नामके शुभ नगरमें बड़े ज्ञानवान अकंपनाचार्य आदि बहुतसे मुनियोंको उपसर्ग हो रहा है॥ ४७॥

विद्याधरने पूछा कि—हे भगवन्! शरीरसे ममत्व छोड़नेवाले उन मुनिराजोंका यह उपसर्ग आज ही शीघ्रताके साथ किस प्रकार नष्ट हो सकता है॥ ४८॥ इसके उत्तरमें आचार्यने कहा कि धरणिभूषण पर्वतपर विक्रिया ऋद्धिको धारण करनेवाले विष्णुकुमार मुनिराज विराजमान हैं। वे इस उपद्रवको दूर कर सकते हैं॥ ४९॥ यह सुनते ही वह विद्याधर स्वयं मुनिराज विष्णुकुमारके समीप गया और नमस्कार कर उसने सब वृतांत कहा॥ ५०॥ विद्याधरकी यह बात सुनकर उन्हें आश्चर्य हुआ और मुझे विक्रिया ऋद्धि प्राप्त हुई है इसकी परीक्षा करनेके लिये उन्होंने अपना हाथ फैला दिया॥ ५१॥

उनका वह हाथ पर्वतको भेदकर दूर तक चला गया तब उन्हें अपनी विक्रिया ऋद्धिका निश्चय हो गया और फिर वे स्वयं राजा पद्मकुमारके समीप आकर कहने लगे कि—तूने यह व्यर्थ ही मुनियोंका उपसर्ग क्यों किया है, तेरे कुलमें और कोई भी ऐसा दुर्बुद्धि नहीं हुआ है!॥ ५२–५३॥ तब पद्मकुमारने कहा कि—भगवन्!

आज मैं क्या करूं ! मैं अपने अशुभ कर्मके उदयसे इस पापीको एक बुरा वचन दे चुका हूँ—अर्थात् वरमें सात दिनका राज्य दे चुका हूं ॥५४॥ तब विष्णुकुमारने वामन रूप ब्राह्मणका भेष बनाया और बलिके समीप पहुंचे ॥ ५५ ॥ वहांपर जाकर उन्होंने बड़ी अच्छी दिव्य आवाजसे शुभ प्रार्थना की। तब बलिने कहा कि—महाराज ! आपको क्या दें, आपको जो इच्छा हो वही आप मांग लें ॥ ५६ ॥

तब विष्णुकुमारने कहा कि—मुझे तीन पेंड पृथ्वी दे दीजिये। तब बलिने कहा—हे ब्राह्मण ! यह क्या मांगा और भी घर आदि बहुतसी चीजें मांगो ॥५७॥ और अधिक मांगनेके लिये बलिने भी वारवार कहा तथा और भी अनेक लोभी पुरुषोंने भी अधिक मांगनेके लिये कहा परन्तु सन्तोषको धारण करनेवाले विष्णुकुमार अपनी उसी मांगपर डटे रहे ॥५८॥ तब बलिने हाथपर पानीकी धारा छोड़कर विष्णुकुमारके लिये कल्याण करनेवाला तीन पेंड पृथ्वीका दान दे दिया ॥ ५९ ॥

मुनिराजने दान लेकर पृथ्वी नापनी प्रारम्भ की। उन्होंने विक्रिया ऋद्धिसे अपना शरीर बढ़ाकर एक पैर तो मेरु पर्वतपर रक्खा दूसरा मानुषोत्तर पर्वतपर रक्खा, अब तीसरा पैर रखनेके लिये कहीं स्थान न रहा। उनके इस कृत्यसे समस्त संसारमें क्षोभ हो गया और देवोंके विमानोंमें भी क्षोभ हो गया तब लाचार होकर उन्होंने अपना तीसरा पैर बलिकी पीठपर रक्खा ॥ ६०–६१ ॥

तब वे सब मन्त्री महाराज पद्मकुमारके भयसे घबराये। वे सब उसी समय मुनिराज विष्णुकुमारके तथा उन सातसौ मुनियोंकी शरणमें जा पड़े ॥६२॥ उन्होंने उन सबको नमस्कार किया और जैनधर्मका ऐसा महात्म्य देखकर वे चारोंही मन्त्री अच्छे श्रावक बन गये॥६३॥

इस संसारमें विष्णुकुमार मुनिराज बड़े ही धन्य हैं। उनका वात्सल्य अंग बहुत ही प्रशंसनीय है क्योंकि मुनियोंका साक्षात् उपसर्ग उन्होंने स्वयं दूर किया था ॥ ६४ ॥ इनके सिवाय रामचन्द्र आदि और भी बहुतसे महापुरुष इस वात्सल्य गुणको धारण करनेवाले हुए हैं उन सबके जीवनचरित्र श्री जैन शास्त्रोंसे जान लेना चाहिये ॥ ६५ ॥

हे वत्स ! हे बुद्धिमान ! यह वात्सल्य गुण सदा सुख देनेवाला है और धर्मको बढ़ानेवाला है इसलिये यथायोग्य रीतिसे मुनि और श्रावकोंमें सदा वात्सल्य धारण करना चाहिये ॥ ६६ ॥ जो अभिमानी मूर्ख धर्मात्माओंमें प्रेम नहीं करते हैं वे धर्मरूपी पर्वतसे गिरकर संसाररूपी समुद्रमें डूब जाते हैं ॥ ६७ ॥ जो अभिमानी गुणवान् मुनिको देखकर भी उनमें प्रेम नहीं करते हैं वे अपना उत्कृष्ट धर्म छोड़कर नरकमें पड़ते हैं ॥ ६८ ॥

जो संयमी पुरुष केवल धर्म-पालन करनेके लिये मुनियोंमें प्रेम करते हैं वे इन्द्रादिकके पदको पाकर अवश्य ही मोक्षमें जा विराजमान होते हैं ॥ ६९ ॥ जिन मुनिराज विष्णुकुमारको अनेके ऋद्धियां प्राप्त हुई थीं, जिन्होंने सम्यग्दर्शनका सातवां उत्तम वात्सल्य अंग धारण किया था, जो संसारके भारको छोड़कर मोक्षसुखके पारगामी हुए थे और जो संसाररूपी महासागरसे पार कर देनेके लिये जहाजके समान हैं उन्हें मैं मोक्ष प्राप्त करनेके लिये नमस्कार करता हूं ॥७०॥

इस प्रकार आचार्य श्रीसकलकीर्ति विरचित प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमें वास्तल्य अंगमें प्रसिद्ध होनेवाले विष्णुकुमार मुनिराजकी कथाको कहनेवाला यह नौवां सर्ग समाप्त हुआ।

दशवां सर्ग ।

जो धर्मरूपी अमृतकी वर्षा करनेके लिये बादलके समान हैं और पापरूप सन्तापको दूर करनेवाले हैं ऐसे श्री शीतलनाथ भगवानको मैं अपने जन्ममरण रूप दाहको नाश करनेके लिये नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ सम्यग्दर्शनके आठवें प्रभावना अंगमें मुनिराज वज्रकुमार प्रसिद्ध हुए हैं इसलिये अब संक्षेपसे उनकी कथा कहता हूं ॥ २ ॥ हस्तिनागपुरमें राजा बल राज्य करता था उसके गरुड़ नामका एक धार्मिक पुरोहित था और उसके पुत्रका नाम सोमदत्त था ॥ ३ ॥ वह सोमदत्त अनेक शास्त्रोंका पारगामी था। वह किसी समय अहि-छत्रपुर नगरमें अपने शिवभूति मामाके पास गया। किसी एक दिन उसने अपने मामासे कहा—हे मामा! इस समय यहांके राजा दुर्मुखसे मेरी भेट करा दीजिये। उसका मामा भी अनेक शास्त्रोंका पारगामी था परन्तु वह अभिमानी था इसलिये उसने राजासे सोमदत्तकी भेट नहीं कराई ॥ ४-५॥ तब सोमदत्तने स्वयं ही कुछ उपाय किया और पुण्यकर्मके उदयसे राजसभामें जाकर सिंहासन पर विराजमान हुए राजाके दर्शन किये ॥ ६ ॥ सोमदत्तने महाराजको आशीर्वाद दिया, अपने शास्त्रोंकी कुशलता प्रगट की और इस प्रकार राजाको प्रसन्न कर उसने सर्वोत्तम मन्त्री पद स्वयं प्राप्त कर लिया ॥ ७ ॥ शिवभूतिने भी अपने भानजेको इस प्रकार विद्वान् और धनी देखकर उसे यज्ञदत्ता नामकी अपनी पुत्री व्याह दी ॥ ८॥ समयानुसार उसे गर्भ रहा। किसी एक दिन वर्षाकालके दिनोंमें जब कि पानी पड़ रहा था तब यज्ञदत्ताको आम खानेका दोहला उत्पन्न हुआ ॥९॥ वह समय आमोंका समय नहीं था इसलिये सोमदत्तने बहुतसे उद्यान और वन ढूंढ़े परन्तु आम कहीं न मिले। अन्तमें वह एक वनमें गया वहांपर

एक आमके वृक्षके नीचे सुमित्र नामके आचार्य मुनिराज विराजमान थे। तथा उस वृक्षपर बहुतसे आमके फल लग रहे थे। सोमदत्तने आम तोड़कर सेवकके हाथ घर भेज दिये ॥ १०-११ ॥ तदनन्तर उसने उन आचार्यको नमस्कार किया और उनसे सुख देनेवाले तथा स्वर्ग मोक्ष प्राप्त करा देनेवाले धर्मका स्वरूप सुना। उसे सुनते ही उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया ॥ १२ ॥ उसने इस संसारको असार समझा और स्त्री पुत्र धन जीवन आदिको अनित्य समझा तथा ऐसा निश्चय कर उसने संयम धारण कर लिया ॥ १३ ॥ मुनिराज सोमदत्तने अनेक शास्त्रोंका अभ्यास किया और ज्ञान ध्यानमें तल्लीन होनेका अभ्यास किया। किसी एक समय वे नाभिगिरि पर्वतपर तपश्चरण करनेके लिये सूर्यके सामने जा विराजमान हुए ॥ १४ ॥

इधर समय पाकर यज्ञदत्ताके पुत्र उत्पन्न हुआ। इसके कुछ दिन बाद उसने अपने पतिका समाचार भी सुना। उनके मुनि होनेके समाचार सुनकर उसे बहुत ही क्रोध आया और भाई आदिको साथ लेकर वह नाभिगिरि पर्वतपर पहुंची ॥ १५ ॥ वहां जाकर देखा कि शरीरसे ममत्व छोड़े हुए पर्वतके समान अचल सूर्यके सामने विराजमान होकर तप कर रहे हैं ॥ १६ ॥ उस दुष्टाने उन मुनिराजको अनेक दुर्वचन कहे और क्रोधमें आकर उस बालकको उन मुनिराजके पैरोंपर डालकर अपने घरको चली गई ॥ १७ ॥ परन्तु समस्त परिग्रहोंका त्याग कर देनेवाले और सब तरहकी चिंताओंसे रहित वे मुनिराज उसीप्रकार एकाग्रचित्त होकर ध्यानमें तल्लीन बने रहे ॥ १८ ॥

इसी समयकी एक कथा और है और वह इस प्रकार है कि विजयार्द्ध पर्वत पर एक अमरावती नामकी नगरी है जिसमें अनेक धर्मात्मा लोग निवास करते थे ॥ १९ ॥ उस नगरीमें दिवाकर देव

नामका विद्याधर राज्य करता था। उसके छोटे भाईका नाम पुरन्दर था। पुरंदरने अपने बलसे अपने बड़े भाईको नगरसे निकाल दिया था और उसका राज्य स्वयं ले लिया था ॥ २० ॥ दिवाकर देवने अपने राज्यका नाश होना पापका फल समझा इसलिये वह अपनी स्त्रीको साथ लेकर मुनियोंकी वन्दना करनेके लिये निकला ॥ २१ ॥

वह चलता२ नाभिगिरि पर्वतपर आया और मुनिराजको नमस्कार कर बैठ गया। उसने उनके चरणोंपर पड़े हुए सुन्दर बालकको देखा और उसे उठाकर अपनी स्त्रीको सौंप दिया ॥ २२ ॥ दिवाकर देवने उसका नाम वज्रकुमार रक्खा और वह मुनिराजके दर्शन कर बड़ी प्रसन्नताके साथ कनकपुरको चला ॥ २३ ॥ वहांपर वज्रकुमारका मामा (दिवाकरदेवका साला) विमलवाहन राज्य करता था। वह विमलवाहन बहुत ही विद्वान् था। उसीके पास रहकर वज्रकुमारने अनेक विद्याएं सीखीं ॥ २४ ॥

किसी एक दिन वज्रकुमार शोभा देखनेके लिये हिमंत पर्वतपर गया था। वहांपर गरुड़वेग विद्याधरकी स्त्री गंगावतीकी पुत्री पवनवेगा प्रज्ञप्ति नामकी विद्याको सिद्ध कर रही थी। वह पवनवेगा बड़ी गुणवती थी, बड़ी ही रूपवती थी, और उस समय एकाग्र चित्त होकर बड़े परिश्रमसे विद्या सिद्ध कर रही थी। दैवयोगसे उसी समय वायुसे उड़कर एक बेरका कांटा उसकी आंखमें पड़ गया था और उसकी पीड़ासे उसका चित्त चञ्चल हो उठा था। तथा चित्तके चञ्चल होनेसे वह विद्या सिद्ध नहीं हो रही थी। वज्रकुमारने अपने विज्ञानबलसे वह कांटा देख लिया था और पास जाकर स्वयं अपने हाथसे उसे निकाल डाला था ॥ २५-२८ ॥ कांटेके निकल जानेसे उसका चित्त स्थिर हो गया और चित्तके स्थिर हो जानेसे तथा पुण्यके प्रभावसे उस

विद्याधर पुत्रीको अनेक कार्य करनेवाली विद्या स्वयं आकर सिद्ध होगई ॥ २९ ॥

विद्या सिद्ध हो जानेपर उस विद्याधर पुत्रीने वज्रकुमारसे कहा—हे स्वामिन् ! मुझे यह विद्या आपके प्रसादसे सिद्ध हुई है इसलिये इस जन्ममें मेरे पति आप ही हैं, अब मैं और किसीको स्वीकार कर नहीं सकती ॥ ३० ॥ तदनंतर माता-पिताकी आज्ञासे उन दोनोंका विवाह हो गया सो ठीक ही है, क्योंकि इस संसारमें पुण्योदयसे क्या क्या प्राप्त नहीं होता है ॥ ३१ ॥ किसी एक दिन मालूम हो जानेपर वज्रकुमार अपनी स्त्रीकी विद्या लेकर और कुछ सेना लेकर अमरावतीपर चढ़ गया और अपने काकाको जीतकर अपने पिताको राज्यगद्दी पर बिठाया ॥ ३२ ॥

किसी एक दिन वज्रकुमारकी माता जयश्री (दिवाकरदेवकी रानी) अपने निजके पुत्रको राज्य दिलानेके लिये वज्रकुमारसे कुछ ईर्षाके वचन कह रही थी और कह रही थी कि यह वज्रकुमार कहां तो उत्पन्न हुआ है और कहां आकर हम लोगोंको दुःखी करता है । अपनी माताकी यह बात सुनकर वज्रकुमार उसी समय अपने पिताके पास पहुँचा ॥ ३३-३४ ॥ और कहने लगा कि हे तात ! आज सच बतला दीजिये कि मैं किसका पुत्र हूँ । आज यह बात जान लेनेपर ही मैं अन्नपानी ग्रहण करूँगा, अन्यथा नहीं ॥ ३५ ॥

उस कथाको सुनकर वज्रकुमार अपने पूज्य पिताके दर्शन करनेके लिये पिता, भाई आदि सबके साथ निकला । उस समय उसके पिता श्री सोमदत्त मुनिराज मथुरा नगरीमें एक क्षत्रिय नामकी गुफामें तपश्चरण कर रहे थे । वज्रकुमार भक्तिपूर्वक वहीं पहुँचा ॥ ३७ ॥ सब लोग मुनिराजको नमस्कार कर बैठ गये । तब दिवा–

करदेवने उन मुनिराजसे उस वज्रकुमार पुत्रके होनेकी सब कथा कह सुनाई ॥ ३८ ॥ यह सुनकर मुनिराज वज्रकुमारसे कहने लगे कि हे पुत्र ! मोहरूपी महा मल्लको नाशकर स्वर्ग मोक्षके सुख देनेवाली दीक्षा ग्रहण कर ॥ ३९ ॥ मुनिराजके वचन सुनकर वज्रकुमारने भी सब कुटुम्बका त्याग किया और अपने पूज्य पितासे दीक्षा धारण की ॥ ४० ॥

इधर मथुरा नगरमें राजा पूतिगन्ध राज्य करता था, उसकी रानीका नाम उर्विला था जो रानी सदा धर्ममें तत्पर रहती थी ॥४१॥ वह रानी सम्यग्दर्शन गुणसे सुशोभित थी, धर्मोत्सव करनेमें तत्पर थी, प्रभावना अंगको पालन करनेमें चतुर थी और जिनेंद्रदेवमें परम भक्ति रखती थी ॥४२॥ वह प्रत्येक नंदीश्वर पर्वमें श्रेष्ठ रथमें भगवान जिनेंद्रदेवको विराजमानकर आठ दिन तक बराबर रथयात्रा करती थी और इस प्रकार प्रत्येक वर्षमें तीनवार किया करती थी ॥ ४३ ॥

उसी मथुरा नगरीमें सेठ सागरदत्तकी सेठानी समुद्रदत्ताके उदरसे एक दरिद्रा नामकी पुत्री हुई थी । उसके होते ही पापकर्मके उदयसे उस सेठका सब धन नष्ट हो गया था और माता पिता भी मर गये थे । तब वह दरिद्रा अकेली इधर उधर फिरा करती थी और दूसरोंके घर जूठा और बुरा अन्न खाया करती थी । किसी एक दिन उस नगरीमें दो मुनिराज पधारे । उनमेंसे छोटे मुनिने उस दरिद्राको देखकर बड़े मुनिसे कहा कि देखो, पहिले जन्ममें उपार्जन किये हुए पापकर्मके उदयसे यह दरिद्रा बड़े कष्टसे अपना जीवन बिता रही है ॥ ४४–४७ ॥ छोटे मुनिकी यह बात सुनकर बड़े मुनिने कहा कि कालांतरमें यह यहांके इसी राजाकी पट्टरानी होगी ॥४८॥

मुनिराजकी यह बात एक बौद्ध भिक्षुक धर्मश्री वंदकने भी

सुन ली। उस समय वह भी भिक्षाके लिये आया था। उसने यह बात सुनकर निश्चय कर लिया कि मुनिराजकी बात कभी मिथ्या नहीं होती है ॥ ४९ ॥ वह वंदक शीघ्र ही उसे अपने मठमें ले गया और उसे मीठे मीठे आहार खिलाकर सन्तुष्ट किया। अनुक्रमसे वह दरिद्रा यौवनरूपी संपदाको प्राप्त होगई ॥ ५० ॥

किसी एक समय चैत्रके महीनेमें अनेक गुणोंसे सुशोभित वह दरिद्रा झूल रही थी, कि राजा पूतगन्ध भी वायु सेवनके लिये उधर आ निकला था। उस समय वह राजा उसको देखकर मोहित और विह्वल होगया ॥ ५१ ॥ दरिद्रा अब रूपवती और लावण्यवती होगई थी तथा उसके पुण्य कर्मका भी उदय हो गया था इसलिये मंत्रियोंके द्वारा राजाने वंदकसे वह कन्या मांगी ॥ ५२ ॥

इसके उत्तरमें वंदकने कहा कि यदि राजा जैनधर्मको छोडकर केवल मेरा बौद्ध धर्म स्वीकार कर लेगा तो मैं यह कन्याको राजाको दे दूँगा, विना इस शर्तको पूरी किये मैं नहीं दे सकता ॥ ५३ ॥ राजा मूर्ख था इसलिये उसने वंदककी यह शर्त मान ली और उसके साथ विवाह करलिया। उसने उसे पट्टमहादेवी बनाया और वह उस पर बहुत प्रेम करने लगा ॥ ५४ ॥

इधर उर्विला रानी फाल्गुन महीनेके अष्टाह्निका पर्वमें रथोत्सवकी तैयारी कर रही थी। अनेक प्रकारके वस्त्राभरणोंसे सुशोभित उसका अद्भुत और बहुत बड़ा रथ खड़ा हुआ था ॥ ५५ ॥ उसे देखकर दरिद्राने अपने पतिसे (राजासे) कहा कि हे देव ! इस समय बुद्धका रथ भी निकलना चाहिये और धर्मके लिये वह मेरा रथ इस नगरीमें सबसे पहिले निकलना चाहिये ॥ ५६ ॥ राजाने भी उसकी इच्छानुसार आज्ञा दे दी। उसका रथ तैयार होने लगा। अब

उर्विलाको बड़ी कठिनता पड़ी, क्योंकि पहिले बुद्धका रथ निकलनेके लिये उसका रथ रोक दिया गया था । इसलिये उसने प्रतिज्ञा की कि जब मेरा रथ निकल जायगा तभी मैं आहार ग्रहण करूँगी अन्यथा नहीं ।। ५७-५८ ।। ऐसी प्रतिज्ञाकर वह रानी सोमदत्त मुनिराजके समीप क्षत्रिय गुफामें पहुंची और उन मुनिराजसे सब हाल कहा ।।५९।। दैवयोगसे इसी समय वज्रकुमार मुनिकी वंदना करनेके लिये दिवाकर-देव आदि बहुतसे विद्याधर आए थे ।। ६० ।।

वे मुनिराजकी वंदनाकर और मुनिराजके श्रीमुखसे सुख देने-वाले धर्मका स्वरूप सुनकर हृदयमें धर्मकी भावना करते हुए बैठे थे ।। ६१ ।। रानीकी प्रतिज्ञा सुनकर वज्रकुमारने उन विद्याधरोंसे कहा कि आपको यह धर्मकी प्रभावना अवश्य कर देनी चाहिये और इस उर्विला रानीका रथ निकलवा देना चाहिये ।। ६२ ।। मुनिराजकी यह बात सुनकर वे सब विद्याधर नगरमें पहुचे और बुद्ध दासी दरिद्राका रथ तोड़ फोड़कर चूर्ण कर डाला । फिर जिन धर्मकी प्रभावना करनेवाले उन लोगोंने बड़ी विभूतिके साथ उर्विलाका रथ निकलवाया जिससे अनेक लोगोंने पुण्य सम्पादन किया और नगरमें बड़ी शोभा हुई ।। ६४ ।।

राजा पूतगंध और बुद्धदासी दरिद्राने भी जैनधर्मका ऐसा माहात्म्य देखकर बौद्धधर्मका त्याग दिया और भगवान जिनेंद्रदेवका कहा हुआ जैनधर्म स्वीकार कर लिया ।। ६५ ।। उस विद्याधरोंके द्वारा किये हुए बड़ेभारी अतिशयको देखकर अनेक लोगोंने मिथ्यात्व छोड़ दिया और पवित्र जैनधर्मको स्वीकार कर लिया ।। ६६ ।। लोगोंने रानी उर्विलाकी बड़ी प्रशंसाकी और मुक्त कण्ठसे कहा कि सम्यग्दर्शनसे सुशोभित होनेवाली और प्रभावना आदि सम्यक्त्वके गुणोंमें आसक्त रहनेवाली

इस उर्विला रानीको बार बार धन्य है ॥६७॥ सम्यग्दर्शनसे विभूषित होनेवाले और भी ऐसे अनेक भव्य हैं जिन्होंने इस जैन धर्मकी प्रभावना की है उनका वर्णन जैन शास्त्रोंसे जान लेना चाहिए ॥६८॥

अनेक मुनिराज अपनी शक्तिको प्रकटकर ज्ञान और तपश्चरणके द्वारा इस जैनधर्मकी प्रभावना प्रगट करते हैं तथा श्रावकजन भी अपनी शक्तिको प्रगटकर दान पूजा और उत्सवों द्वारा सदा इस जैन धर्मकी प्रभावना किया करते हैं ॥ ६९-७० ॥

जो अनेक निर्मल गुणोंकी निधि हैं, जिन्होंने संसारमें सारभूत पदार्थ सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया है, जो समस्त दोषोंसे रहित हैं, सारभूत रत्नत्रयसे विभूषित हैं और जिन्होंने संसारभरमें जैन धर्मका प्रभाव प्रगट किया था ऐसे मुनिराज वज्रकुमार सदा जयशील हों ॥७१॥

इसप्रकार आचार्यश्री सकलकीर्ति विरचित प्रश्नोत्तर श्रावकाचारमें
प्रभावनाअंगमें प्रसिद्ध होनेवाले वज्रकुमारकी कथाको
निरूपण करनेवाला यह दशवां सर्ग समाप्त हुआ ।

ग्यारहवां सर्ग ।

जो संसारके समस्त प्राणियोंका कल्याण करनेवाले हैं, अनन्त गुणोंसे सुशोभित हैं और धर्मकी खानि है ऐसे श्री श्रेयांसनाथको मैं श्री जैन धर्मकी सिद्धिके लिये नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ पहिले सम्यग्दर्शनके आठों गुणोंका व्याख्यान किया था अब सम्यग्दर्शनको मलिन करनेवाले उसके दोषोंको कहता हूँ ॥ २ ॥ आठों गुणोंसे परिपूर्ण और समस्त दोषोंसे रहित सम्यग्दर्शन ही मोक्षमहलकी पहिली सीढ़ी है । हे वत्स ! तू ऐसे ही निर्मल सम्यग्दर्शनको धारण कर ॥३॥

प्रश्न—हे प्रभो ! सम्यग्दर्शनको मलिन करनेवाले वे कौनसे दोष हैं कृपाकर मेरे लिये उन सबका निरूपण कीजिये ॥ ४ ॥

उत्तर—हे वत्स ! तू एकाग्र चित्त होकर सुन, मैं केवल त्याग करनेके लिये सम्यग्दर्शनके गुणोंको घात करनेवाले महा निंद्य उन दोषोंको कहता हूँ ॥ ५ ॥ तीन मूढ़ता, जाति आदिके आठ मद, छह अनायतन और शंका आदि आठ दोष इस प्रकार ये सम्यग्दर्शनके पचीस दोष कहलाते हैं। अज्ञानी लोग बड़ी कठिनतासे इनका त्याग करते हैं परन्तु सम्यग्दर्शनको शुद्ध करनेके लिये इनका त्याग कर देना ही चाहिये ॥ ६-७ ॥

भगवान वीतराग अरहन्तदेव अत्यन्त निर्दोष हैं तथापि अज्ञानी लोग कृष्ण, ब्रह्मा आदि सदोष देवोंकी पूजा करते हैं, कोई कोई बुद्धिहीन तो पशुओंकी भी पूजा करते हैं। इस प्रकार विना किसी परीक्षाके वे लोग पुण्य करनेके लिये प्रतिदिन मूढ़ भावोंको प्राप्त होते रहते हैं इसीको विद्वान् लोग देवमूढ़ता कहते हैं ॥ ८-९ ॥ जैन शास्त्रोंमें, जैन सिद्धांत सूत्रोंमें भगवान जिनेन्द्रदेवने धर्मका यथार्थ स्वरूप वर्णन किया है तथापि पांचों प्रकारके मिथ्यात्वमें लगे हुए अज्ञानी जीव वेद आदिमें कहे हुए धर्मको ही मानते हैं। वे लोग श्रेष्ठ विचारोंको छोड़कर वेदादिके कहे अनुसार चलते हैं इसीको बुद्धिमान लोग शास्त्रमूढ़ता वा समयमूढ़ता कहते हैं ॥ १०-११ ॥

भगवान जिनेन्द्रदेवने धर्मका स्वरूप अहिंसामय बतलाया है, परन्तु अज्ञानी लोग उस पर विचार न कर स्नान श्राद्ध आदि लोकाचारको ही धर्म मान लेते हैं इसीको श्री जिनेन्द्रदेव लोकमूढ़ता कहते हैं ॥ १२-१३ ॥ हे वत्स ! तू परीक्षारूपी नेत्रोंसे देखकर मिथ्यात्वको छोड़कर जैन धर्मको स्वीकार कर और तीनों मूढ़ताओंका त्याग

कर ॥ १४ ॥ जो मूर्ख इन तीनों मूढताओंको स्वीकार करता है वह जीवित रहनेके लिये विष खाता है अथवा सुखी रहनेके लिये अपने प्राणोंका घात करता है ॥ १५ ॥

सज्जाति, सत्कुल, ऐश्वर्य, रूप, ज्ञान, तप, बल और शिल्प आदि विद्या। इन आठोंके आश्रय मद करना आठ मद कहलाते हैं। हे मित्र! तू इनको शीघ्र ही छोड़ ॥ १६ ॥ मातृपक्षमें उत्पन्न हुए कुटुम्बसमूहको जाति कहते हैं। संसारके सब कुटुम्बादिक नश्वर हैं नाश होनेवाले हैं यही समझकर हे शिष्य! तू इस जातिके मदको छोड़ ॥ १७ ॥ हे मित्र! इस संसारसागरमें परिभ्रमण करते हुए तूने भिन्न भिन्न सब जातियोंकी माताओंका अलग अलग इतना दूध पिया है कि जो एक एक जातिका इकट्ठा किया जाय तो वह महा-सागरसे भी अधिक होजाय। फिर भला उसका अभिमान करना कैसा? ॥ १८ ॥

पिताके पक्षमें उत्पन्न हुए कुटुम्बको कुल कहते हैं। ये स्वजन परिजन भी दाभकी नोंकपर पड़ी हुई जलकी बूंदके समान चंचल हैं शीघ्र नष्ट होनेवाले हैं यही समझकर कुलका अभिमान कभी नहीं करना चाहिये ॥ १९ ॥ धन धान्य घर राज्य आदि भी अग्नि चोर आदिके द्वारा नष्ट होता है, किसीकी सम्पदा सदा नहीं बनी रहती, यही समझकर ऐश्वर्यका मद छोड़ देना चाहिये ॥ २० ॥ यह शरीर सुन्दर होनेपर भी अनित्य है, किसी न किसी दिन अवश्य नष्ट होगा यह केवल वस्त्रोंसे ढका हुआ ही अच्छा दिखता है, वास्तवमें बुढापा रोग आदि अनेक व्याधियोंसे घिरा हुआ है यही समझकर बुद्धिमानोंको रूपका अभिमान छोड़ देना चाहिये ॥ २१ ॥ बुद्धिमानोंको थोड़ासा ज्ञान पाकर कभी अभिमान नहीं करना चाहिये क्योंकि यदि पहिलेके

ज्ञानियोंकी तुलना की जाय तो उनके सामने अबका ज्ञान एक अंश मात्र भी नहीं है ॥ २२ ॥

इसी प्रकार चतुर पुरुषोंको तपश्चरणका भी अभिमान नहीं करना चाहिये । क्योंकि पहिलेके मुनि जो तपश्चरण करते थे उसका तो एक अंश भी इस समय नहीं किया जा सकता ॥ २३ ॥ चतुर पुरुषोंको बलवान शरीर पाकर भी उसका अभिमान छोड़ देना चाहिये । क्योंकि यह शरीर केवल अन्नादिकसे पुष्ट होता है और क्षणभरमें नष्ट हो जाता है ॥ २४ ॥ इसी प्रकार सुन्दर लेख आदि कलाकौशलोंका अभिमान भी नहीं करना चाहिये क्योंकि इस विचित्र सम्यग्दर्शनके लिये उसका अभिमान भी अशुभ ही है ॥ २५ ॥

हे बुद्धिमान् ! सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान प्राप्त करनेके लिये श्रेष्ठ मार्दव धर्मको स्वीकार कर अनेक दुःख और दुर्गतियोंके देनेवाले इन आठों मदोंका त्याग कर देना चाहिये ॥२६॥ जो नीच अनेक प्रकारके बुरे दुःख देनेवाले ऊपर लिखे आठों मदोंको करता है, इनका अभिमान करता है वह सम्यग्दर्शनको नष्ट कर नीच गतिको प्राप्त होता है ॥ २७ ॥ मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र और मिथ्यादृष्टि, मिथ्याज्ञानी तथा मिथ्याचारित्रको धारण करनेवाला ये छह षट् अनायतन कहलाते हैं ॥ २८ ॥ अज्ञानी जीवोंके द्वारा जो पाप और दुःख देनेवाले कुदेव कुगुरु और कुधर्ममें विश्वास किया जाता है वह मिथ्यादर्शन कहलाता है ॥ २९ ॥

मिथ्यादृष्टि जीव जो वेदशास्त्र वा स्मृतिशास्त्र आदिका पठनपाठन करते हैं और उनके द्वारा पापोंको उत्पन्न करनेवाला ज्ञान बढ़ाते हैं चतुर पुरुष उसको मिथ्याज्ञान कहते हैं ॥ ३० ॥ अज्ञानी जीव पंचाग्नि तपके द्वारा अथवा और भी कुतपोंके द्वारा जो कायक्लेश

करते हैं उसे मिथ्याचारित्र कहते हैं ॥ ३१ ॥ जो मिथ्यादर्शन सहित है, श्रेष्ठ तत्वोंपर अथवा सम्यग्दर्शन पर जो कभी विचार नहीं करता और जो जैनधर्मसे बहिर्भूत है उसे विद्वान् लोग मिथ्यादृष्टि कहते हैं ॥ ३२ ॥ जो मनुष्य वेदादि कुशास्त्रोंका पठनपाठन करता है और जिसने सिद्धांत शास्त्रोंको सर्वथा छोड़ दिया है वह मिथ्याज्ञानी कहलाता है ॥ ३३ ॥

जो मनुष्य पंचाग्नि तप तपता है अथवा और भी मिथ्या तपोंमें उद्यम करता है उसको मुनीश्वर लोग कुतपसी कहते हैं ॥ ३४ ॥ ये ऊपर लिखे हुए छह (मिथ्यादर्शन, मिथ्यादृष्टि, मिथ्याज्ञान, मिथ्याज्ञानी, मिथ्याचारित्र और कुतपसी) अनायतन (जो धर्मके आयतन वा स्थान न हों किन्तु अधर्मके स्थान हों) कहलाते हैं। ये छहों अनायतन नरक और तिर्यंच गतिके दुख देनेवाले हैं, अनेक पापोंको उत्पन्न करनेवाले हैं, निंद्य हैं और सम्यग्दर्शनको नाश करनेवाले हैं ॥३५॥ हे मित्र! ये छहों अनायतन शत्रुके समान दुःख देनेवाले हैं और दुःख रूपी दावानलके लिये महा ईंधनके समान हैं इसलिये इनको अच्छी तरह जानकर दूरसे ही इनका त्याग कर देना चाहिये ॥ ३६ ॥ पहिले जो निःशंकित आदि सम्यग्दर्शनके आठ गुण कहे थे उन्हींके उलटे शंका आदिक आठ दोष कहलाते हैं ॥ ३७ ॥

हे वत्स! अनेक पापोंको उत्पन्न करनेवाले ये सम्यग्दर्शनके सब दोष मिलकर पच्चीस होते हैं। सम्यग्दर्शनको शुद्ध करनेके लिये तू इन पच्चीसों दोषोंका त्याग कर ॥ ३८ ॥ जिस प्रकार मलिन दर्पणमें अपना मुँह अच्छा दिखाई नहीं दे सकता उसी प्रकार अशुद्ध (दोष सहित) सम्यग्दर्शनमें विद्वान् लोगोंको भी मुक्तिलक्ष्मीका मुँह दिखाई नहीं दे सकता ॥ ३९ ॥ जिस प्रकार हृदयके मलिन होनेपर

ध्यान नहीं किया जा सकता उसी प्रकार सदोष सम्यग्दर्शनसे कर्म-रूप शत्रु कभी नष्ट नहीं किये जा सकते ॥ ४० ॥

जिस प्रकार निर्मल दर्पणमें ही मुँह दिखाई देता है उसी प्रकार चतुर मनुष्योंको निर्मल सम्यग्दर्शनमें ही मुक्ति लक्ष्मीका मुखरूपी कमल दिखाई देता है ॥ ४१ ॥ मुनियोंको विना ज्ञान और विना व्रतादिकोंके केवल सम्यग्दर्शनसे ही इन्द्रकी विभूति तथा तीर्थंकरकी विभूति प्राप्त हो जाती है ॥ ४२ ॥ जिस प्रकार मकानका आधार उसकी जड़ वा नीव है उसी प्रकार तप, ज्ञान, व्रत आदि सबका आधार सम्यग्दर्शन है ऐसा श्री जिनेन्द्रदेवने कहा है ॥ ४३ ॥ विद्वान् लोग विना सम्यग्दर्शनके ज्ञानको मिथ्याज्ञान कहते हैं, चारित्रको कुचारित्र कहते हैं और मनुष्योंके व्रतोंको सबको निरर्थक बतलाते हैं ॥ ४४ ॥

विना व्रत, तप, ज्ञान और श्रुतके अकेला सम्यग्दर्शन तो अच्छा, परन्तु विना सम्यग्दर्शनके अकेले व्रत तप ज्ञान और श्रुत अच्छे नहीं क्योंकि विना सम्यग्दर्शनके अकेले तप व्रत ज्ञान श्रुत आदि मिथ्यात्व-रूपी विषसे दूषित होजाते हैं ॥ ४५ ॥ इसमें कोई सन्देह नहीं कि विना सम्यग्दर्शनके यह प्राणी सर्वथा पशु ही है क्योंकि जिस प्रकार जन्मका अन्धा पुरुष सूर्यको नहीं जानता उसी प्रकार विना सम्दर्शनके यह प्राणी धर्म अधर्मको भी नहीं जान सकता हैं ॥ ४६ ॥ यदि सम्यग्दर्शनके साथ साथ अत्यंत दुःख देनेवाले नरकमें भी निवास करना पड़े तो भी अच्छा परन्तु विना सम्यग्दर्शनके स्वर्गलोकमें शोभायमान होना भी अच्छा नहीं ॥ ४७ ॥

क्योंकि इस सारभूत सम्यग्दर्शनके माहात्म्यसे यह प्राणी नरकसे निकलकर लोक अलोकको प्रकाशित करनेवाला तीर्थंकर होता है;

परन्तु विना सम्यग्दर्शनके भोगोंमें तत्पर रहनेवाला स्वर्गका देव भी आर्तध्यानमें लीन होकर स्थावर जीवोंमें आ उत्पन्न होता है ॥ ४८–४९ ॥ सदा कालसे यह निश्चित चला आ रहा है कि तीनों काल और तीनों लोकोंमें सम्यग्दर्शनके समान कल्याण करनेवाला धर्म आज तक न हुआ, न अब है और न आगे होगा ॥ ५० ॥ सम्यग्दर्शनके समान न कोई मित्र है, न धर्म है, न सार पदार्थ है, न हितकारक है, न कुटुम्ब है, न सुख है ॥५१॥ इस सम्यग्दर्शनसे सुशोभित चाण्डाल भी देवके समान है और विना सम्यग्दर्शनके साधु भी स्थान२ पर निन्दनीय गिना जाता है ॥ ५२ ॥

जो जीव सम्यग्दर्शनको पाकर दो घड़ीके लिये भी छोड़ देते हैं वे थोड़े दिन तक तो मोक्ष जानेसे रुक ही जाते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ५३ ॥ जिस भव्यके पास सम्यग्दर्शन है उसके हाथमें चिंतामणि रत्न समझना चाहिये तथा उसके घरमें कल्पवृक्ष समझना चाहिये और कामधेनु उसके पीछे पीछे चलनेवाली समझना चाहिये ॥ ५४ ॥ यह सम्यग्दर्शन इस संसारमें एक निधिके समान है और अत्यन्त सुख देनेवाला है इसलिये जिस भव्य जीवने इसको प्राप्तकर लिया उसने जन्म लेनेका फल पा लिया ॥ ५५ ॥

यदि सम्यग्दर्शन न हो तो साधु होकर भी यह मनुष्य वृक्षके समान ही समझना चाहिये क्योंकि जिस प्रकार वृक्ष अकेला रहता है उसी प्रकार वह साधु भी अकेला रहता है। वृक्ष हिंसा नहीं करता वह साधु भी हिंसा नहीं करता, वृक्ष भी वनमें रहता है, साधु भी वनमें रहता है और वृक्ष भी शीत, उष्ण आदिकी बाधायें सहता है, साधु भी शीत, उष्ण आदिकी बाधाएं सहता है इसलिये जिस प्रकार वृक्षको मोक्ष प्राप्त नहीं होता उसी प्रकार सम्यग्दर्शन रहित साधुको

भी मोक्ष प्राप्त नहीं होता ॥ ५६ ॥ सम्यग्दर्शनके विना यह मनुष्य दान पूजा व्रत आदि जो कुछ पुण्यकर्म करता है वह सब व्यर्थ हो जाता है ॥ ५७ ॥ विना सम्यग्दर्शनके यह मनुष्य एकादिवार व्रत दान आदि करता है परन्तु उसके फलस्वरूप थोडेसे भोग पाकर फिर वह सदा इस संसाररूपी वनमें परिभ्रमण किया करता है ॥ ५८ ॥

इस सम्यग्दर्शनके बलसे मुनिराज जिन कर्मोंको क्षणभरमें नष्ट कर देते हैं उनको विना सम्यग्दर्शनके घोर और तीव्र तपश्चरण करने पर भी नष्ट नहीं कर सकते ॥ ५८ ॥ सम्यग्दर्शनसे सुशोभित होनेवाला गृहस्थधर्म ही अच्छा क्योंकि सम्यग्दर्शन सहित गृहस्थधर्म व्रत दान आदि शुभ कार्योंसे परिपूर्ण होता है और भावि मोक्षका कारण होता है ॥ ६० ॥ सब तरहके परिग्रहोंसे रहित और व्रतोंसे सुशोभित ऐसा मुनियोंका अरहंतोंके समान निर्ग्रंथ रूप यद्यपि देवोंके द्वारा पूज्य होता है तथापि विना सम्यग्दर्शनके वह प्रशंसनीय नहीं गिना जाता ॥ ६१ ॥

जो जीव सम्यग्दर्शनसे भ्रष्ट हैं वे तीनों लोकोंमें भ्रष्ट हैं क्योंकि विना सम्यग्दर्शनके वे किसी समयमें भी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते ॥ ६२ ॥ परंतु जो जीव सम्यग्दर्शनसे सुशोभित हैं और चारित्र आदिसे रहित हैं वे किसी समय भी संयमको पाकर अवश्य मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ ६३ ॥ जिस प्रकार नेत्रहीन मनुष्य रूपको नहीं जान सकता उसी प्रकार सम्यग्दर्शन रहित जीव भी न देवको जान सकता है, न धर्म अधर्मको जानता है और न गुण अवगुणोंको जान सकता है ॥ ६४ ॥

जिसप्रकार प्राणरहित शरीरको लोग मृतक कहते हैं उसी प्रकार सम्यग्दर्शन रहित मनुष्य चलता फिरता हुआ जीवित होकर भी मृतक

कहलाता है ॥ ६५ ॥ सम्यग्दर्शनके साथ साथ केवल नमस्कार करने मात्रका ज्ञान होनेपर वह जीव सम्यग्ज्ञानी कहलाता है ऐसा श्री गौतम आदि गणधरोंने कहा है ॥ ६६ ॥ परन्तु ग्यारह अंगोंको जानने वाला मुनि भी विना सम्यग्दर्शनके अभव्यसेन मुनिके समान चतुर पुरुषोंके द्वारा सदा अज्ञानी कहलाता है ॥ ६७ ॥

हे भव्य जीव ! यह सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रका बीज वा कारण है, मोक्षके सुख देनेवाला है, अमूल्य है और उपमा रहित है इसलिये सुख प्राप्त करनेके लिये इसे अवश्य धारण करना चाहिये ॥ ६८ ॥ जिन्होंने स्वप्नमें भी सम्यग्दर्शनको पाकर अनेक नयोंके द्वारा अपने ही पास रख लिया है वे ही मनुष्य संसारमें धन्य हैं, पूज्य है, वन्दनीय हैं, प्रशंसनीय हैं और वे ही विद्वानोंमें सर्वोत्तम विद्वान् हैं ॥ ६९ ॥ इस सम्यग्दर्शनके प्रभावसे यह जीव नीच कुल और नीच गतिको छोड़कर श्रेष्ठ देव तथा मनुष्य होकर मुक्तिलक्ष्मीका स्वामी ही होता है ॥ ७० ॥

प्रश्न—हे स्वामिन् ! सम्यग्दृष्टि पुरुष किस किस नीच गतिको और किस किस नीच कुलको प्राप्त नहीं होता सो मैं आपसे सुनना चाहता हूं ॥ ७१ ॥

उत्तर—हे मित्र ! चित्त लगाकर सुन, मैं अब सारभूत सुखकी खानि ऐसे इस सम्यदर्शनकी महिमा कहता हूं ॥ ७२ ॥ जो विद्वान् शुद्ध सम्यग्दर्शनसे सुशोभित हैं वे चाहे व्रत धारण न भी करें तो भी वे नरकगति और तिर्यंच गतिमें उत्पन्न नहीं होते, स्त्री पर्याय तथा नपुंसक पर्यायको धारण नहीं करते, खोटे कुलमें उत्पन्न नहीं होते, बहिरे, गंजे, गूँगे, बौने, अन्धे नहीं होते, दरिद्री नहीं होते, उनकी आयु थोड़ी नहीं होती, उनका शरीर विकृत नहीं होता, उन्हें कभी

शोक वा भय नहीं होता, वे कुरूप नहीं होते, निन्दनीय नहीं होते, दास नहीं होते, दुष्ट नहीं होते और मूर्ख नहीं होते ॥ ७३–७५ ॥

जिन जीवोंके पास यह सम्यग्दर्शनरूपी महारत्न विराजमान है वे जीव उद्यम आदि अनेक गुणोंसे सुशोभित होते हैं, तेजस्वी और स्वज्ञान विज्ञानके पारगामी होते हैं, वे वज्रसंहनन (वज्रवृषभनाराच) वाले होते हैं, चतुर होते हैं, बड़े बलवान और बड़े उदार होते हैं, वे यशस्वी होते हैं, अनेक लोगोंके स्वामी होते हैं, धन धान्य आदि विभूतियोंसे परिपूर्ण होते हैं. समस्त शत्रुओंको वश करनेवाले, चारों पुरुषार्थोंको उत्तम रीतिसे प्राप्त करनेवाले और धर्म, अर्थ कामको सिद्ध करनेवाले होते हैं। ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव अनेक प्रकारकी महिमासे सुशोभित होते हैं. वे समस्त इन्द्रियोंके सुखरूपी महासागरमें डूबे रहते हैं और बड़े धर्मात्मा होते हैं ॥ ७६–७८ ॥

इस सारभूत सम्यग्दर्शनके प्रभावसे जो पुण्य प्राप्त होता है उसके फलसे यह जीव यदि परलोकमें मनुष्य भवमें जन्म लेगा तो बड़े कुलमें जन्म लेगा ॥ ७९ ॥ इस सम्यदर्शनके प्रभावसे ही चक्रवर्तीकी विभूति प्राप्त होती है जिसमें चौदह महारत्न प्राप्त होते हैं, छह खण्ड पृथ्वीका राज्य प्राप्त होता है, सारभूत नौ निधियां प्राप्त होती हैं, विद्याधर आदि अनेक राजा उसकी सेवा करते हैं, सेना आदि छह प्रकारका बल प्राप्त होता है, समस्त पृथ्वीके स्वामीपनेको सूचित करनेवाला एक छत्र उसके मस्तक पर फिरा करता है और देव लोग भी उसकी पूजा किया करते हैं ॥ ८० ॥

इस सम्यग्दर्शनको धारण करनेवाले परम सुखी उत्तम विद्वान् मनुष्योंको तीर्थंकरकी परम विभूति प्राप्त होती हैं, जिसमें पंच कल्याणक प्राप्त होते हैं, इन्द्रादि सब देव उन्हें वंदना करते हैं, तीनों

लोकोंमें क्षोभ हो जाता है, धर्मचक्र उनकी अलग ही शोभा बढ़ाता है और उन्हें अनन्त महिमा प्राप्त होती है ॥ ८१-८२ ॥ सम्यग्दर्शनके प्रभावसे यह जीव भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंमें उत्पन्न नहीं होता तथा कल्पवासियोंमें भी किल्विषक, आभियोग आदि नीच देव कभी नहीं होता ॥ ८३ ॥ जीवादिक पदार्थोंमें यथार्थ श्रद्धा रखनेवाले सम्यग्दृष्टि पुरुष स्वर्गोंमें भी इन्द्र होते हैं वहां पर उन्हें अणिमा महिमा आदि आठों ऋद्धियां प्राप्त होती हैं, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान तीनों ज्ञान प्राप्त होते हैं, उनका शरीर अत्यन्त दिव्य होता है, वे धीरवीर होते हैं समस्त आभरणोंसे सुशोभित होते हैं, केवल मानसिक अमृताहारसे सदा तृप्त रहते हैं, रोग क्लेश आदि दुःखोंसे सदा रहित होते हैं, दिव्य माला और दिव्य वस्त्रोंसे सदा सुसज्जित रहते हैं और मेरुपर्वतके समान सदा निष्कंप अचल रहते हैं। वे इन्द्र अपने उच्छ्वाससे समस्त दिशाओंको सुगन्धित करते रहते हैं, उनके शरीर पर सुन्दर लक्षण रहते हैं, उनका शरीर धातु उपधातुओंसे रहित होता है, उनके नेत्रोंकी टिमकार नहीं लगती, वे बडे रूपवान और शुभ हृदयके होते हैं। उनके नख केश नहीं बढ़ते, दिव्य स्त्रियोंके भोगोंसे सदा सुखी रहते हैं, सब देव उनको नमस्कार करते हैं इस प्रकार वे देवोंकी सभामें विराजमान होकर आनंद किया करते हैं, गीत नृत्य आदि सुख देनेवाले कार्योंमें आसक्त रहते हैं और सुख-सागरमें सदा डूबे रहते हैं ॥ ८४-८८ ॥

हे मित्र ! बहुत कहनेसे क्या लाभ है, थोडेसेमें इतना समझ लेना चाहिये कि स्वर्गलोकमें और मनुष्यलोकमें जो कुछ उत्तमसे उत्तम सुख हैं वे सब सम्यग्दृष्टी जीवोंको ही प्राप्त होते हैं ॥ ८९ ॥ यह विधि पूर्वक ग्रहण किया हुआ सम्यग्दर्शन ही समस्त शास्त्रोंका

सर्वस्व है, यही सिद्धांतका जीवन है और यही मोक्षरूपी वृक्षका बीज है ॥ ९० ॥ इस संसारमें कितने ही सम्यग्दृष्टी भव्य तो ऐसे हैं जो पहले सुख देनेवाले स्वर्गोंमें देव होते हैं फिर वहांसे आ मनुष्य होकर संयम धारण कर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं तथा भगवान जिनेन्द्र-देवके भक्त कितने ही भव्य ऐसे हैं जो मनुष्य और देवोंके सुख भोगकर सात आठ भवके बाद मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ ९१-९२ ॥

इस संसारमें सम्यग्दृष्टी जीवोंको सुख देनेवाली देवगति अथवा मनुष्यगतिको छोड़कर और कोई गति नहीं होती है ॥ ९३ ॥ जो बुद्धिमान् इस सम्यग्दर्शनको अतिचार रहित पालन करता है उसके लिये मोक्ष अपने आप आजाती है फिर भला उसके लिये स्वर्गके सुखोंकी तो बात ही क्या है ॥ ९४ ॥

प्रश्न—हे प्रभो ! कृपाकर मेरे लिये सम्यग्दर्शनके उन सब अतीचारोंका निरूपण कीजिये जिससे उनका त्याग कर देनेपर आज ही मेरा सम्यग्दर्शन निर्मल होजाय ! ॥ ९५ ॥

उत्तर—हे वत्स ! हे श्रावकोत्तम ! तू अपने चित्तको अपने वशमें करके सुन, अब मैं सम्यग्दर्शनको मलिन करनेवाले अतिचा-रोंका त्याग करनेके लिये कहता हूं ॥ ९६ ॥ शंका, आकांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टि प्रशंसा और अन्यदृष्टि संस्तव ये पांच सम्यग्दर्श-नके अतिचार गिने जाते हैं ॥ ९७ ॥ जो अज्ञानी तीर्थंकरोंमें, गुरुओंमें, शास्त्रोंमें, श्रेष्ठ तत्त्वोंमें और अहिंसामय उत्तम धर्ममें शंका करता है उसके शंका नामका पहिला अतिचार लगता है ॥ ९८ ॥ जो बुद्धिहीन चारित्र पालन कर अथवा और भी कोई धर्मकार्य कर फिर उससे इस लोक सम्बन्धी अथवा परलोक सम्बन्धी भोगोंकी इच्छा करता है वह आकांक्षा दोषका भागी होता है ॥ ९९ ॥

जो मुनियोंके मलिन अथवा रोगी शरीरको देखकर घृणा करता है वह सम्यग्दर्शनके विचिकित्सा नामक दोषको प्राप्त होता है ॥ १०० ॥ मिथ्यादृष्टि, कुतपसी, मिथ्याज्ञानी अथवा मिथ्या व्रतोंको पालन करने-वालेकी जो प्रशंसा करता है, उन्हें मनमें अच्छा प्रशंसनीय समझता है, उसके सम्यग्दर्शनका अन्य दृष्टिप्रशंसा नामका अशुभ अतिचार लगता है ॥ १०१ ॥ जो बुद्धिहीन, मिथ्याज्ञानी अथवा मिथ्या-चारित्रवालोंकी वचनसे स्तुति करता है उसके अन्यदृष्टिसंसतव नामका सम्यग्दर्शनका पांचवा अतिचार लगता है ॥ १०२ ॥ जो मनुष्य इन पांचों अतिचारोंका त्यागकर निर्मल सम्यग्दर्शनको धारण करते हैं उनके लिये इन तीनों लोकोंमें ऐसा कौनसा पदार्थ है जो प्राप्त न हो सके अर्थात् उनके लिये इस संसारमें अलभ्य पदार्थ कोई नहीं है ॥ १०३ ॥

इस सम्यग्दर्शनके प्रभावसे मुनियोंको मोक्षका वह सुख प्राप्त होता है जो स्वजन परिजनोंके सुखसे पारगंत है, शरीरादिके दुःखोंसे रहित है, उपमा रहित है, सारभूत है, संसारसे पारंगत है. ज्ञाना-वरणादि सब शत्रुओंसें रहित है और सब तरहकी बाधाओंसे दूर है ॥ १०४ ॥ यह सम्यग्दर्शन समस्त सुखोंका निधि है, स्वर्ग मोक्षका एक अद्वितीय कारण है, नरकरूपी घरको बन्द कर देनेके लिये किवाड़ोंके समान है, कर्मरूपी हाथीके लिये सिंह है, पापरूपी वनके लिये कुल्हाडी है, समस्त सुखोंकी खानि है और सब तरहकी शंका-ओंसे रहित है। हे वत्स ! ऐसे इस सम्यग्दर्शनको तू धारण कर ॥ १०५ ॥

हे मित्र ! यह सम्यग्दर्शन कर्मरूपी पर्वतको चूर चूर करनेके लिये वज्रके समान है, दुःखरूपी दावानल अग्निको शांत करनेके

लिये मेघकी धाराके समान है, मोक्षके सारभूत सुखको देनेवाला है और अनेक गुणोंका घर है अतएव मोक्ष प्राप्त करनेके लिये तू इसे धारण कर ॥ १०६ ॥ यह सम्यग्दर्शन मोक्ष-सुख देनेवाले एक सर्वोत्तम कल्पवृक्षके समान है। भगवान जिनेन्द्रदेवमें श्रद्धा रखना ही इसकी जड़ है, जीवादिक तत्वोंपर श्रद्धा न रखना इसका स्कंध वा पींड है, निःशंकित आदि समस्त गुणरूपी जलके सींचनेसे यह बढ़ता है, चारित्र ही इसकी शाखाएं हैं, समस्त समितियां ही इसके पत्ते और फूल हैं उनके भारसे यह नम्र हो रहा है और मोक्ष-सुख ही इसका फल है। इस प्रकार यह सम्यग्दर्शनरूपी वृक्ष सर्वोत्तम कल्पवृक्ष है ॥ १०७ ॥

यह सम्यग्दर्शन सबमें सारभूत है, समस्त गुणोंका घर है और उपमा रहित है, ऐसे इस सम्यग्दर्शनको जिन्होंने धारण कर लिया है इस संसारमें वे ही पुरुषोत्तम धन्य हैं, वे ही पुण्यवान हैं, वे ही तीनों लोकोंमें पूज्य हैं, सार असारके विचार करनेमें वे ही सबसे अधिक चतुर है और वे ही पापरूप शत्रुओंको सर्वथा नाश करनेवाले हैं। ऐसे मनुष्य, देव और मनुष्योंके सर्वोत्तम सुखोंका अनुभव कर अंतमें अवश्य ही मोक्षमें जा विराजमान होते हैं ॥ १०८ ॥

इस प्रकार आचार्यश्री सकलकीर्ति विरचित प्रश्नोत्तर श्रावकाचारमें सम्यग्दर्शनके दोष और उसके माहात्म्यको वर्णन करनेवाला यह ग्यारहवां सर्ग समाप्त हुआ।

बारहवां सर्ग ।

जो तीनों लोकोंमें पूज्य हैं, पूजाके योग्य हैं और राग द्वेषसे सर्वथा रहित हैं ऐसे श्री वासुपूज्य भगवानको मैं उनके गुणसमूह प्राप्त करनेके लिये नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ यहां तक सम्यग्दर्शनका व्याख्यान हो चुका है अब भव्य जीवोंका उपकार करनेके लिये ग्यारह प्रतिमाओंका वर्णन करता हूँ ॥ २ ॥ उन ग्यारह प्रतिमाओंमें भी मैं सबसे पहिले सर्वोत्तम दर्शन प्रतिमाको कहता हूँ । इस दर्शन-प्रतिमामें सम्यग्दर्शमके साथ साथ आठ मूलगुणोंका पालन किया जाता है ॥ ३ ॥ जो सम्यग्दर्शनके साथ साथ आठ मूल्यगुणोंका पालन करता है और सातों व्यसनोंका त्याग करता है उस पुरुषको श्री जिनेन्द्रदेव दर्शनिक अथवा दर्शन प्रतिमावाला कहते हैं ॥ ४ ॥

प्रश्न—हे स्वामिन् ! आज आप कृपाकर मेरे लिये आठ मूल-गुण और सातों व्यसनोंका स्वरूप वर्णन करिये ॥ ५ ॥

उत्तर—हे मित्र ! तेरा हृदय ज्ञान और वैराग्यसे सुशोभित है इसलिये उसको और भी निर्मल बनाकर सुन । अब मैं तेरे लिये आठों मूलगुणोंको कहता हूं ॥ ६ ॥ मद्य मांस मधुका त्याग और पांचों उदम्बरोंका त्याग ही श्री जिनेन्द्रदेवने गृहस्थोंके आठ मूलगुण बतलाए हैं ॥ ७ ॥ हे मित्र ! यह मद्य अनेक त्रस जीवोंसे भरा हुआ है, धर्म कर्मको नाश करनेवाला है और बुद्धिको नष्ट कर देनेवाला है इसलिये धर्मकी इच्छा रखनेवालोंको इसका दूरसे ही त्याग कर देना चाहिये ॥ ८ ॥

जो मद्यपान करता है वह चतुर पुरुषोंके द्वारा सदा निन्दनीय गिना जाता है, जिस समय वह मद्य पीकर वेहोश होकर मुँह फाड़कर

पड़ जाता है तो उस समय कुत्ते भी उसके मुंहमें मूत जाया करते हैं और वह मूतको बड़े मजेसे चाटा करता है, हाय हाय! ऐसे जीवनको भी धिक्कार है ॥ ९ ॥ जो जीव इस जन्ममें मद्य पीते हैं वे मरकर नरकमें पड़ते हैं और वहांपर अन्य नारकी उनका मुंह फाड़कर जबर्दस्ती उनके मुंहमें तपाया हुआ गला हुआ तावेका पानी डालते हैं ॥ १० ॥

जो मूर्ख मद्यपानका त्याग किये विना ही धर्म धारण करना चाहते हैं वे विना पैरोंके ही मेरु पर्वतपर चढ़ना चाहते हैं ॥ ११ ॥ यह मद्यपान नरक निगोद आदि कुगतियोंको प्राप्त करानेवाला है, असार है, बुद्धिको नष्ट करनेवाला है, नरकको ले जानेका एक मार्ग है, पाप और दुःखोंकी जड़ है, व्याकुलता उत्पन्न करनेवाला है और धर्मरूपी वृक्षको जलानेके लिये दावानल अग्निके समान है, इसलिये हे वत्स! धर्मकी प्राप्तिके लिये तू इस निंद्य मद्यपानका त्याग कर ॥ १२ ॥

इसी प्रकार मांस भी महा निंद्य है, जीवोंकी हिंसासे उत्पन्न होता है और अनेक पापोंकी खानि है इसलिये इसे केवल मूर्ख लोग ही सेवन करते हैं। विवेकी पुरुष दूरसे ही इसका त्याग कर देते हैं ॥ १३ ॥ देख, जो दुष्ट विना किसी कृपा वा दयाके जीवोंको मारकर मांस खाते हैं वे वैरभावका संस्कार हो जानेके कारण परलोकमें उन्हीं जीवोंके द्वारा मारे जाते हैं ॥ १४ ॥ जो नीच केवल स्वादसे ठगे जानेके कारण मांस खाते हैं वे अनेक दुःखोंसे भरे हुए संसाररूपी महासागरमें अवश्य डूबते हैं ॥ १५ ॥

जो मूर्ख मांसभक्षणका तो त्यागकर नहीं सकते और धर्म धारण करना चाहते हैं वे विना नेत्रोंके नाटक देखना चाहते हैं ॥ १६ ॥ यह मांससेवन नरकके दुःख देनेवाला है, असार है, पापरूप वृक्षकी

जड़ है, अनेक प्रकारके जीवसमूहोंसे भरा हुआ है, उसके छूने मात्रसे ही अनन्त जीवोंका घात होता है, इसीलिये धार्मिक सज्जन लोग विषके समान इसका त्याग कर देते हैं। यह पापरूप है और कुगतिका वीज है, इसलिये हे वत्स! धर्म धारण करनेके लिये तू इसका त्याग कर ॥ १७ ॥

यह मधु वा शहत भी अनेक त्रस जीवोंके उत्पन्न होनेका स्थान है, और मक्खियोंका वमन किया हुआ उच्छिष्ठ है इसीलिये इसका सेवन करना अनेक पाप और दुखोंको उत्पन्न करनेवाला है, निंद्य है और अपवित्र है। बुद्धिमानोंको दूरसे ही इसका त्याग कर देना चाहिये ॥ १८ ॥ जो अज्ञानी रोग आदिको दूर करनेके लिये भी शहतको काममें लाता है वह अनेक रोगोंका पात्र होकर नरकादि दुर्गतियोंमें प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ जो मूर्ख मद्य और मांसके समान शहतको खाता है मद्य मांस आदि सबका सेवन करता है और अनेक दुर्गतियोंमें प्राप्त होता है, क्योंकि शहतमें असंख्य जीव रहते हैं॥२०॥

जो मूर्ख मधुके सेवन करनेसे रोगोंका नाश करना चाहते हैं वे अवश्य ही तेलसे अग्निको बुझाना चाहते हैं ॥ २१ ॥ हे मित्र! यह शहत अनेक छोटे छोटे कीड़ोंसे भरा हुआ है, अनेक चौन्द्रिय जीवोंके घातसे उत्पन्न होता है, इसका सेवन करना अनेक दुर्गतियोंका कारण है, सज्जन लोगोंके द्वारा स्पर्श करने योग्य भी नहीं है, यह समस्त पापोंकी खानि है, क्लेश व्याधियोंकी जड़ है और अत्यन्त अपवित्र है। हे मित्र! सुख प्राप्तकरनेके लिये तू इसका त्याग कर ॥ २२ ॥

इसी प्रकार विवेकी पुरुषोंको उदंबर फलोंका त्याग भी कर देना चाहिये, क्योंकि ये भी अनेक सूक्ष्म जन्तुओंसे भरे रहते हैं इसलिये इनके सेवन करनेसे नरकादिकके अनेक दुःख प्राप्त होते

हैं ॥ २३ ॥ जो मूर्ख दुर्भिक्ष आदि पडनेपर भी अनेक कीडोंसे भरे हुए इन फलोंको खाता है वह अनेक जीव–राशिका नाश करदेनेके कारण नरक वा तिर्यंच गतिमें ही जन्म लेता है ॥ २४ ॥ इसलिये प्राणोंका त्याग कर देना अच्छा परन्तु भारीसे भारी दरिद्रता पडनेपर भी असंख्यात जीवोंसे भरे हुए पांचों उदंबरोंका सेवन करना अच्छा नहीं ॥ २५ ॥

हे मित्र ! तू धर्मकी प्राप्तिके लिये इन वड, पीपल, ऊमर (गूलर) कठूमर (अंजीर), पाकर पांचों उदंबर फलोंका त्यागकर, क्योंकि मांसके समान इसे भील आदि नीच लोग ही सेवन करते हैं ॥ २६ ॥ हे वत्स ! वट, पीपल आदि पांचों उदंबरोंका सेवन करना नरकमें ले जानेका कारण है; दुःख और दरिद्रताको उत्पन्न करनेवाला है, और सर्वोतम मोक्ष–सुखका शत्रु है। ये पांचों फल अनेक सूक्ष्म जीवोंसे भरे रहते हैं, और नीच लोगोंके द्वारा ही सेवन किये जाते हैं इसके सिवाय ये पापकी जड़ है। इसलिये हे मित्र ! धर्मकी प्राप्तिके लिये तू इनका भी त्याग कर ॥ २७ ॥ जो मनुष्य श्रेष्ठ नियम लेकर इन आठों मूलगुणोंका पालन करते हैं वे अवश्य ही स्वर्गसुखको प्राप्त होते हैं ॥ २८ ॥

ये आठों मूलगुण आगे कहे हुए बारह व्रतोंके मूल कारण हैं, और बारह व्रतोंके पहिले धारण किये जाते हैं तथा स्वर्गादिकके सुख देनेवाले हैं, इसलिये जिनेन्द्र भगवान इनको मूलगुण कहते हैं ॥ २९ ॥ जो मनुष्य धर्मकी जड़रूप इन मूलगुणोंको भी धारण नहीं कर सकते वे अनेक प्रकारके पापोंका संग्रहकर संसार महासागरमें डूबते हैं ॥३०॥ इसलिये वे बुद्धिमान ! आगे कहे हुए व्रतोंको पालन करनेके लिये और स्वर्ग मोक्षके सुख प्राप्त

करनेके लिये इन आठों मूलगुणोंको चित्त लगाकर पालन कर ।।३१।।

इस प्रकार पहिले मूलगुणोंका व्याख्यान किया ।

अब हे श्रावक ! धर्मकी सिद्धिके लिये सातों व्यसनोंको कहता हूं ।। ३२ ।। जूआ खेलना, मांस खाना, मद्यपान करना, वेश्यासेवन करना, शिकार खेलना, चोरीकरना और परस्त्रीसेवन करना ये सात व्यसन कहलाते हैं । ये सातों व्यसन पापोंकी जड़ हैं इसलिये हे भव्य ! तू इनका त्याग कर ।। ३३ ।। जो दुष्ट मनुष्य इस संसारमें जूआ खेलते हैं वे संसारमें अपनी अपकीर्ति फैलाते हैं, उनके द्रव्यका नाश होता है और अन्तमें नरकमें पडते हैं ।। ३४ ।। सातों व्यसन इस जूआ खेलनेसे ही उत्पन्न होते हैं, इसलिये जो जूआ खेलता है उसे समस्त व्यसनोंके सेवन करनेका ही फल प्राप्त होता है ।।३५।।

अरे जिस जूआके खेलनेसे राजा युधिष्ठिर जैसे नष्ट होगये फिर भला जूआ खेलनेवाले अन्य साधारण लोग किस प्रकार दुःखी नहीं हो सकते अर्थात् अवश्य होते हैं ।। ३६ ।। जूआ खेलनेवालोंको जो पाप लगता है तथा भव भवमें जो पाप उन्हें लगता है और जो वध बंधन आदिके दुख भोगने पड़ते हैं उन्हें कौन कह सकता है ? अर्थात् वे पाप और दुःख किसीसे कहे भी नहीं जा सकते ।।३७।।

यह जूआ खेलना पापोंके बनको बढ़ानेके लिये मेघकी धारोंके समान है, दुःख और दरिद्रताका मुख्य कारण है, नरकरूपी घरमें ले जानेवाला है, मोक्षमहलके लिये किवाड़ जुड़ देनेवाला है, समस्त व्यसनोंका मूल कारण है और सदा कालतक अपकीर्तिका कारण है इसलिये हे मित्र ! तू धर्म प्राप्त करनेके लिये कुगतियोंमें डालनेवाले इस जूआका त्यागकर ।। ३८ ।।

इसी प्रकार मांस भी जीवोंके घात होनेसे उत्पन्न होता है,

नरक और तिर्यंचगतिके अनेक दुःख देनेवाला है, निंद्य है, पापकी खानि है, इसलिये हे भ्रात! इसका भी तू त्याग कर ॥ ३९ ॥ मद्य भी अनेक सूक्ष्म जीवोंसे भरा हुआ है, विवेक और बुद्धिको नाश करनेवाला है, अनेक पापोंको बढ़ानेवाला है और धर्मका ध्वंस करनेवाला है इसलिये सुख प्राप्त करनेके लिये इस मद्यका भी त्याग कर ॥ ४० ॥

यह वेश्या मद्य मांस आदिमें सदा आसक्त रहती है, चांडाल आदिकोंमें भी लँपट रहती है, और सदा अपकीर्ति देनेवाली है। इसलिये हे मित्र! सर्पिणीके समान इस वेश्याको तू दूरसे ही छोड़ ॥ ४१ ॥ शिकार खेलनेमें भी अनेक जीवोंकी हिंसा होती है। हिंसासे पाप, दुःख और दुर्गतियां प्राप्त होती हैं तथा अनेकवार वध बंधन आदिके दुःख सहने पड़ते हैं, इसलिये इस शिकारको भी दूरसे त्याग कर ॥ ४२ ॥ चोरी करनेसे कभी मर जाना पड़ता है, कभी शरीर काटा जाता है, बंधनमें पड़ना पड़ता है तथा और भी अनेक प्रकारके दुःख तथा दरिद्रता प्राप्त होती है। इसके सिवाय चोरी करनेसे दूसरोंको सदा दुःख पहुंचाना पड़ता है। इसलिये हे वत्स! इस चोरीको भी तू छोड़ ॥ ४३ ॥ परस्त्री सेवन सब दुःखोंकी खानि है, पापकी वेल है भय अपकीर्ति देनेवाली है और नरककी देहली है इसलिये परस्त्रीसेवन करना भी सर्वथा छोड़ देना चाहिये ॥ ४४ ॥

इन व्यसनोंमेंसे एक एक व्यसनको सेवन करनेवाले अनेक जीव नष्ट हो चुके हैं फिर भला जो समस्त व्यसनोंमें आसक्त है वह क्यों दुःखी नहीं हो सकता? अर्थात् वह अवश्य महादुःखी होगा ॥४५॥ जूआके खेलनेसे राजा युधिष्ठिरको अनेक प्रकारके दुःख प्राप्त हुए थे, उन्हें राज्यसे भ्रष्ट होना पड़ा था, निर्जन वनमें निवास करना पड़ा

था और फिर भारी युद्ध करना पड़ा था ॥४६॥ मांस सेवन करनेसे राजा बकको इस लोकमें ही राज्यभ्रष्ट होना पड़ा था, अपने राज्यसे हाथ धोना पड़ा था और अन्तमें इस अपार संसारसागरमें मग्न होना पड़ा था ॥४७॥ मद्यपानके सेवन करनेसे कुमार्गगामी राजपुत्र यादव अनेक दुःखोंको पाकर इसी लोकमें प्राण नाशको प्राप्त हुये थे॥४८॥

वेश्यासेवनसे सेठ चारुदत्तको कितने दुःख भोगने पड़े थे, उनका सब द्रव्य नष्ट हो गया था और अन्तमें उन्हें विष्टामें फेंक दिया गया था ॥ ४९ ॥ शिकार खेलनेसे राजा ब्रह्मदत्तको बहुतसे दुःख भोगने पड़े थे और अन्तमें संसाररूपी महासागरमें परिभ्रमण करनेका महा घोर दुःख भोगना पड़ा था ॥ ५० ॥ चोरी करनेसे शिवभूतिको घोर और असह्य दुःख भोगने पड़े थे, तथा इस लोकमें भी वध बंधन आदिके अनेक दुःख भोगने पड़े थे ॥५१॥ सीताका हरण करने मात्रसे ही तीन खण्डके स्वामी रावणकी संसारभरमें अपकीर्ति हुई थी, उसका राज्य नष्ट हुआ था, उस कुमार्गगामीको मारना पडा था, और अन्तमें नरक जाना पड़ा था ॥ ५२ ॥

ये सब एक एक व्यसनमें आसक्त होनेवालोंके नाम हैं इन सबकी कथा संवेग बढ़ानेवाली है और पापोंसे डरानेवाली है इसलिये अन्य शास्त्रोंसे अवश्य जान लेनो चाहिये ॥ ५३ ॥ इन व्यसनोंमें आसक्त हो जानेके कारण और भी बहुतसे लोग नष्ट हुए हैं, उन सबकी कथाओंको तीनों लोकोंमें कोई कह भी नहीं सकता ॥५४॥ एक एक व्यसनके सेवन करनेसे कितने ही जीवोंको अनेकवार नरकोंमें जाना पड़ा है, फिर भला जो सातों व्यसनोंका सेवन करते हैं वे भला नरकसे कैसे बच सकते हैं ॥ ५५ ॥

जो मनुष्य इन व्यसनोंको विना छोड़े ही धर्म धारण करनेकी

इच्छा करता है वह मूर्ख विना पैरोंके ही मेरुपर्वतपर चढ़ना चाहता है ॥ ५६ ॥ इस संसारमें सात ही नरक हैं और सात ही व्यसन हैं इसलिये जो जीव इन व्यसनोंमें आसक्त रहते हैं वे अवश्य ही नरकोंमें पड़ते हैं ॥ ५७ ॥ पापरूपी राजाने धर्मरूपी शत्रुको नाश करनेके लिये और अपना स्वराज्य सुदृढ़ करनेके लिये इन सातों व्यसनोंको सेनाके समान स्थापन कर रक्खा है ॥ ५८ ॥

ये सातों व्यसन अनेक दुर्गतियोंमें जन्म देनेवाले हैं, दुःख शोक आदिके मुख्य कारण हैं, पापरूपी वनको बढ़ानेके लिये मेघकी वर्षाके समान हैं, धर्मके शत्रु हैं, बुरी संगति देनेवाले हैं, परभवमें परिभ्रमण करानेवाले हैं और सब प्रकारकी दरिद्रताके मूल कारण हैं। इसलिये हे मित्र ! तू धर्म धारण करनेके लिये शत्रुके समान इन सातों व्यसनोंका त्याग कर ॥ ५९ ॥ जो बुद्धिमान् सम्यग्दर्शनके साथ साथ ऊपर कहे हुए आठों मूलगुणोंका पालन करता है और सातों व्यसनोंका त्याग करता है वह दार्शनिक अथवा दर्शन प्रतिमाको धारण करनेवाला कहलाता है ॥ ६० ॥ इस प्रकार सब प्रतिमाओंकी मूल कारण ऐसी दर्शनप्रतिमाका स्वरूप वर्णन किया।

अब आगे उत्तम व्रत प्रतिमाका निरूपण करते हैं ॥ ६१ ॥ पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ये गृहस्थोंके बारह व्रत कहलाते हैं ॥ ६२ ॥ स्थूल हिंसाका त्याग, स्थूल असत्यका त्याग, स्थूल चोरीका त्याग, स्थूल अब्रह्मका त्याग और स्थूल परिग्रहका त्याग, इस प्रकार हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह इन पांचों पापोंसे एकदेश विरक्त होना श्रावकोंके पांच अणुव्रत कहलाते हैं ॥ ६३ ॥ अपने हृदयको दया पालन करनेमें सदा तत्पर रखनेवाला जो मनुष्य मन, वचन, कायसे न तो कभी स्वयं त्रस जीवोंकी

हिंसा करता है न दूसरोंसे कराता है और न कभी त्रस जीवोंकी हिंसामें अनुमति देता है उसके सबसे पहिला अहिंसाणुव्रत होता है। यह अहिंसा अणुव्रत अन्य सब व्रतोंका मूल है ॥ ६४–६५ ॥

हे मित्र ! जीवोंके सब भेद पहिले बताये जा चुके हैं अतएव मोक्ष प्राप्त करनेके लिये अनेक प्रकारके भयोंसे भयभीत हुए समस्त जीवों पर तू प्रतिदिन दया कर ॥ ६६ ॥ श्री गणधरादि देवोंने इस अहिंसाको सब व्रतोंकी जननी वा माता बतलाया है, क्योंकि यह अहिंसा समस्त जीवोंकी सदा हित करनेवाली है, और माताके समान सबका कल्याण करनेवाली है ॥ ६७ ॥ मुनिराजोंने इस दयाको सब जीवोंकी कल्याणभूमि बतलाया है, यह दया सबको सुख देनेवाली है, सबमें सारभूत है और समस्त उत्तम गुणोंको देनेवाली है ॥ ६८ ॥ बुद्धिमान् लोग इस दयाको सब सुखोंकी निधि बतलाते हैं, स्वर्ग मोक्षरूपी घरमें जानेके लिये यह दया ही द्वारकी देहली है और यही समस्त संसारको सुख देनेवाली है ॥ ६९ ॥ दया पालन करनेमें अत्यंत चतुर पुरुषने निरूपण किया है कि यह दया ही रत्नत्रयकी खानि है, दया ही सम्यग्ज्ञान आदि श्रेष्ठ रत्नोंको उत्पन्न करनेवाली है और यही सबका हित करनेवाली है ॥ ७० ॥

श्री जिनेन्द्रदेवने वर्णन किया है कि श्रेष्ठ धर्मरूपी बागकी शोभा बढ़ानेके लिये, उसपर स्वर्ग-मोक्षके फल लगानेके लिये और दुःखरूपी उष्णता व अग्निको (संतापको) नष्ट करनेके लिये यह दया ही मेघकी वर्षाके समान है ॥ ७१ ॥ यह अहिंसा ही मुक्तिरूपी स्त्रीकी सखी है और वरके चित्तको प्रसन्न करनेवाली है, इसलिये सत्संगकी लालसा रखनेवाले मुनियोंको इस अहिंसाका सेवन अवश्य करना चाहिये ॥ ७२ ॥ इस अहिंसा व्रतकी रक्षाके लिये ही चतुर पुरुषोंने पांचों महाव्रतोंका

निरूपण किया है, पांचों समितियोंका निरूपण किया है और गुप्ति आदि सब व्रतोंका निरूपण केवल अहिंसा व्रतकी रक्षाके लिये ही किया है ॥ ७३ ॥

अनेक मुनिराजोंने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि मुनि और गृहस्थोंके समस्त व्रतोंके समूहका वर्णन केवल अहिंसा व्रतकी रक्षा वा प्रसिद्धिके लिये ही है ॥ ७४ ॥ जो बुद्धिमान इस एक अहिंसा नामके व्रतको ही प्रयत्नके साथ पालन कर लेता है उसके विना किसी कष्टके प्रतिदिन समस्त व्रतोंका पालन होजाता है ॥ ७५ ॥

जिसप्रकार विना अंकके अनन्त शून्य भी व्यर्थ होते हैं उसी प्रकार जो मनुष्य दयाको पालन किये विना ही तप व्रत आदि करना चाहता है उसका वह तप व्रत आदि सब व्यर्थ और निष्फल है ॥ ७६ ॥ जो बुद्धिमान् अपने हृदयमें दयाको सुदृढ बनाकर थोड़ासा भी तप करता है वह इस लोक और परलोकमें भी अनेक महाफलोंको प्राप्त होता है ॥ ७७ ॥ विना दयाके तप, धर्म, व्रत, ज्ञान, ध्यान, पूजा और गुण आदि सब व्यर्थ हैं। विना दयाके ये तप आदिक सब जीवोंके शरीरोंको केवल कष्ट पहुंचानेवाले हैं और इनसे कोई लाभ नहीं ॥ ७८ ॥ समस्त जीवोंको अभयदान देनेवाला और सबमें सारभूत ऐसा यह अहिंसा रूप एक व्रत ही अच्छा परंतु इसके विना समस्त व्रतोंका समुदाय भी जीवोंके लिये कल्याणकारी नहीं॥७९॥

जिस धर्मात्माका हृदय प्रतिदिन समस्त जीवोंपर होनेवाली कृपासे सुगंधित है, भरपूर है उसीको मैं (आचार्य) सबसे अधिक पुण्यवान् मानता हूं ॥ ८० ॥ जो धर्म दया रहित है, जो तप दया रहित है, और प्राणियोंका जो जीवन दया रहित है उस धर्म तप वा जीवनसे इस संसारमें कोई लाभ नहीं और न ऐसे दयाहीन धर्म,

तप वा जीवनसे कोई कार्यसिद्धि हो सकती है ॥ ८१ ॥ इस दयाके समान पूजा, दान, जप, तप, धर्म आदि कुछ नहीं हो सकता क्योंकि यह दया उन सबका बीज है, सबका मुख्य कारण है ॥ ८२ ॥

"जो जीवोंकी दयासे रहित है वह दुखोंके देनेवाला अधर्म है" यह बात सब शास्त्रोंमें और सब मतोंमें सुनी जाती है ॥ ८३ ॥ यह दयारूप धर्म ही समस्त शास्त्रोंका समस्त मतोंका सर्वस्व है, यही सजीव चारित्र है, यही धर्मरूपी वृक्षका मूल है और यही समस्त जीवोंका रक्षक है ॥ ८४ ॥ जो मूर्ख जीवोंकी हिंसाका संकल्प भी करते हैं वे उस पापकर्मके उदयसे तन्दुल* मत्स्यके समान नरकमें ही पड़ते हैं ॥ ८५ ॥

इस संसारमें जीवोंकी हिंसा करनेसे कास (खांसी), श्वास (दमा), महापित्त, वात, कोढ आदि अनेक बड़े बड़े महा रोग उत्पन्न होजाते हैं ॥ ८६ ॥ दयाके विना ही यह जीव इस लोकमें दीन होता है, निर्धन होता है, डरपोक होता है, थोड़ी आयुवाला होता है और दरिद्री होता है तथा परलोकमें भी ऐसे ही अनेक दुःखोंको प्राप्त होता है ॥ ८७ ॥

---

* स्वयंभूरमण समुद्रमें सबसे बड़ा राघवमत्स्य होता है उसकी आंखपर एक तन्दुलमत्स्य बैठा रहता है। राघवमत्य सबसे बड़ा है इसलिये उसके मुंह फाड़ते ही अनेक जीव उसके मुंहमें आजाते हैं और उनमेंसे बहुत सांसके साथ बाहर निकल जाते हैं। मन्दुलमत्स्य आंखपर बैठा हुआ यह सोचा करता है कि यह मत्स्य मूर्ख है जो इन छोटे मत्स्यको मुंहके भीतर आ जानेपर भी फिर बाहर जाने देता है, यदि मैं होता तो एकको भी बाहर न जाने देता—सबको खाजाता। बस सदाके इसी संकल्पसे वह मरकर सातवें नरक जाता है।

यह जीव प्राणियोंका घात करनेसे ही पुत्र, पौत्र, वहिन, स्त्री, माता-पिता और भाई आदिका तीव्र वियोग पाता है अर्थात् उनके वियोगसे उत्पन्न होनेवाले दुःखोंको भोगता है ॥८८॥ बहुत कहनेसे क्या लाभ है, थोड़ेमेंसे इतना समझ लेना चाहिये कि इस लोकमें वा परलोकमें जितने दुःख हैं वे सब प्राणियोंको दयाका त्याग करनेसे ही होते हैं ॥ ८९ ॥

जो नीच मनुष्य केवल रोग शांत करनेके लिये प्राणियोंका घात हैं उनके वात पित्त और महा कोढ़ आदि भयंकर रोग अवश्य उत्पन्न होते हैं ॥ ९० ॥ जो नीच अपना वा पुत्र पौत्रका कल्याण करनेके लिये जीवोंकी हिंसा करता है वह अनेक अमंगलोंको-दुःखोंको प्राप्त होता है तथा भयकर दुःख देनेवाले समस्त पापोंको प्राप्त होता है—अर्थात् उसके तीव्र पापकर्मोंका बन्ध होता है ॥ ९१ ॥ जो मूर्ख केवल धर्मपालन करनेके लिये जोवोंके समूह का घात करता है वह अपने जीवित रहनेके लिये मृत्यु देनेवाले हलाहल विषको पीता है ॥ ९२ ॥

जो अज्ञानी चण्डी मुंडी आदि देवियोंके बहानेसे जीवोंकी हिंसा करता है वह अपने दुःखोंको शान्त करनेके लिये अपने आप दुःख क्लेशादिकोंमें जा पड़ता है ॥ ९३ ॥ जो जीव नीच देवोंकी पूजा करनेके लिये अनेक जीवोंको मारता है वह मनुष्य अपने सुखके लिये अमृतको सर्पके मुखसे निकालना चाहता है ॥ ९४ ॥ इंद्रियभोगोंमें अत्यन्त लालसा रखनेवाले जो नीच अपने भोगोपभोगोंके लिये जीव-राशिका विनाश करते हैं—उन्हें मारते हैं वे महा दुःखी होते हैं, अत्यन्त कुरूप होते हैं और महा दरिद्री होते हैं ॥ ९५ ॥

जो नीच अपने पुत्र पौत्र और कुटुम्बकी वृद्धिके लिये पशुओंको

मारता है उसके सब कुटुम्बका नाश होता है और अन्तमें उसे अनेक दुर्गतियोंमें परिभ्रमण करना पड़ता है ॥ ९६ ॥ श्री जिनेन्द्रदेवने धर्मका स्वरूप अहिंसामय ही कहा है; क्योंकि समस्त जीवोंका कल्याण इसी अहिंसामय धर्मसे हो सकता है और इसी धर्मसे स्वर्ग-मोक्षके सुख प्राप्त हो सकते हैं ॥ ९७ ॥ परन्तु कुशास्त्रोंको पढ़नेवाले और इंद्रियोंके स्वादकी लालसा रखनेवाले मूर्ख लोगोंने असत्य भाषण करके झूठ बोल करके जीवोंको नाश करनेवाली हिंसाको ही धर्म बतला दिया है ॥ ९८ ॥ जो धूर्त लोग समस्त इंद्रियोंको तृप्त करनेवाले कुशास्त्रोंको दिखा दिखाकर लोगोंसे धन इकट्ठा करते हैं वे अंतमें मरकर अवश्य ही नरक गतिमें उत्पन्न होते हैं ॥ ९९ ॥

जिन दुष्टोंने केवल भोगोपभोगोंके लिये अपने शास्त्रोंमें अहिंसाका निरूपण किया है और जिन लोगोंने उसे स्वीकार किया है वे सब मरकर दुर्गतिमें उत्पन्न होंगे ॥ १०० ॥ जो स्वयं हिंसा करते हैं वा दूसरोंसे कराते हैं अथवा हिंसाको देखकर आनन्द मानते हैं वे सब उस पापसे नरकमें पड़ते हैं ॥ १०१ ॥ यदि कदाचित् दैवयोगसे सर्पके मुँहसे अमृत उत्पन्न होजाय अथवा रात्रिमें सूर्य दिखाई दे तथापि जीवोंकी हिंसासे कभी धर्म नहीं होसकता ॥१०२॥ यदि हिंसासे धर्म होता हो और स्वर्गादिकके सुख प्राप्त होते हों तो सदा शिकार खेलने-वाले म्लेच्छ लोगोंको भी स्वर्गकी प्राप्ति होनी चाहिये ॥ १०३॥

इसलिये हे बुद्धिमान ! हिंसाको छोड़कर तथा हिंसा आदिको पुष्ट करनेवाले शास्त्रोंको छोड़कर अहिंसारूप धर्मको स्वीकार कर और जीवोंपर सदा दया कर ॥ १०४ ॥

इसी अहिंसाको पालन करनेके लिये सब पानी उसी समय छानकर काममें लाना चाहिये। नहाना, कपड़े धोना, प्रक्षालन करना,

आदि सब काम उसी समयके छने हुए पानीसे करना चाहिये॥ १०५॥ जो विना छने पानीसे स्नान आदि भी करते हैं उनसे जीवोंकी हिंसा होती है और जीवोंकी हिंसा होनेसे उनका अहिंसा व्रत नष्ट होजाता है ॥ १०६ ॥

हे धीमन् ! पशुओंको भी छना हुआ पानी ही देना चाहिये क्योंकि विना छने पानीमें अनन्त जीवोंकी हिंसा होती है इसलिये वह पशुओंको देनेयोग्य नहीं है ॥ १०७ ॥ हे धीमन् ! तुझे जलसे जो२ कार्य करने पड़ें उन सब कामोंमें अपना धर्म धारण करनेके लिये छना हुआ पानी ही काममें ला ॥ १०८ ॥ जिस वस्त्रसे पानी छाना जाय वह मोटा होना चाहिये, चिकना होना चाहिये और नया होना चाहिये तथा जितना बड़ा वर्तनका मुँह हो उससे तिगुना होना चाहिये, ऐसे वस्त्रको दुहराकर फिर उससे जल छानना चाहिये॥ १०९॥

हे श्रावकोत्तम ! जिसमें कीड़े पड़ गये हों ऐसे उडद, मूँग आदि धान कभी नहीं खाना चाहिये । क्योंकि ऐसे धान्योंके खानेसे जीवोंकी हिंसा होती है इसलिये धर्म पालन करनेके लिये इनको छोड देना चाहिये ॥ ११० ॥ श्रावकोंको लकड़ी वा थप्पड आदिसे शत्रु, बालक, स्त्री अथवा कुत्ते आदि पशुओंको भी कभी नहीं मारना चाहिये ॥ १११ ॥ जो प्राणी अपने तथा दूसरोंके सुख दुःखादिकोंका विचार किये विना ही लकड़ा आदिसे अन्य जीवोंको मार देते हैं वे मनुष्य होकर भी राक्षसके समान हैं ॥११२॥

गृहस्थी लोगोंको अपना बैठना, सोना, चलना, आदि सब काम आंखोंसे देखकर प्रयत्न पूर्वक करने चाहिये जिससे किसी जीवकी हिंसा न होने पावे ॥ ११३ ॥ यदि जीवोंकी रक्षा करनेमें प्रयत्न न किया जाय तो विना किसी जीवकी हिंसा हुए भी व्रतका

भंग हो जाता है और व्रतका भंग होनेसे भवभवमें कर्मबंध होता है ॥ ११४ ॥ जो गृहस्थ अपना हृदय दया पालन करनेमें लगाता है उसके अज्ञानसे यदि किसी जीवकी हिंसा भी हो जाय तो भी न तो उसके व्रतका भंग ही होता है और न कर्मका बंध ही होता है ॥ ११५ ॥

इसका भी कारण यह है कि गौतमादि ऋषियोंने धर्मका पालन करना वा व्रतोंका पालन करना भावपूर्वक बतलाया हैं इसलिये बुद्धिमान लोगोंको जीवोंकी रक्षा करनेमें सदा अपने भाव लगाते रहना चाहिये ॥ ११६ ॥

उत्तम श्रावकोंको जीवराशिको क्षय करनेवाले प्रमादको छोड़कर घरमें प्रतिदिन होनेवाले पांचों पापोंमें (चक्की, उखली, चूली, बुहारी और पानी ये गृहस्थीके पांच सून वा पाप कहलाते हैं) जीवोंकी रक्षाका सदा प्रयत्न करना चाहिये ॥ ११७ ॥ व्रतोंकी रक्षाके लिये गृहस्थोंको अग्निके जलानेमें भी सबसे अधिक प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि अग्निके जलानेमें छहों कायके जीवोंकी हिंसा होती है ॥ ११८ ॥

इसी प्रकार जो एक अंजलिमात्र भी विना छना पानी पीता है और विना छने एक घडेसे भी नहाता है उसके पापोंको हम लोग जान भी नहीं सकते ॥ ११९ ॥ बुद्धिमान लोगोंको भगवान जिनेंद्रदेवकी पूजा, प्रक्षाल आदि करनेके लिये बहुत थोड़े छने जलसे देखभाल कर स्नान करना चाहिए ॥ १२० ॥ बहुत कहनेसे क्या, थोड़ेसेमें इतना समझ लेना चाहिए कि विद्वान् लोगोंको व्रत पालन करनेके लिये मनसे, वचनसे और शरीरसे जीवोंकी रक्षा करनी चाहिये ॥ १२१ ॥

जो दुष्ट बलवान होकर दुर्बलोंको मारता है वह परलोकमें उसी

जीवके द्वारा अनेकवार मारा जाता है॥१२२॥ अरे! जो एक जरासे तृणके स्पर्शसे दुःखी होता है वह दूसरे जीवोंके शरीरपर किस प्रकार शस्त्र चलाता है? ॥ १२३ ॥ जो मनुष्य निर्दयी हैं, जीवोंकी हिंसा करते रहते हैं वे मूर्ख अन्धे, कुबजे, बौने, अङ्ग उपाङ्गोंसे रहित, कोढ़ आदि अनेक रोगोंसे घिरे हुए, दरिद्री, चँचल, देखनेमें घृणित, भयानक मूर्ख, होते हैं, दूसरोंके दास होते हैं, अत्यंत दुःखी होते हैं, परभवमें थोड़ी आयु पाते हैं और चांडाल आदि नीच योनियोंमें उत्पन्न होते हैं ॥ १२४ ॥

जो मूर्ख और दुष्ट लकड़ी आदिसे पशुओंको मारते हैं वे भी अत्यन्त दुःखी होते हैं और मरकर उस पापसे परलोकमें तिर्यंच गतिमें ही जन्म लेते हैं ॥ १२५ ॥ जो दुष्ट जीव इस जन्ममें जीवोंकी हिंसा करते हैं बुद्धिमानोंके द्वारा सदा निंदनीय गिने जाते हैं तथा कोढ़ आदि अनेक रोगोंको पाकर परलोकमें उसे पाप कर्मके उदयसे विषम नरकमें ही जन्म लेते हैं ॥ १२६ ॥

यह हिंसा नरककी देहली है, विद्वानोंके द्वारा सदा निंदनीय हैं। रोग, क्लेश, भय आदि अनेक दुःखोंकी जननी है, मूर्ख लोग ही इसको स्वीकार करते हैं, अनेक पापोंकी खानि है, स्वर्गका द्वार बंद करनेके लिये अर्गल है, अपनेको दूसरोंको सबको दुःख देनेवाली है, बड़ी कठिन-तासे छूटती है और मुक्ति लक्ष्मीको भय देनेवाली (दूर भगानेवाली) है। इसलिये हे भव्य! तू जीवोंपर दया कर, इस पापमयी हिंसाको छोड़ ॥ १२७ ॥

हे भ्रात! तू समस्त जीवोंको अपने समान मानकर सब जीवों-पर दया कर, क्योंकि यह दया सबको सुख देनेवाली है। मुनि लोग भी इसकी सेवा करते हैं, मोक्षमार्गमें प्रवेश करनेके लिये यह अत्यंत

कुशल है। नरकरूपी घरको बन्द करनेके लिये अर्गल है, सद्धर्मरूपी निर्मल रत्नोंकी खानि है और स्वर्ग लोककी देहली है, ऐसा समझकर इसको सदा धारण करना चाहिये।। १२८ ॥

यह जीवोंकी रक्षा करनेवाला व्रत निर्मल सुखकी निधि है, धर्मरूपी वृक्षकी जड़ है, सब समितियोंसे सिद्ध होता है, तीर्थंकर परमदेव भी इसकी सेवा करते हैं, यह निर्मल यशको देनेवाला है और स्वर्गमोक्षका कारण है। इसलिये हे भव्य! तू इस व्रतको सेवन कर ॥ १२९ ॥ जो बुद्धिमान इस अहिंसा अणुव्रतको समस्त अतीचारोंको छोड़कर पालन करता है वह अवश्य ही सोलहवें स्वर्गमें जाकर उत्तम देव होता है ॥ १३० ॥

प्रश्न—हे मुने! इस अहिंसा अणुव्रतको निर्मल निर्दोष पालन करनेके लिये इस व्रतके जितने अतीचार हैं उन सबको मेरे लिये निरूपण कीजिये ॥ १३१ ॥

उत्तर—हे वत्स! तू एकाग्र होकर सुन। मैं केवल धर्मकी वृद्धिके लिये व्रतोंमें दोष उत्पन्न करनेवाले अतीचारोंको कहता हूं ॥१३२॥ इस अहिंसा अणुव्रतके बन्ध, वध, छेद, अतिभारारोपण और अन्न-पाननिरोध ये पांच अतिचार हैं। इन पांचों अतीचारोंको तू छोड़ ॥ १३३ ॥ पशुओंको रस्सी आदिसे मजबूत बांध देना (जिससे कि वे अग्नि आदि लगने पर भाग न सकें) वह बंध नामका अहिंसाणु-व्रतका पहिला अतीचार गिना जाता है ॥ १३४ ॥

जो नीच मनुष्य, स्त्री वा पशुओंको लकड़ी आदिसे मारते हैं उनको यह वध नामका दूसरा निन्द्य अतीचार लगता है॥१३५॥ जो बुद्धिहीन कान, नाक आदि छेदा करते हैं उनके दुःख देनेवाला यह छेद नामका तीसरा अतीचार लगता है ॥ १३६ ॥ जो लोभके

वश होकर पशुओं पर अधिक बोझ लाद देते हैं उसके दोष उत्पन्न करनेवाला अतिभारारोपण नामका अतीचार लगता है ॥ १३७ ॥ जो मनुष्य वा पशुओंका अन्नपान रोक देता है अथवा समयपर नहीं देता उसके अन्नपाननिरोध नामका पांचवां अतीचार लगता है ॥ १३८ ॥

जो भव्य इन समस्त अतीचारोंको छोड़कर निर्मल अहिंसा-व्रतको पालन करता है वह स्वर्ग वा राज्यादिके सुख भोगकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करता है ॥ १३९ ॥ जो बुद्धिमान इस प्रथम अहिंसा अणुव्रतको पालन करता है वह देवोंके द्वारा भी पूज्य होता है और परलोकमें भी सुखी होता है, तथा इस व्रतके न पालनेसे वह सदा दुःखी रहता है ॥ १४० ॥

प्रश्न—हे प्रभो! इस अहिंसा अणुव्रतको पालन करनेसे किसको उत्तम फल मिला है, उसकी कथा कृपाकर मेरे लिये कहिये ॥ १४१ ॥

उत्तर—हे वत्स ! तू चित्त लगाकर सुन, मैं इस अहिंसा अणुव्रतमें प्रसिद्ध होनेवालेकी सारभूत कथा संक्षेपमें कहता हूँ ॥ १४२ ॥ इस अहिंसा अणुव्रतके पालन करनेमें यमपाल नामका चांडाल प्रसिद्ध हुआ है इसलिये अब मैं उसीकी पुण्य बढ़ानेवाली कथा कहता हूँ ॥ १४३ ॥

सुरम्यदेशके पोदनपुर नगरमें पुण्यकर्मके उदयसे महाचल नामका बलवान राजा राज्य करता था। उसका एक पुत्र था जो दुष्ट बुद्धिवाला था और बल उसका नाम था ॥ १४४ ॥ किसी एक समय नन्दीश्वरपर्वके दिनोंमें राजाकी आज्ञासे मन्त्रीने आठ दिन पर्यंत जीवोंके न मारनेकी सब जगह घोषणा कर दी ॥ १४५ ॥ परंतु राजकुमार बल मांसासक्त था उस पापीने राजाके ही बागमें छिपकर

राजाका ही मेढा मारा और उसका मांस पकाकर खाया ॥ १४६-१४७॥

मेढाके न मिलनेसे उसके मारे जानेकी बात राजाने सुनी और वह उस मेढाको मारनेवालेकी तलाश करने लगा ॥ १४८ ॥ जिस समय कुमारने मेढा मारा था उस समय उस बागका माली एक वृक्षपर चढ़ा हुआ था इसलिये उसने उस कुमारके पाप कर्मके उदयसे उसका सब कृत्य देख लिया था ॥ १४९ ॥ रातको घर आनेपर उसने यह सब बात अपनी स्त्रीसे कही थी, क्योंकि उसने उस राजकुमारका सब कृत्य देख ही लिया था ॥१५०॥ राजाके किसी गुप्तचरने कानोंको दुःख देनेवाली वह सब बात सुन ली और जाकर राजाको सब हाल ज्योंका त्यों सुना दिया ॥ १५१ ॥

सबेरा होते ही राजाने मालीको बुलाकर पूछा। उसने महाराजसे सब बात ज्योंकी त्यों यथार्थ कह दी ॥ १५२ ॥ महाराजने विचार किया कि ऐसे पुत्रसे क्या लाभ है जो जीवघात करे और राजाकी आज्ञाका उल्लंघन करे । यही विचार कर उसने यमपाल चांडालको आज्ञा दी कि वह मांसभक्षक राजकुमार बलको मार डाले ॥१५३—१५४॥ तदनंतर वह राजकुमार वधस्थानमें पहुँचाया गया और उसी समय यमपाल चांडालको बुलानेके लिये सेवक लोग भेज दिये गये ॥ १५५ ॥

कोतवालके सिपाहियोंको आते हुए देखकर चांडालने अपनी स्त्रीसे कहा कि—"हे प्रिये ! ये आनेवाले मुझे पूँछे तो कह देना कि आज वह गांवको गया है।" इस प्रकार अपनी स्त्रीको समझाकर वह घरके एक कोनेमें छिप गया। उन सिपाहियोंने आते ही पूछा कि चांडाल कहां है ? इसके उत्तरमें उसकी स्त्रीने उत्तर दिया कि आज वह गांवको गया है। चांडालीका यह उत्तर सुनकर सिपाहियोंने

कहा कि—"ओ हो वह बड़ा पापी है और बहुत ही पुण्यहीन है। अरे ! आज वस्त्राभूषणोंसे सुशोभित राजकुमार मारा जायगा इसलिये आज अनेक रत्न, बहुतसा सोना तथा और भी बहुतसी प्राप्ति होगी ॥ १५६–१५९ ॥

उन सिपाहियोंकी यह बात सुनकर वह चांडाली अपने लोभको न दबा सकी और उस चांडालके डरसे उसने मुँहसे तो कपटपूर्वक यही कह दिया कि—"वह आज तो गांवको ही गया है, परंतु उसने हाथके इशारेसे चांडालको दिखला दिया। इसके बाद उन सिपाहियोंने उस चांडालको बलात्कार घरसे निकाला और मारनेके लिये कुमार उसको सौंपा, परंतु उस चांडालने कहा कि—मैं आज जीवघात कभी नहीं कर सकता ॥ १६०–१६२ ॥

इसके उत्तरमें कोतवालने कहा कि इस कुमारको मारनेकी राजाकी आज्ञा है इसलिये तू इसे मार। तब चांडालने कहा कि आज चतुर्दशीका दिन है, आजके दिन मेरे जीवोंके न मारनेका नियम है ॥ १६३ ॥ यह सुनकर कोतवाल बहुत ही शीघ्र उस चांडालको राजाके पास ले गया और महाराजसे प्रार्थना की कि हे महाराज ! यह चांडाल कुमारको आपका पुत्र समझ कर नहीं मारता है ॥ १६४ ॥

राजाने उस चांडालसे पूछा कि तू इस कुमारको क्यों नहीं मारता है ? तब चांडालने कहा कि हे प्रभो ! मेरी एक छोटीसी कथा सुन लीजिये ॥ १६५ ॥ "किसी एक दिन मुझे सर्पने काट लिया था और मैं उसके विषसे मूर्छित हो गया था, तब मेरे भाई बन्धु आदि कुटुम्बियोंने मुझे मरा समझ कर स्मशानमें लाकर पटक दिया था ॥ १६६ ॥ वहांपर एक सर्वौषधि ऋद्धिको धारण करनेवाले

मुनिराज विराजमान थे, उनके शरीरको स्पर्श करनेवाली वायु मेरे शरीर पर लगी और शुभ कर्मके उदयसे मैं जीवित होगया ॥ १६७॥ जीवित होते ही मैंने परमोपकार करनेवाले उन मुनिराजसे व्रत लिया था कि मैं चतुर्दशीके दिन किसीकी हिंसा नहीं करूँगा। इसीलिये हे देव ! स्वर्ग-मोक्षके सुख प्राप्त करनेके लिये और पर्वके दिनोंमें समस्त पापोंको शांत करनेके लिये आज मैं उसे कभी नहीं मारूंगा" ॥ १६८–१६९ ॥

राजाने सोचा कि 'यह अस्पृश्य चांडाल है इसके ऐसा उत्तम व्रत कहांसे हो सकता है' यही सोचकर राजाने कड़े शब्दोंमें कहा कि "हे कोतवाल ! ये दोनों ही दुष्ट हैं इसलिये इन दोनोंको रस्सी आदिसे खूब अच्छी तरह बांधकर शिशुमार नामके भयंकर सरोवरमें पटक दो ! ॥ १७०–१७१ ॥

राजाकी यह आज्ञा सुनकर वह चांडाल विचार करने लगा कि "प्राणोंका त्याग कर देना अच्छा परन्तु व्रतका भंग करना अच्छा नहीं, क्योंकि व्रत भंग करनेसे जन्म जन्ममें दुःख प्राप्त होते हैं और प्राण तो प्रत्येक भवमें प्राप्त होते रहते हैं। व्रतकी प्राप्ति अत्यंत दुर्लभ है, ऐसे प्राप्त हुए व्रतको छोड़कर जीवित रहनेसे क्या लाभ है ? इसलिये प्राण भले ही चले जाओ, परन्तु मैं अपने व्रतको कभी नहीं छोड़ सकता।" हृदयमें ऐसा निश्चय कर वह धीरवीर चांडाल अपने व्रत पालनेमें तत्पर बना रहा और अपने प्राणोंका भय छोड़कर सिंहके समान निर्भय बना रहा ॥ १७२–१७५ ॥

तदनंतर उस कोतवालने उन दोनोंको अच्छी तरह बांधकर उस सरोवरमें पटक दिया। चांडाल अपने व्रतमें अचल रहा था इसलिये उसके व्रतके माहात्म्यसे उसी समय जलकी देवी आई। आते ही

उसने उस जलके मध्यमें ही एक मणियोंका मंडप बनाया। उसमें एक सिंहासनपर चांडालको विराजमान किया, दुंदुभी बाजे बजाये, प्रातिहार्य बनाये और पुकारकर कहा कि "हे चांडाल! तेरी जय हो, तू संसारमें बहुत अच्छा है, बहुत उत्तम है और तू ही धन्य है" इस प्रकार उस देवीने उस चांडालके व्रतकी बड़ी प्रभावना की ॥ १७६-१७७ ॥

उस अतिशयको सुनकर राजा भी दौडता आया, भयसे उसका सब शरीर कंपने लगा और उसने बार-बार अपनी निंदा की ॥१७८॥ राजाने आते ही उसकी प्रशंसा की, पूजा की, वस्त्राभूषणोंसे उसका संस्कार किया और अपने छत्रके नीचे बिठाकर स्वयं उसे स्नान कराया ॥ १७९ ॥ इस प्रकार वह चांडाल एक केवल अहिंसाव्रतके माहात्म्यसे राजाके द्वारा पूज्य हुआ, और देवोंके द्वारा पूज्य हुआ, तथा मरकर स्वर्गमें देव हुआ ॥१८०॥

इस अहिंसाव्रतके प्रभावसे जब एक चांडालने इतना फल पाया तब फिर श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुआ भव्य पुरुष, मन वचन कायसे जीवोंकी पालन करता है, अहिंसाव्रतको धारण करता है उसके फलको हम जान भी नहीं सकते ॥१८१॥ देखो, धीरवीर और सिंहके समान निर्भय यमपाल चाण्डालने एकाग्रचित्तसे प्रथम अहिंसाव्रतका पालन किया था इसलिये वह राजा और देवोंके द्वारा पूज्य हुआ, ससारमें उसकी निर्मल कीर्ति हुई और सब तरहकी महिमाको पाकर अन्तमें स्वर्गका देव हुआ। इसलिये यह अहिंसाव्रत सबको पालन करना चाहिये ॥१८२॥ हे वत्स! इस प्रकार तुझे सर्वोत्तम अहिंसाव्रतका फल बतलाया। अब आगे विना दयाके जो दोष होते हैं उन्हें कहता हूं तू सुन ॥१८३॥

विना दयाके धनश्रीने बहुत दिनों तक अपार दुःख पाया था

इसलिये भव्य जीवोंको उस निर्दयताके पापसे भय उत्पन्न करनेवाली उसकी कथा कहता हूं ॥१८४॥ लाट देशके भृगुकक्ष नामके नगरमें पुण्य-कर्मके उदयसे श्रीमान् राजा लोकपाल राज्य करता था ॥१८५॥ उसी नगरमें एक धनपाल नामका वैश्य रहता था। उसकी स्त्रीका नाम धनश्री था। उन दोनोंके सुन्दरी नामकी पुत्री थी और गुणपाल नामका एक पुत्र था ॥ १८६ ॥ पहिले किसी समय धनश्रीने एक कुण्डल नामके बालकको पुत्र समझकर पाला था और उसपर उसका बहुत मोह था ॥१८७॥ परन्तु धनपालके मरने पर वह दुराचरिणी धनश्री उसी कुंडलके साथ कामक्रीड़ा करने लगी ॥ १८८ ॥

धनश्रीके पुत्र गुणपालने अपनी माताका यह सब दुराचार जान लिया इसलिये धनश्रीको उससे कुछ डर लगा और उसने कुंडलसे कहा कि "हे कुंडल ! मैं सवेरे ही गुणपालको गायें चरा-नेके लिये जंगलमें भेजूँगी सो तू वहां जाकर गुणपालको मार आना। गुणपालके मारनेसे फिर हमारे तुम्हारे एक स्थानपर रहनेमें कोई बाधा नहीं होगी।" धनश्रीकी यह बात सुंदरीने भी सुन ली और उसने उसी समय अपने भाई गुणपालसे कहा कि भाई, माता आज तुझे गाय चरानेको भेजेगी और कुंडलके हाथसे तुझे मरवावेगी। वह यह सब बातें रातमें कुंडलसे कह रही थी इसलिये तू खूब सावधान रहना ॥ १८९–१९३ ॥

सवेरा होते ही धनश्रीने गुणपालसे कहा कि हे पुत्र ! आज कुंडलका शरीर ठीक नहीं है इसलिये आज जंगलमें जाकर गायोंको तू ही चरा ला। माताकी यह बात सुनकर गुणपाल सब गायोंको लेकर जंगलमें चला गया ॥ १९४–१९५ ॥ वहां जाकर उसने अपने सब कपड़े एक लकड़ीको पहनाये। उसे सोती हुई बनाकर

ऊपरसे उठाकर आप छिप गया और दूरसे ही माताकी चेष्टा देखने लगा॥ १९६॥ कुंडल आया, उसने कपड़ोंको गुणपाल समझकर तलवारका वार किया। गुणपाल यह सब कुछ देख ही रहा था इसलिये वह झट निकल आया और तलवारसे कुंडलको मारकर स्वयं घर आगया॥ १९७-१९८॥

गुणपालके घर आते ही धनश्रीने उससे पूछा कि कुंडल कहां है? इसके उत्तरमें गुणपालने कहा कि उसकी बात मेरी तलवार जानती है॥ १९९॥ धनश्रीने देखा कि गुणपालकी तलवार रक्तसे लाल हो रही है तब उसे बड़ा क्रोध आया और उसने उसी तलवारसे विना किसी दयाके गुणपालको मार डाला॥ २००॥

गुणपालको मारते हुए देखकर सुन्दरीको भी भाईका स्नेह उमड़ आया और धनश्रीके पाप कर्मके उदयसे सुन्दरीने भी मूसलोंसे धनश्रीको खूब मारा॥ २०१॥ पीछे बहुत कोलाहल हो गया, कोतवाल भी आगया और वह उसे बांधकर सब कुटुम्बियोंके साथ राजाके सामने ले आया॥ २०२॥ राजाने पुत्री सुन्दरीके मुखसे सब बातें सुनीं और क्रोधित हो उसने बहुत ही बुरा और बहुत ही कठोर दण्ड दिया॥ २०३॥

उसने नाक कान कटाकर काला मुंहकर गधेपर चढ़ाकर शहरमें फिरवाई। इस प्रकार उसी समय उपार्जन किये हुए पापकर्मके उदयसे राजाके द्वारा दिये हुए महा घोर सब दुःखोंका अनुभव कर वह दुष्ट धनश्री अनेक दुःखोंसे भरी हुई दुर्गतिमें जा उत्पन्न हुई॥२०४-२०५॥ इस प्रकार धनश्रीने अपनी दुष्ट चेष्टासे और हिंसा नामके महा पापसे इस लोकमें भी घोर दुःख पाया और परलोकमें भी उसे अत्यन्त निंद्य गतिमें जन्म लेना पड़ा॥२०६॥ नारद आदि और भी ऐसे बहुतसे

मनुष्य हुए हैं जो हिंसामें प्रेम रखनेके कारण नरकमें गये हैं उन सबकी कथा कहना भी सामर्थ्यसे बाहर है ॥ २०७ ॥

देखो धनश्रीने निडर होकर जीवहिंसा की थी और दुराचरण किया था इसलिये उस पापके फलसे उसे अनेक दुःखोंसे भरी हुई और समस्त अनिष्ट संयोगोंसे परिपूर्ण ऐसी दुर्गतियोंमें जन्म लेना पड़ा था। इसलिये हे भव्य ! यदि तू दुःखोंसे डरता है तो तू भी सब तरहकी हिंसाका त्याग कर ॥ २०८ ॥

इस प्रकार आचार्य श्रीसकलकीर्ति विरचित प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमें आठ मूलगुण, सात व्यसन और अहिंसा व्रतको निरूपण करनेवाला तथा यमपाल चाण्डाल और धनकी कथाको कहनेवाला यह बारहवां सर्ग समाप्त हुआ।

तेरहवां सर्ग।

जिनकी आत्मा अत्यन्त निर्मल हैं, जिन्होंने समस्त कर्मोंको नष्ट कर दिया है, और गणधरादि निर्मल पुरुष भी जिन्हें वन्दना करते हैं ऐसे श्री विमलनाथ भगवानको मैं अपने पाप कर्मोंको नाश करनेके लिये नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ ऊपरके सर्गमें अहिंसाव्रतका निरूपण किया। अब आगे समस्त जीवोंका हित करनेके लिये और श्रेष्ठ व्रतकी सिद्धिके लिये उत्तम सत्य व्रतको कहता हूं ॥ २ ॥ सज्जन पुरुषोंने अहिंसा व्रतकी रक्षा करनेके लिये ही सत्यव्रतका निरूपण किया है। यह व्रत गृहस्थोंके लिये सारभूत व्रत है और भाषा-समितिसे परिपूर्ण है ॥ ३ ॥

जो न तो स्थूल झूंठ स्वयं बोलते हैं न दूसरोंसे बुलवाते हैं और न किसीके द्वारा बोले हुए झूठकी अनुमोदना करते हैं उनके यह

सत्यव्रत होता है ॥ ४ ॥ विद्वान् गृहस्थोंको सबका हित करनेवाला, थोड़ा और मधुर वचन कहना चाहिये, किसीकी निन्दा नहीं करनी चाहिये और सब जीवोंको सुख देनेवाले वचन कहने चाहिये ॥५॥

हे भव्य ! तू सदा ऐसे वचन कह जिनसे अपने आत्माका कल्याण हो, जो धर्मके कारण हों, यश देनेवाले हों, और पापोंसे सर्वदा रहित हों ॥६॥ विद्वान् लोगोंकी अन्य जीवोंका हित करनेवाले रागद्वेषसे रहित, सारभूत और धर्म वा संवेगको बढ़ानेवाले वचन ही सदा कहने चाहिये ॥ ७ ॥ विद्वान् लोग सदा आगमके अनुसार, अनिंद्य, विकथादिकसे रहित, धर्मोपदेशसे भरे हुए ही वचन कहते हैं ॥ ८ ॥

जो दूसरोंके हितके लिये कुछ कठिन वाक्य भी कहे जाते हैं अथवा दूसरोंकी रक्षा वा हितके लिये असत्य भी कहा जाता है वह सब भगवान जिनेन्द्रदेवने सत्य बतलाया है ॥ ९ ॥ जो दूसरोंको दुःख उत्पन्न करनेवाले हों, कानोंको दुःख देनेवाले हो, और जीवोंका वध वा बन्धन करनेवाले हो ऐसे सत्य वचनोंको भी विद्वान लोग असत्य ही कहते हैं ॥ १० ॥ सत्यरूपी सारभूत अमृत वचनोंसे जीवोंको यश प्राप्त होता है, प्रतिष्ठा प्राप्त होती है और धर्मकी प्राप्ति होती है और असत्य वचनोंसे वध बन्धन आदि अनेक प्रकारके दुःख प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥

इस संसारमें जब सब जीवोंको सुख देनेवाले, सबका हित करनेवाले और पूज्य ऐसे सत्यरूपी अमृत वचन उपस्थित है फिर भला ऐसा कौन बुद्धिमान है जो निन्द्य, कठोर और झूठ वचनोंको कहे ॥ १२ ॥ जो पुरुष सदा सत्य वचनोंकी सीमामें ही रहता है कभी असत्य नहीं बोलता, उसे अग्नि सर्प आदि कोई भी पीड़ा नहीं

दे सकते ॥ सत्य वचनोंके ही कारण यह प्राणी इस संसारमें देव और मनुष्योंके द्वारा पूज्य होता है तथा परलोकमें स्वर्ग मोक्षादिके सुख प्राप्त करता है ॥ १४ ॥

जो वाक्य कर्कश हों, कठोर हों, निंद्य हों, पापमय उपदेशसे परिपूर्ण हों, किसी मर्मको कहनेवाले हों, दूतपनेके कामको करनेवाले हों, धर्मसे रहित हों, दूसरोंको क्रोध उत्पन्न करनेवाले हों कडवे हों, दूसरोंकी निंदा करनेवाले हों, अभिमान प्रकट करनेवाले राग उत्पन्न करनेवाले हों, शोक करनेवाले हों, समस्त जीवोंको भय उत्पन्न करनेवाले हों, हंसी करनेवाले हों, कामोद्रेक उत्पन्न करनेवाले हो, मुनियोंमें दोष लगानेवाले हों, असत्य हों, दुख देनेवाले हों, विचार रहित हों, शास्त्रोंसे विरुद्ध हों, अपने गुणोंकी प्रशंसा करनेवाले हों, मूर्ख लोगोंको ठगनेवाले हों, धर्मविरुद्ध हों, कृष्णलेश्या आदिमें डुबानेवाले हों, विकथा आदिको सूचित करनेवाले हों, और नीच लोगोंके द्वारा कहने योग्य हों, हे मित्र ! ऐसे वचन कंठगत प्राण होनेपर भी नहीं कहने चाहिये । तू ऐसे वचनोंका सर्वथा त्याग कर ॥ १५–१९ ॥

असत्य वचन कह कह कर ही दुष्ट पुरुषोंने अनेक कुशास्त्र रचकर लोगोंको व्याकुल और धर्मसे परान्मुख कर दिया है ॥ २० ॥ झूठ बोल बोल कर ही अपने आत्माको तथा अन्य लोगोंको ठगनेवाले और धर्म मार्गसे ही द्रव्य कमानेवाले धूर्तोंने हठपूर्वक अनेक कुशास्त्रोंको रचा है ॥ २१ ॥ असत्य वचनोंके प्रभावसे ही जिनशासनके भीतर और जिनशासनके बाहर अनेक मत मतांतर उत्पन्न हो गये हैं ॥ २२ ॥ नीच मुखरूपी वामीमें जिह्वारूपी सर्पिणी रहती है वह असत्यरूपी हलाहल विषसे भरे हुये मुखसे अनेक लोगोंको खा डालती है ॥ २३ ॥

मिष्टा भक्षण कर लेना अच्छा, परंतु अपनी जिह्वासे हिंसा

करनेवाले, पाप और दुःख उत्पन्न करनेवाले झूठ वचन कहना कभी अच्छा नहीं ॥ २४ ॥ इन तीनों लोकोंमें असत्य वचनोंके समान अन्य कोई पाप न आज तक हुआ है और न हो सकता है इसलिये हे मित्र ! विषैले सर्पके समान शीघ्र ही तू इसका त्याग कर ॥२५॥ इस असत्य वचनके फलसे ही लोग गूँगे, बहिरे होते हैं, उनके मुँहमें अनेक रोग हो जाते हैं, उनका स्वर बुरा होता है और वे मूर्ख होते हैं ॥ २६ ॥

इसी प्रकार सत्य वचनके फलसे ज्ञान बढ़ता है, विद्या बढ़ती है, विवेक बढ़ता है, अच्छा मीठा स्वर होता है, वचनकी चतुरता आती है, सभाको जीतनेवाला वादी होता है और अच्छा कवि होता है ॥२७॥ जो मनुष्य इस सत्यव्रतको अतीचार रहित पालन करता है वह स्वर्गादिकके तथा राज्यादिकके सुख भोगकर अन्तमें मुक्ति-लक्ष्मीका स्वामी होता है ॥ २८ ॥

प्रश्न—हे भगवन् ! इस व्रतको शुद्ध पालन करनेके लिये इस सत्य व्रतमें दोष उत्पन्न करनेवाले अतिचारोंको कृपाकर कहिये ॥२९॥

उत्तर—हे वत्स ! तू हृदयके सब संकल्प-विकल्पोंको छोड़कर सुन ! तेरे लिये मैं उन अतिचारोंको कहता हूँ ॥ ३० ॥ मिथ्या-उपदेश, रहोभ्याख्यान, कूटलेखक्रिया, न्यासापहार और साकार-मंत्रभेद ये सत्य व्रतमें दोष लगानेवाले पांच अतीचार गिने जाते हैं ॥ ३१-३२ ॥ जो अपने किसी कार्यकी सिद्धिके लिये अथवा द्रव्य कमानेके लिये झूठा उपदेश दिया जाता है सो मिथ्योपदेश नामका पहिला अतिचार गिना जाता है ॥ ३३ ॥

जो किसी द्रव्यके लोभसे अथवा अन्य किसी प्रयोजनसे स्त्री पुरुषोंके द्वारा अथवा अन्य किसीके द्वारा किये हुए छिपे कार्यको

प्रगट करता है उसके वह रहोभ्याख्यान (एकांतमें किए हुए कार्यको प्रगट करना) नामका अतीचार कहलाता है ॥ ३४ ॥ जो किसी दूसरेको ठगनेके लिये झूठे लेख लिखता है उसके कूटलेखक्रिया नामका तीसरा अतीचार लगता है ॥ ३५॥ किसीके धरोहर रक्खे हुए धनमेंसे जो थोड़ा देता है उसमेंसे कुछ रख लेता है उसके न्यासापहार नामका चौथा अतीचार होता है ॥ ३६ ॥ जो किसी छल कपटसे अथवा किसीकी चेष्टा देखकर दूसरेके हृदयकी बातको जानकर उसे अन्य लोगोंके सामने प्रकाशित करता है वह साकारमंत्रभेद नामका पांचवां अतीचार कहलाता है ॥ ३७ ॥

जो पुरुष इन अतीचारोंको छोड़कर सत्य भाषण करता है वह स्वर्गादिकके सुख भोगकर शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करता है ॥ ३८ ॥ संसारमें असत्य वचन अनेक कुगतियोंके कारण हैं, गूगे, बहिरे आदि अनेक रोगोंके बीजभूत हैं, नरकमें प्रवेश करानेवाले हैं, स्वर्ग-मोक्षके अद्वितीय शत्रु हैं, अनेक कठिन दुःख देनेवाले हैं और पाप-संतापके बीज हैं इसलिये हे मित्र ! तू मोक्ष प्राप्त करनेके लिये ऐसे असत्य वचनोंका सर्वथा त्याग कर ॥ ३९ ॥

इसी प्रकार सत्य वचन नरकरूपी घरको बन्द करनेके लिये किवाड़ हैं, स्वर्ग-मोक्षके मित्र हैं, श्री जिनेन्द्रदेव और गणधरदेव भी इनकी सेवा करते हैं, ये समस्त विद्याओंके देनेवाले हैं, अपने आत्माका परम कल्याण करनेवाले हैं, सर्वथा निर्दोष हैं और जीवोंकी हिंसासे सर्वथा रहित हैं इसलिये हे वत्स ! आगामी सुख प्राप्त करनेके लिये तू भी ऐसे सारभूत सत्य वचनोंके भाषण करनेका नियम ले ॥४०॥ जो बुद्धिमान स्वर्ग-मोक्ष प्राप्त करनेके लिये सदा प्रतिष्ठित सत्य वचन कहते हैं वे इस लोकमें ही राजा और देव विद्याधरोंके द्वारा पूज्य गिने जाते हैं ॥ ४१ ॥

प्रश्न—हे प्रभो! इस सत्य व्रतके माहात्म्यसे जिसने इस संसारमें प्रतिष्ठा प्राप्त की है उसकी कथा कृपाकर मुझे सुना दीजिये ॥४२॥

उत्तर—हे मित्र! तू चित्त लगाकर सुन, मैं मोक्ष प्राप्त करनेके लिये कल्याण करनेवाली धनदेवकी कथा तुझे सुनाता हूँ ॥ ४३ ॥ अनेक मनुष्योंसे भरे हुए इस जम्बूद्वीपके पूर्वविदेह क्षेत्रमें जैनधर्मसे अत्यन्त शोभायमान एक पुष्कलावती देश है। उसकी पुंडरीकिणी नगरीमें एक धनदेव नामका वैश्य रहता था। वह धनदेव सदा सत्य भाषण ही करता था। उसी नगरीमें एक दुष्ट जिनदेव रहता था ॥ ४४–४५ ॥

किसी एक समय धनदेव और जिनदेव दोनों ही व्यापारके लिये देशांतरमें गये उन्होंने विना किसी अन्यकी साक्षीके परस्परमें यह तय कर लिया था कि हमारे व्यापारमें जो कुछ लाभ होगा उसे हम दोनों आधा२ बांट लेंगे॥४६॥ वहां जाकर उन्होंने पुण्यकर्मके उदयसे बहुतसा द्रव्य कमाया और फिर वे दोनों शीघ्र ही लौटकर कुशलतापूर्वक घर आगये ॥ ४७ ॥

जिनदेव दुष्ट था इसलिये घर आनेपर उसने धनदेवको आधा द्रव्य नहीं दिया किन्तु उसे थोड़ासा द्रव्य देना चाहा। इसलिये उन दोनोंमें परस्पर झगड़ा हो गया। सो ठीक ही है क्योंकि मूर्ख लोग धनके लिये क्या क्या पाप नहीं करते हैं? अर्थात् सब कुछ करते हैं ॥ ४८–४९ ॥ कोई साक्षी तो था ही नहीं इसलिये झूठ बोलनेवाले पापी जिनदेवने सब लोगोंके सामने, कुटुम्बियोंके सामने और राजादिके सामने यही कहा कि मैंने इस व्यापारके लाभमेंसे इसे कुछ भी द्रव्य देना नहीं कहा था इसलिये मैं इसे उचित द्रव्यके सिवाय और कुछ अधिक नहीं दे सकता ॥ ५०–५१ ॥

धनदेव अपने सत्यव्रतमें निश्चल था इसलिये उसने राजा, कुटुम्बी और वैश्योंके सामने परस्परमें तय हुए आधे आधे द्रव्यकी ही बात कही ॥५२॥ तब राजाने वह सब धन दोनोंसे लेकर जलती हुई अग्निमें रख दिया और कह दिया कि सत्यवादी हो वही अग्निमें जाकर ले आवे । धनदेव सत्यवादी और शुद्ध था इसलिये वह झट अग्निमें जाकर द्रव्यको ले आया तथा झूठ बोलनेके कारण जिनदत्त उस द्रव्यको न ला सका ॥ ५३ ॥ इसलिये वह सब धन राजाने धन-देवको ही सौंप दिया तथा राजाने व अन्य लोगोंने उनका यथेष्ट आदरसत्कार किया और संसारमें वह बहुत ही श्रेष्ठ और धन्य गिना गया ॥ ५४ ॥

यह बात देखकर अन्य लोगोंने भी उसकी स्तुति की, पूजा की और उसे नमस्कार किया । इस प्रकार धनदेव सत्यके प्रभावसे संसार-भरमें प्रसिद्ध हुआ ॥ ५५ ॥ देखो, वैश्यपुत्र धनदेव निर्मल सत्य वचनोंके ही प्रभावसे अनेक निर्मल गुणोंका निधि हो गया था, धनाढ्य हो गया था, राजाके द्वारा और अन्य संसारी लोगोंके द्वारा पूज्य होगया था और संसारमें उसकी निर्मल कीर्ति फैल गई, ऐसा सत्यवादी धनदेव सदा जयशील हो ॥५६॥ इस प्रकार सत्यवचनोंके गुणोंको सुनकर शिष्य फिर पूछने लगा—

प्रश्न—हे भगवन् ! सत्य वचनोंके त्याग करनेसे किसको दुःख पहुंचा है उसकी कथा और सुना दीजिये ॥ ५७ ॥

उत्तर—इसके उत्तरमें आचार्य कहने लगे कि हे शिष्य ! तू चित्त लगाकर सुन, अब मैं झूठ बोलनेवाले सत्यघोषकी भय उत्पन्न करनेवाली कथा कहता हूं ॥ ५८ ॥

इसी जम्बूद्वीपके प्रसिद्ध भरतक्षेत्रमें एक सिंहपुर नगर है । उसमें

राजा सिंहसेन राज्य करता था ॥५९॥ उसको सुख देनेवाली उसकी रानीका नाम रामदत्ता था। उसी राजाके एक श्रीभूति नामका अत्यन्त कपटी पुरोहित था ॥ ६० ॥ वह अपने जनेऊमें एक कैंची बांधे फिरता था और लोगोंसे कहता फिरता था कि यदि कभी लोभसे मेरे मुँहसे कुछ झूठ निकल जाता है तो मैं इस कैंचीसे उसी समय अपनी जीभ काट डालता हूं। इस प्रकार वह प्रतिदिन अपना सब व्यवहार कपटपूर्वक ही करता था ॥ ६१–६२ ॥

परन्तु उसका यह कपट किसीको मालूम नहीं हुआ था इसलिये दूसरा नाम सत्यघोष पड़ गया था। तब बहुतसे लोग उसका विश्वास करने लग गये थे और उसके पास आ आकर अपना धन धरोहर रखने लग गये थे ॥ ६३ ॥ परन्तु जो द्रव्य रख जाते थे उनको वह कुमार्गगामी पुरोहित सब नहीं देता था, थोड़ा ही देता था। तथापि संसारमें उसके सत्यकी प्रसिद्धि हो रही थी इसलिये उससे कोई कुछ कह नहीं सकता था ॥ ६४ ॥

जो पुरुष उसके इस कृत्यको जान लेता था वह उसके सत्यकी प्रसिद्धिका सुनकर यही सोच लेता था कि "क्या कहूं। यदि मैं कुछ कहूंगा भी तोभी मेरे महाराज मेरे लिये ही नाम रक्खेंगे। इसके सत्यकी प्रसिद्धिके सामने मेरी कुछ चल नहीं सकेगी।" यही सोचकर सब चुप हो जाते थे ॥ ६५ ॥

किसी एक समय उस नगरमें धन कमानेके लिये बुद्धिमान सागरदत्त नामका सेठ पद्मखंडपुर नामके नगरसे आया ॥ ६६ ॥ वह अपने अमूल्य पांच रत्न सत्यघोषके समीप रख गया और स्वयं आगे धन कमानेके लिये गया ॥ ६७ ॥ बाहर जाकर उसने बहुत धन कमाया और लौटकर सिंहपुर आ रहा था कि पापकर्मके उदयसे

उसके सब जहाज नष्ट हो गये ॥ ६८ ॥ परंतु सागरदत्तका कुछ पुण्यकर्म बाकी था इसलिये वह किसी एक लकड़ीके तख्ते पर बैठकर समुद्रके किनारे पर आ गया और फिर वहांसे चलकर सत्यघोषके पास आ पहुँचा ॥ ६९ ॥

उस समय वह सागरदत्त एक रंकके समान आ रहा था। उसे दूरसे ही आते हुए देखकर सत्यघोषने अपना विश्वास जमानेके लिये समीपवर्ती लोगोंसे कहा—हे लोगों! देखो यह मनुष्य जो आ रहा है सो ऐसा मालूम होता है कि इसका द्रव्य सब नष्ट हो गया है इसलिये यह व्याकुल हो रहा है। अब यह यहां आकर मुझसे रत्न मांगेगा ॥ ७०–७१ ॥ इतनेमें ही सागरदत्त वहां आ गया और उसने प्रणाम कर सत्यघोषसे कहा कि मैं जिन रत्नोंको धरोहर रख गया था कृपाकर अब उनको दे दीजिये ॥ ७२ ॥

सागरदत्तकी यह बात सुनकर सत्यघोषने उसका समस्त द्रव्य हरण करनेके लिये समीपवर्ती लोगोंसे कहा कि देखो जो बात मैंने पहिले कही थी वह ठीक निकली। तब सागरदत्तने कहा कि आप सब जानते हैं ॥ ७३–७४ ॥ तब सत्यघोषने कहा कि नहीं यह एक पागल मनुष्य है इसे यहांसे निकाल देना चाहिये। यह सुनते ही उन मनुष्योंने उसे जबरदस्ती वहांसे निकाल दिया ॥ ७५ ॥

बिचारा सागरदत्त सब तरहसे लाचार होकर रोता हुआ उसी नगरमें घूमने लगा और चिल्ला चिल्लाकर कहने लगा कि सत्यघोषने मेरे पांच माणिक्य मार लिये हैं ॥ ७६ ॥ राजभवनके पास एक इमलीका वृक्ष था। उसी पर चढ़कर सबेरेके समय यही कहकर वह प्रतिदिन पुकार मचाने लगा ॥ ७७ ॥

इसप्रकार पुकार करते करते उसे छह महीने हो गये तब एक

दिन रानीने राजासे कहा—हे देव ! यह पुरुष सदा एकसी पुकार करता है इसलिये यह पागल नहीं हो सकता। तब राजाने कहा कि क्या सत्यघोष ऐसी चोरी कर सकता है ? इसके उत्तरमें रानीने कहा—हे देव ! संभव है ऐसा हो। रानीके इतना कहने पर महाराजने आज्ञा दी कि तू ही इसकी परीक्षा कर ॥ ७८-८० ॥

इसप्रकार रानीको परीक्षा करनेकी आज्ञा मिल चुकी थी और प्रातःकाल ही वह पुरोहित महाराजके पास प्रणाम करनेके लिये आया था। रानीने उस दुष्ट पुरोहितको देखते ही बुलाया और पूछा—हे मित्र ! आज सवेरे ही कैसे आए ? पुरोहितने कहा—आज मेरा साला आया है वह भोजन करनेके लिये घर बैठा है इसीलिये मैं यहां चला आया ॥ ८१-८२ ॥ रानीने फिर कहा कि अच्छा आज कुछ देरतक यहां ही ठहरना। हे तात ! आज मुझे कुछ पाशा खेलनेकी इच्छा हुई है, मैं आज तुम्हारे ही साथ पांसेसे खेलूँगी। रानीके इतना कहते ही वहां पर महाराज आ पहुँचे और उन्होंने भी आज्ञा दे दी कि महारानीकी इच्छा पूरी करो ॥ ८३-८४ ॥

इसप्रकार रानीने पुरोहितको तो रोक लिया और निपुणमती नामकी किसी चतुर वेश्याको बुलाकर और उसे एकांतमें ले जाकर उसके कानमें सब बात समझाकर कह दी और कहा कि—देख तू पुरोहितके घर जा, पुरोहितानीसे कहना कि "पुरोहितजी महारानीके पास बैठे हैं उन्होंने उस परदेशी पागलके माणिक मगाये हैं उन माणिकोंसे उन्हें आवश्यक कार्य है मुझे इसीलिये आपके पास भेजा है।" इसप्रकार उसकी स्त्रीसे कहकर और उन माणिकोंको लेकर शीघ्र ही मेरे पास आ जा। यह सब समझ बूझकर वह वेश्या पुरोहितानीके पास गई, उससे जाकर सब बात कही परंतु उस पुरोहि-

तानीको भी सदा झूठ बोलनेका अभ्यास था और पुरोहितने न देनेके लिये वह रक्खा था इसलिये उसने वे माणिक दिये ही नहीं ॥ ८५-८८ ॥

तब लाचार होकर वह वेश्या रानीके पास लौट आई और आकर कहा कि वह पुरोहितानी उस माणिकोंको किसी तरह नहीं देती है ॥ ८९ ॥ इसी बीचमें रानीने उस पांसेके खेलमें पुरोहितकी एक अंगूठी जीत ली थी अतएव रानीने पुरोहितके चिह्न रूपमें वह अंगूठी भेजी तथापि पुरोहितानीने ब्राह्मणके डरसे वे रत्न नहीं दिये ॥ ९० ॥ इधर रानीने पुरोहितजीका यज्ञोपवीत (जनेऊ) और उसमें बन्धी हुई वह कैंची भी जीत ली थी इसलिये रानीने उस वेश्याके साथ चिह्न-रूपमें वे दोनों चीजें भेजकर वे रत्न मंगाये ॥ ९१ ॥

अबकी बार जनेऊ और कैंची दोनों चीजें देखकर पुरोहितानीको विश्वास होगया और उसने शीघ्र ही वे रत्न निकालकर दे दिये ॥ ९२ ॥ वेश्याने वे रत्न लाकर रानीको दे दिये और रानीने वे बहुमूल्य माणिक राजाको दिखाये ॥ ९३ ॥ अब राजाने उस सेठकी भी परीक्षा लेनी चाही। इसलिये उसने अपने घरके बहुतसे माणिकोंमें मिलाकर वे माणिक रख दिये और सेठको बुलाकर कहा कि इनमें जो माणिक तुम्हारे हों वे परीक्षा करके निकाल लो। तब सेठने देखकर अपने माणिक छांट लिये ॥ ९४-९५ ॥

सागरदत्तके इस कार्यसे राजाको बहुत सन्तोष हुआ। शुभ कर्मके उदयसे सागरदत्त सेठको अपने नगरका राजश्रेष्ठी बना लिया ॥ ९६ ॥ सो ठीक ही है क्योंकि सत्य और सन्तोषके माहात्म्यसे इस संसारमें क्या क्या प्राप्त नहीं होता है। सत्यके माहात्म्यसे देव भी सेवक समान हो जाते हैं फिर मनुष्योंकी राज्यके सुखकी तो बात

ही क्या है ॥ ९७ ॥ तदनन्तर राजाने महा झूठ बोलनेवाले सत्य-घोषसे पूछा कि बता तूने यह काम किया है या नहीं ॥ ९८ ॥

इसके उत्तरमें पुरोहितने कहा कि हे देव ! मैं ऐसा निंद्य कर्म कभी नहीं कर सकता । क्या मैं ऐसा महा पाप करनेवाला काम कर सकता हूँ ! ॥ ९९ ॥ तदनंतर महाराज उसके कामसे बहुत ही क्रोधित हुए और उन्होंने उसके लिये तीन प्रकारका दण्ड निश्चित किया । या तो वह तीन थाली गोबरकी खावे या वह दुर्मति किसी मल्लके तीन घूँसे खावे अथवा उस दोषको शांत करनेके लिये अपना सब धन दे देवे ॥ १००-१०१ ॥

पुरोहितने सोच विचार कर पहिले गोबर खाना प्रारंभ किया । जब वह उसे न खा सका तब मल्लके घूँसे खाये उनकी भी पूरी चोट न सह सका तब अपना सब धन देना प्रारंभ किया तथा उस लोभी और पापीने फिर गोबर खाना आदि तीनों प्रकारके दण्डोंको सहा । इस प्रकार उस नीचको तीनों प्रकारके दण्ड सहन करने पड़े ॥ १०२-१०३ ॥

इस प्रकार तीनों प्रकारके दण्डोंको भोगकर वह मरा और अतिशय लोभके कारण राजाके भण्डारमें गंधन् नामका सर्प हुआ ॥ १०४ ॥ वहांपर वह दिव्य अग्निसे मरकर महा पाप-कर्मके उदयसे किसी वनमें कुर्कुट नामका सर्प हुआ ॥ १०५ ॥ वहांपर उसने किसी व्रती राजाको काटा था इसलिये मरकर नरकमें जा उत्पन्न हुआ । इसप्रकार केवल मिथ्या भाषण करनेसे अनेक दुःखोंको भोगता हुआ बहुत दिनतक संसारमें परिभ्रमण करता रहा ॥१०५॥ देखो केवल मिथ्या भाषण करनेसे ही सत्यघोष पुरोहितने तीनों लोकोंमें निंद्य ऐसे घोर दुःख सहे, राजाके दिये हुए तीनों प्रकारके

दंड सहे और फिर मरकर पापरूपी जलसे भरे हुए तथा अनेक दुःखोंसे परिपूर्ण संसारसागरमें गोते खाये ॥ १०६–१०७ ॥

इस महा निंद्य असत्य वचनके फलसे जीवोंका घात करनेवाला मूर्ख राजा वसु आदि और भी अनेक जीव नरकमें गये हैं वे सब असत्य रूप महापापसे कलंकित थे इसलिये इस संसारमें उन सबकी कथा भी कोई नहीं कह सकता ॥ १०८–१०९ ॥ इस कथाको सुनकर विद्वान् लोगोंको इस लोक और परलोक दोनों लोकोंमें दुःख देनेवाले असत्य वचन प्राणोंका नाश होनेपर भी कभी नहीं कहने चाहिये ॥ ११० ॥

हे वत्स! यदि तुझे मोक्ष प्राप्त करना है तो तू सदा सत्य वचन ही बोल, क्योंकि संसारमें सत्य वचन ही समस्त श्रुतज्ञानको प्रकट करनेवाले हैं, कीर्तिरूपी बेलको बढ़ानेके लिये अच्छे पानीके समान है, पुण्यरूपी वनके लिये बरसाती मेघ हैं, निर्मल सुखके समुद्र हैं, बुद्धि सिद्धिके देनेवाले हैं, शुभ गतिके कारण हैं और धर्मके स्वामी तीर्थंकर भी इसकी सेवा करते हैं। इसलिये तू सदा सत्य वचन ही बोल ॥ १११ ॥

इसप्रकार आचार्यश्री सकलकीर्ति विरचित प्रश्नोत्तर श्रावकाचारमें,
सत्यव्रतका निरूपण करनेवाला तथा धनदेव और
सत्यघोषकी कथाको निरूपण करनेवाला यह
तेरहवां सर्ग समाप्त हुआ।

चौदहवां सर्ग।

जो अनंत गुणोंके सागर हैं, अनंत गुणोंको प्राप्त हुए हैं और अनंत गुण देनेवाले हैं ऐसे श्री अनंतनाथ भगवानको मैं नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥समस्त सुखोंके महासागर ऐसे सत्यव्रतका निरूपण हो चुका अब अहिंसाव्रतकी सिद्धिके लिये अचौर्य व्रतको कहते हैं ॥ २ ॥ श्री जिनेन्द्रदेवने इस अचौर्यव्रतको अहिंसाव्रतकी रक्षाके लिये ही निरूपण किया है। यह व्रत सब दोषोंसे रहित है और यश देनेवाला है ॥३॥ जो धन धान्य आदि स्थूल पदार्थोंको मन वचन कायसे विना दिया हुआ ग्रहण नहीं करता है उसके यह अचौर्याणु-व्रत कहलाता है ॥ ४ ॥

हे वत्स ! किसी वनमें, मार्गमें वा किसी घरमें पड़े हुए, भूले हुए, नष्ट हुए, स्थापन किये हुए और धरोहर रक्खे हुए धनको दूरसे ही छोड़ ॥ ५ ॥ यदि तू उसके ग्रहण करनेका त्याग नहीं कर सकता, उसे नहीं छोड़ सकता तो उस धनको लेकर अपना पुण्य बढ़ानेके लिये पूजा आदि कामोंके लिये श्री जिनालयमें दे देना चाहिये ॥ ६ ॥ इस संसारमें सर्पको पकड़ लेना अच्छा परन्तु दूसरेका धन लेना अच्छा नहीं क्योंकि सर्पके पकड़नेसे एक जन्म ही नष्ट होगा किंतु दूसरेका धन लेनेसे असंख्य भवों तक दुःख प्राप्त होते रहते हैं ॥ ७ ॥ भीख मांगकर पेट भर लेना अच्छा परंतु दूसरेके द्रव्यको लेकर घी बूरेसे तर शालि चावलोंका खाना अच्छा नहीं ॥ ८ ॥

हलाहल विष खालेना अच्छा परंतु दूसरेका धन ले लेना अच्छा नहीं क्योंकि विष खानेसे एक ही जन्मका भय है किंतु दूसरेका धन लेनेसे उन्हें करोड़ों जन्म तक दुःख भोगना पड़ेगा ॥ ९ ॥ इस संसारमें जो दुष्ट दूसरेका थोड़ा धन भी लेता है वह वध बंधनके

अनेक दुःखोंको पाकर अन्तमें नरकका ही स्वामी होता है ॥१०॥ चोरी करनेवालेका हृदय न तो किसी वनमें स्वस्थ रहता है न किसी घरमें स्वस्थ रहता है न संसारमें कहीं स्वस्थ रहता है और न भोजन करनेमें कहीं जी लगता है क्योंकि उसे अपने मरनेकी, पकड़े जानेकी आशंका सदा बनी रहती है ॥ ११ ॥ यदि चोरी करनेवाला अपना कुटुम्बी ही हो तो उससे डरकर माता भी उसे छोड़ देती है, पुत्री भी छोड़ देती है, पिता भी छोड़ देता है, स्त्री भी छोड़ देती है और भाई बन्धु आदि सब कुटुम्बी उसे छोड़ देते हैं ॥ १२ ॥

जो अनेक प्रकारके छल कपटोंसे दूसरेका थोड़ा भी धन लेता है उसके घरका सब धन नष्ट हो जाता है इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ १३ ॥ दूसरोंके वस्त्र आदिकी लालसा रखनेवाले कपटी चोरको चोर समझकर सज्जन लोग भी तृणके समान उसे मारते हैं ॥१४॥

महापुण्यको प्रगट करनेवाली और तीनों लोकोंमें रहनेवाली ऐसी समस्त लक्ष्मी नीतिमार्गसे ही पुण्यवानके घर आ जाती है ॥ १५ ॥ अन्यायरूप आचरण करनेसे घरमें रहनेवाली लक्ष्मी भी उस पुण्यहीन मनुष्यके घरसे निकलकर धर्मात्माके घर चली जाती है ॥ १६ ॥ यदि चोरीके व्यापारसे ही लक्ष्मी घरमें रहने लगे तो दुष्ट भील आदि चोर लोगोंके घर ही बहुतसा धन क्यों नहीं दिखाई देता ॥ १७ ॥ जो पुरुष केवल धनके लिये सदोष व्यापार करता है वह कोढी होता है और भवभवमें दरिद्री होता है ॥ १८ ॥

जो पुरुष जिस किसी भी उपायसे दूसरेके धनको हरण करते हैं उनके हाथ पैर आदि अङ्ग उपाङ्ग काटे जाते हैं और अन्तमें उन्हें सातवें नरकके दुःख भोगने पड़ते हैं ॥ १९ ॥ संसारी जीवोंको धन नष्ट होनेपर अथवा मरने पर जैसा दुःख होता है वैसा दुःख इस

संसारमें और कहीं नहीं होता क्योंकि प्राण और धनके समान और कोई प्रिय है ही नहीं ॥ २० ॥ अरे ऐसा कौन बुद्धिमान है जो केवल दो मुट्ठी धान्योंके लिये चोरी ठगी आदिसे होनेवाले और अनेक दुर्गतियोंके दुःख देनेवाले पापोंको करे ॥ २१ ॥

जो कुटुम्बी लोगोंके उपभोगके लिये दूसरोंका धन हरण करते हैं वे भी कुटुम्बको छोड़कर नरकरूपी महासागरमें गोते खाते हैं ॥ २२ ॥ यह प्राणी जिस कुटुम्बके लिये धन लेता है वह कोढ़ आदि अनेक रोगोंको भोगता है, तथा विना कुटुम्बके केवल अकेला ही नरकके दुःख भोगता है ॥ २३ ॥ यही समझकर हे भव्य ! तू विषैले सर्पके समान अथवा अभक्ष्य भक्षणके समान असारभूत तथा पाप क्लेश और अपयशको देनेवाले दूसरेके धन ग्रहण करनेका त्याग कर ॥ २४ ॥ जो प्राणी सन्तोषपूर्वक सब अतीचारोंको छोड़-कर इस अचौर्यव्रतको पालन करता है वह स्वर्गादिक सुख पाकर अनुक्रमसे मोक्ष प्राप्त करता है ॥ २५ ॥

प्रश्न—हे स्वामिन् ! मुझपर कृपाकर आज इस अचौर्य व्रतके सब अतिचारोंको कह दीजिये ॥ २६ ॥

उत्तर—हे धीमन् ! व्रतोंकी शुद्धिके लिये मैं व्रतोंको दूषित करनेवाले पांचों अतिचारोंको कहता हूं, तू चित्त लगाकर सुन ॥ २७ ॥ स्तेनप्रयोग, तदाहृतादान, विरुद्ध राज्यातिक्रम, हीनाधिक मानोन्मान, और प्रतिरूपक व्यवहार ये पांच अचौर्य व्रतके अतिचार श्री जिनेन्द्र-देवने कहे हैं ॥ २८–२९ ॥ चोरी करनेके लिये दूसरोंको उपदेश देना या चोरीके उपाय बतलाना अचौर्य व्रतका स्तेनप्रयोग नामका पहिला अतिचार है ॥ ३० ॥ अपने विना किसी उपदेशके जो चोरी करके लाया है उसके धनको घरमें रख लेना तदाहृतादान (चोरीका धन ग्रहण करना) नामका दूसरा अतिचार है ॥ ३१ ॥

जो राजनीतिको छोड़कर व्यापार करता है और अधिक धन ग्रहण करता है उसके विरुद्ध-राज्यातिक्रम नामका तीसरा अतिचार लगता है ॥ ३२ ॥ जो तौलनेके बांट और नापनेके गज पायली आदिको लेनेके लिये अधिक रखता है और देनेके लिये कम रखता है उसके हीनाधिक मानोन्मान नामका चौथा अतिचार लगता है॥३३॥ जो उत्तम पदार्थोंमें कम कीमतके पदार्थ मिलाकर चलाता है और सुवर्ण हींग आदिको कृत्रिम बनाता है उसके प्रतिरूपक व्यवहार नामका अतिचार लगता है ॥३४॥ जो प्राणी इन सब अतिचारोंको छोड़कर और केवल एक संतोष धारणकर इस अचौर्यव्रतको पालन करता है उसके समस्त सम्पदा स्वयमेव आजाती है ॥ ३५ ॥

इस संसारमें दूसरेका धन ग्रहण करनेसे अनेक प्रकारके दुःख सहने पड़ते हैं, धर्मका विध्वँस होजाता है, यह पापरूपी वनको सींचनेके लिये मेघके समान है, दुःख और संतापोंका घर है, नरक-रूपी घरका कुमार्ग है और धर्मरूपी वृक्षको जलानेके लिये अग्नि है इसलिये हे भव्य ! ऐसे इस परधन हरण करनेका तू सदा त्याग-कर ॥ ३६ ॥ यह अचौर्य अणुव्रत सब दोषोंसे रहित है, संतोषकी जड़ है, यश और प्रसन्नताको बढ़ानेवाला है, स्वर्ग-मोक्षका कारण है, धर्म और व्रतोंका घर है और समस्त विद्वान् इसकी सेवा करते हैं इसलिये हे भव्य ! तू भी सदा इसका पालन कर ॥ ३७ ॥

जो प्राणी विना दिये हुए पदार्थोंको ग्रहण नहीं करता वह देवोंके द्वारा भी पूज्य होता है और जो विना दिये हुए दूसरेके धनको ले लेता है वह वध बंधन आदि अनेक दुःखोंको भोगता है ॥३८॥

प्रश्न—हे प्रभो ! अचौर्य व्रतके पालन करनेसे किसको उत्तम फल मिला है तथा चोरी करनेसे किसको दुःख मिला है उन दोनोंकी कथा कृपाकर मुझसे कहिये ॥ ३९ ॥

उत्तर—हे मित्र ! तू चित्त लगाकर सुन । मैं धर्म बढ़ानेके लिये अथवा मोक्ष प्राप्त करनेके लिये दोनोंकी कथा कहता हूं ॥४०॥ बिना दिये हुए पदार्थोंका त्याग कर देनेसे (अचौर्य व्रत पालन करनेसे) राजपुत्र वारिषेण इस जन्ममें देवोंके द्वारा, प्रजाके द्वारा और राजा आदिके द्वारा पूज्य हुआ है ॥ ४१ ॥ इस धीरवीर वारिषेणकी कथा हमने पहिले सम्यग्दर्शनके स्थितिकरण अंगके वर्णन करनेमें कही है, चतुर पुरुषोंको वहांसे जान लेना चाहिये ॥ ४२ ॥

अब आगे चोरी करनेवालोंकी कथा कहता हूं । वत्स देशके कौशांबी नगरमें पुण्यकर्मके उदयसे सिंहरथ नामका राजा राज्य करता था । उसकी रानीका नाम विजया था ॥ ४३ ॥ उसी नगरमें एक दुष्ट चोर रहता था वह पापी अपने छल कपटसे दिनमें तपसीका भेष बनाये रखता था, पंचाग्नि तप तपता था और मैं " दूसरेकी भूमिका भी स्पर्श नहीं करता " इस प्रकार प्रगट करता हुआ वह एक बडके पेडके नीचे छींका टांगकर रहता था । परन्तु वह दुष्ट रात्रिको प्रतिदिन चोरी करता था ॥ ४४–४५ ॥

प्रतिदिन चोरी होनेके कारण किसी एक दिन सब महाजनोंने मिलकर महाराजसे प्रार्थना की कि महाराज, सब नगर लूटा जा रहा है । महाराजने क्रोधित होकर कोतवालको बुलाया और कहा कि तू सात दिनके भीतर या तो चोरको लाकर उपस्थित कर अथवा चोरी होनेके अपराधमें तू अपना मस्तक दे ॥ ४६–४७ ॥ कोतवालने बहुत ढूंढा परंतु चोरका कहीं पता न चला तब वह बड़ी चितामें पड़ा । वह इसी चितामें डूबा हुआ था कि इतनेमें ही सायंकालके समय किसी ब्राह्मणने आकर उससे भोजनकी प्रार्थना की ॥ ४८ ॥

कोतवालने कहा—हे ब्राह्मण ! यहां तो मेरे प्राणोंमें भी

संदेह है तू मुझसे ही भोजन मांग रहा है ॥ ४९ ॥ कोतवालकी यह बात सुनकर वह ब्राह्मण कहने लगा कि तुझे आज अपने प्राणोंका संदेह क्यों है, तू मुझसे सब कथा कह ॥ ५० ॥ इसके उत्तरमें कोतवालने सब हाल कह सुनाया तब ब्राह्मणने फिर पूछा कि क्या इस नगरमें कोई ऐसा मनुष्य नहीं है जो अत्यंत निस्पृह हो ? कोतवालने कहा कि हां है, एक तपसी है जिसके साथ अन्य बड़े २ तपस्वी हैं, क्या उसके चोर होनेकी संभावना हो सकती है ? ॥ ५१-५२ ॥ तब ब्राह्मणने कहा कि वह अत्यंत निस्पृह है इसलिये वही चोर है। हे मित्र ! तू संवेग उत्पन्न करनेवाली मेरी कथा सुन ॥ ५३ ॥

मेरी ही ब्राह्मणी बड़ी प्रसिद्ध महासती थी। वह अपने शरीरसे दूसरे पुरुषके शरीरका स्पर्श तक नहीं होने देती थी ॥ ५४ ॥ जब वह व्यभिचारिणी पापिनी अपने पुत्रको भी दूध पिलाती थी तो कपटपूर्वक अपने शरीरको ढककर पिलाती थी ॥ ५६ ॥ परंतु वही ब्राह्मणी विषयोंमें लंपट होकर अपने ही घरपर किसी ग्वालियेके साथ बड़े आनंदसे कुकर्म करती थी ॥ ५६ ॥

हे मित्र ! उसीके कुकृत्यको देखकर मुझे वैराग्य उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार उस ब्राह्मणने अपनी स्त्रीकी निन्दा की तथा भोग शरीर और घर आदिकी निन्दा की ॥५७॥ वह ब्राह्मण फिर कहने लगा—मैं मार्गके खर्चके लिये किसी बनी हुई लकड़ीमें थोड़ासा सोना रखकर तीर्थयात्राके लिये निकला ॥ ५८॥ चलते चलते मार्गमें एक ब्रह्मचारी मिला। परन्तु मैं उसका विश्वास नहीं करता था। मैं बड़े यत्नसे उस लकड़ीकी रक्षा करता था ॥ ५९ ॥ जिसके भीतर सोना रक्खा हुआ है ऐसी वह लकड़ी उस ब्रह्मचारीने ताड़ ली। किसी एक दिन हम दोनों रातको एक कुंभारके घर सोए ॥ ६० ॥

सवेरे ही उठकर वहांसे चल पड़े। दूर जाकर उसने देखा कि उसके मस्तक पर एक बहुत पुराणा तृण लगा हुआ है। उसे देखकर उस दुष्टने मुझसे कहा कि "हा हा देखो, यह विना दिया हुआ तृण मेरे साथ चला आया है और टूट गया है" यह कहकर वह लौटा, उस कुंभारके घर गया, तृणको वहां रक्खा और फिर शामको आकर मुझसे मिला। फिर संन्यासी भिक्षाके लिये गया और कुत्ता आदिको मारनेके लिये वह लकड़ी मुझसे मांगी ॥ ६१–६३ ॥

मैंने भी उसे अत्यंत निर्लोभ जानकर उसपर विश्वास किया और वह अपनी लकड़ी रक्षा करनेके लिये उसको दे दी ॥ ६४ ॥ परन्तु वह दुष्ट लोभके वश होकर उस लकड़ीको लेकर न जाने कहां चला गया। अरे ! इस संसारमें जो जबर्दस्ती दूसरेका धन ले लेते हैं वे अनेक दुर्गतियोंके दुःख भोगते हैं ॥ ६५ ॥

सब धन नष्ट हो जानेके कारण मुझे बहुत पश्चात्ताप हुआ, परन्तु अन्तमें चुप हो जाना पड़ा। फिर मैं वहांसे अकेला चल पड़ा। चलते २ देखा कि किसी पर्वत पर जंगलमें एक गीध रहता था उसी वृक्षपर रातको बहुतसे पक्षी आकर ठहरते थे। जब अन्य पक्षियोंने उसे हटाना चाहा तो उस बूढ़े गीधने कहा कि "हे प्रभो ! मैं अत्यन्त बूढ़ा हूँ कहीं दूसरी जगह जानेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं है। कदाचित् मैं तुम्हारे बच्चोंका भक्षण करलूँ, यह तुम्हें डर हो तो तुम सब लोग मेरी मुख (मेरी चोंच) बांध दो और फिर निश्चिन्त होकर चले जाओ।" उसकी यह बात सबने मान ली और सवेरे ही उसका मुँह बांधकर सब पक्षी चले गये ॥ ६६–६९ ॥

उन पक्षियोंके चले जाने पर उस बूढ़े गीधने अपने पंजोंसे चोंचके बन्धनको उतारा और पक्षियोंके बच्चोंको खा डाला ॥ ७० ॥

जब उन पक्षियोंके आनेका समय हुआ तब उस गीधने पंखोंसे वह बन्धन चोंचके ऊपर चढ़ा लिया और फिर खालीसा पेट दिखलाता हुआ कपटपूर्वक चुपचाप बैठ गया ॥ ७१ ॥ यह कृत्य देखकर मैं आगे चला । मार्गमें मैंने देखा कि एक अपसर नामका पापी चोर तपसीका रूप धारण कर खड़ा है । उसने अपने मस्तकके ऊपर दोनों हाथ ऊँचे कर रक्खे थे और उन दोनों हाथोंमें एक पत्थरकी शिला ले रक्खी थी । इस प्रकार शिला लिये वह रातदिन फिरा करता था ॥ ७२–७३ ॥

वह प्रायः गढ़े आदि निर्जन स्थानमें जाकर खड़ा होता था । जब कभी सुवर्णा-लंकारोंसे सुशोभित कोई धनी आदमी आकर उसे नमस्कार करता तभी वह उसके ऊपर वह शिला पटक देता था और लोभके वश हो इस प्रकार उसे मारकर उसका सब धन हरण कर लेता था ॥ ७४ ॥ इस प्रकार संसारभरको दुःख देनेवाले चार पापियोंको देखकर मैंने यह श्लोक बनाया है ॥ ७५ ॥

> बालमस्पर्शिका नारी, ब्राह्मणोऽतृणग्राहकः ।
> वने गृद्धश्च पक्षी स्याद्, अमेदपसरः पुरे ॥

इस संसारमें अपने बच्चेको भी स्पर्श न करनेवाली स्त्री, तृणको भी वापस लौटा देनेवाला ब्राह्मण, वनमें रहनेवाला बूढ़ा गीध और अपसर नामका चोर भी फिरा करता है ॥ ७६ ॥ इस प्रकार उस ब्राह्मणने उस कोतवालसे चार कथाएँ कहीं तथा उसको धैर्य बंधाकर सायंकालके समय वह स्वयं उस तपसीके पास गया ॥ ७७ ॥ वह ब्राह्मण छल कपटकर वहीं बैठ गया, हटानेसे भी नहीं हटा और कहने लगा कि मुझे रात्रिमें कुछ दिखाई नहीं देता है ॥ ७८ ॥

उन तपसियोंने उसके नेत्रोंके सामने बहुतसी उँगली दिखाकर

पूछा, बहुतसे घास पान आदि रक्खे और सब तरहसे उसकी परीक्षा करनी चाही परन्तु वह ब्राह्मण तो मौन धारणकर चुप होरहा ॥७९॥ आधी रातके समय उस ब्राह्मणने देखा कि सब तपसी धन ला लाकर एक अन्धे कुएमें रख रहे हैं। ब्राह्मणने छिपकर सब कृत्य देख लिया ॥ ८० ॥ सवेरे ही वह कोतवाल मारा जानेवाला था परन्तु उस ब्राह्मणने आकर उसकी रक्षा की और उस तपसी चोरको पकड़वाया। वहांपर उसे वध बन्धन आदिके अनेक दुःख भोगने पड़े और ऐसे ऐसे महा दुःख भोगने पड़े जो वचनसे भी नहीं कहे जा सकते। उन सबको भोगकर और कोतवालके द्वारा मारा जाकर उस पापीने अनेक दुर्गतियोंमें परिभ्रमण किया ॥ ८१–८३ ॥

तपसीकी यह कथा सुनकर पापोंसे डरनेवाले महाजनोंको दांतोंको साफ करनेके लिये विना दिया हुआ एक तृण भी नहीं लेना चाहिये ॥८४॥ इस चोरी करनेके कारण शिवभूति आदि और भी बहुतसे नीच पुरुष नष्ट हुए हैं। इस संसारमें उन सबकी कथाओंको भला कौन कह सकता है ॥ ८५ ॥

देखो, दूसरेका धन हरण करनेके कारण मूर्ख तपसीको वध बन्धन आदिके अनेक प्रकारके दुःख भोगने पड़े और उन्हीं पापोंके कारण प्राणोंका त्याग कर सब तरहके पापोंसे परिपूर्ण घोर दुःखोंकी खानि तथा पाप और अपकीर्तिको बढ़ानेवाली ऐसी अनेक दुर्गतियोंमें परिभ्रमण करना पड़ा। यही समझकर चोरी करनेका त्याग सदाके लिये कर देना चाहिये ॥ ८६ ॥

इसप्रकार आचार्यश्री सकलकीर्ति विरचित प्रश्नोत्तर श्रावकाचारमें अचौर्याणुव्रतका स्वरूप और वारिषेण तथा तपसीकी कथाको कहनेवाला यह चौदहवां सर्ग समाप्त हुआ।

पन्द्रहवां सर्ग ।

जो धर्मके देनेवाले हैं, धर्मके स्वामी हैं, पूर्ण धर्ममय हैं और धर्मकी खानि हैं ऐसे श्री धर्मनाथ जिनेन्द्रदेवको मैं केवल धर्मकी सिद्धिके लिये नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ अब मैं तीसरे अचौर्याणुव्रतका स्वरूप कहकर समस्त सुखोंको देनेवाले और परम उत्कृष्ट ऐसे चौथे ब्रह्मचर्य अणुव्रतका स्वरूप कहता हूँ ॥ २ ॥ परस्त्रीके त्याग करनेरूप यह चौथा ब्रह्मचर्याणुव्रत श्री जिनेन्द्रदेवने सबमें सार बतलाया है, यही व्रत समस्त जीवोंके लिये परम पवित्र और श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥ जो अपनी स्त्रीमें सन्तोष रखकर अन्य स्त्रियोंको माताके समान देखता है, उसके यह स्थूल शीलव्रत वा स्थूल ब्रह्मचर्य अथवा ब्रह्मचर्याणुव्रत होता है ॥ ४ ॥

इस चौथे ब्रह्मचर्य अणुव्रतको पालनकर जीवोंको विरक्त होना चाहिये और किंपाकफलके समान परस्त्रियोंका त्याग कर देना चाहिये ॥ ५ ॥ परस्त्रीके संसर्गसे मनुष्योंको कलंक लगता है और जीवनपर्यंत अपयशको देनेवाला व्रत भंग होता है ॥ ६ ॥ बुद्धिमान पुरुषोंको परस्त्रियोंके साथ एक क्षणभर भी संसर्ग नहीं करना चाहिये। क्योंकि परस्त्रियोंका संसर्ग कलंक उत्पन्न करनेवाला है और अत्यन्त निंद्य है ॥ ७ ॥ स्त्रियोंका मन मक्खनके समान है और पुरुषोंका मन अग्निके समान है फिर भला दोनोंका संसर्ग होनेपर वे दोनों कबतक स्थिर रह सकते हैं ॥८॥ केवल इस लोकमें प्राणोंको हरण करनेवाली क्रोधित हुई सर्पिणीका आलिंगन कर लेना अच्छा परंतु इस लोकमें प्राणोंको हरण करनेवाली और परलोकमें प्राणोंको नाश करनेवाली परस्त्रीका आलिंगन करना अच्छा नहीं ॥ ९ ॥

इस संसारमें परस्त्रीसेवनके समान अन्य कोई पाप न हुआ है न

हो सकता है। संसारमें इसके समान और कोई महानिंद्य काम नहीं है और न इसके समान मनुष्योंके दुःख देनेवाला अन्य कोई काम है ॥ १० ॥ मूर्ख लोगोंको परस्त्रीके साथ भोगोंकी प्राप्ति हो या न हो किन्तु परस्त्रीकी इच्छा और चिन्तासे ही उन्हें महापाप लग जाता है ॥ ११ ॥ जो मूर्ख किसी निर्जन स्थानमें परस्त्रीके समीप जाता है वह सुखी किसप्रकार हो सकता है क्योंकि वहां तो उसे सदा अपने मारे जानेकी ही आशंका लगी रहती है ॥ १२ ॥

मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि परस्त्री समागम करनेवालोंकी बुद्धि नष्ट होजाती है इसलिये उन मूर्खोंको परस्त्रीके समागमसे जो दुःख उत्पन्न होता है उसे ही वह सुख मान लेता है ॥ १३ ॥ विषयोंसे व्याकुल हुए जो मनुष्य परस्त्रीकी इच्छा करते हैं वे वध बंधनके अनेक क्लेश सहते हैं, उनका सब धन हरण कर लिया जाता है और मरकर परलोकमें दुःखरूपी अनेक मछलियोंसे भरे हुए असह्य, विषम और घोर ऐसे नरकरूपी महासागरमें डूबते हैं ॥ १४-१५ ॥

जो पुरुष परस्त्रियोंके साथ आलिंगनादिक करते हैं, परलोकमें नरकमें जाकर उनके शरीरसे, अग्निसे लाल की हुई लोहेकी पुतलियां चिपकाई जाती हैं ॥१६॥ परस्त्रीरूपी तेलके सींचनेसे यह कामरूपी अग्नि कभी शांत नहीं होती और ब्रह्मचर्यरूपी जलके सींचनेसे यह कामाग्नि अपने आप शान्त हो जाती है ॥ १७ ॥ जो नीच पुरुष कामज्वरको परस्त्री रूपी औषधिसे दूर करना चाहते हैं वे अग्निको तेलसे बुझाना चाहते हैं ॥ १८ ॥ हालाहल विष खा लेना अच्छा, अग्निमें जल मरना अच्छा, समुद्रमें डूब जाना अच्छा तथा पर्वतसे गिर पड़ना अच्छा परन्तु मनुष्योंका शील रहित जीवित रहना अच्छा नहीं ॥ १९ ॥ इसलिये हे भव्य ! अपने हृदयमें वैराग्य धारण कर

और हृदयको शीलव्रतसे सुशोभित कर सर्पिणीके समान परस्त्रीका सर्वथा त्याग कर ॥ २० ॥

इसी प्रकार मद्य, मांस आदिमें आशक्त होनेवाली, चांडालादिकके साथ लम्पटता धारण करनेवाली तथा अपयश, पाप और दुःखादिको उत्पन्न करनेवाली वेश्याका भी तू सर्वथा त्याग कर ॥२१॥ यह वेश्या समस्त व्यसनोंको उत्पन्न करनेवाली है, क्रूर है कुटिल है, पापिनी है, धन और धर्मको चुरानेवाली है और इसका मुख स्वाभाविक कुटिल (कहती कुछ और करती कुछ) है ऐसी वेश्याका तू दूरसे ही त्याग कर ॥ २२ ॥

यद्यपि यह वेश्या ऊपरसे गोरे चमड़ेसे मढ़ी हुई है, बाहरसे वस्त्र आभरणोंसे सुशोभित हो रही है, इसका स्वर भी मधुर है, गीत नृत्य करनेवाली है, रूपवती है और अच्छीसी जान पड़ती है तथा हे मित्र! यह नीच प्राणियोंके ही मनमें क्षोभ उत्पन्न करती है, यही विचार कर हे मित्र! इस स्वेच्छाचारिणी वेश्याका तू त्याग कर ॥ २३-२४ ॥

जिस प्रकार कुत्ता खप्परको चाटता है उसी प्रकार जो नीच मद्यकी लारसे भरे हुए वेश्याके मुंहको चाटता है उसे स्वानपुत्र या कुत्ता क्यों नहीं कहना चाहिये ॥२५॥ जिस प्रकार घोड़ा गर्दभीका सेवन कर अपनी ज्ञातिको नष्ट करता है उसी प्रकार जो कुमार्गगामी पुरुष नीच जातिका सेवन करते हैं वे खच्चरोंके समान अपनी जातिको नष्ट कर देते हैं क्योंकि खच्चरोंके फिर संतान नहीं होती ॥ २६ ॥

धर्मरूप आचरण करनेसे जातिहीन पुरुष भी स्वर्गमें जा उत्पन्न होता है किन्तु पाप करनेसे वा धर्मका नाश करनेसे यह प्राणी दोनों लोकोंमें दुर्गतिको प्राप्त होता है ॥ २७ ॥ जो मनुष्य शीलरहित हैं

वे जीवित रहते हुए भी मरे हुएके समान हैं, क्योंकि जिस प्रकार किसी मरे हुए पुरुषमें कोई गुण नहीं ठहर सकते उसी प्रकार उस शीलरहित पुरुषमें भी कोई गुण नहीं ठहर सकते ॥ २८ ॥ जो मूर्ख अपनी स्त्रीको छोड़कर परस्त्रीका सेवन करते हैं वे अपने उत्तम भोजनोंको छोड़कर चांडालके घर सबका उच्छिष्ट खाते हैं ॥ २९ ॥

जो नीच पुरुष वेश्याओंका वा परस्त्रियोंका समागम करते हैं वे चांडालके समान तीनों लोकोंमें अस्पृश्य (न छूने योग्य) गिने जाते हैं ॥ ३० ॥ यही समझकर हे मित्र ! पहिले अपनी स्त्रीमें ही पुण्य बढ़ानेवाला संतोष धारण कर और फिर सदाके लिये परस्त्रीका त्याग कर ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य मुक्तिरूपी स्त्रीके चित्तको प्रसन्न करनेवाला ब्रह्मचर्य पालन करते हैं वे स्वर्गका साम्राज्य पाकर अन्तमें मुक्तिके स्वामी होते हैं ॥ ३२ ॥

जो उत्तम विद्वान् एकाग्रचित्तसे शीलका पालन करते हैं उनकी इन्द्र भी आकर स्वयं सेवा करता है ॥ ३३ ॥ जो एक दिन भी ब्रह्मचर्य पालन करता है वह नौ लाख जीवोंके अभयदान देनेका पुण्य प्राप्त करता है ॥ ३४ ॥ शीलवान पुरुष इस लोक और पर-लोकमें मनुष्य, देव, विद्याधरोंके द्वारा पद पदपर पूज्य होता है और अन्तमें स्वर्ग मोक्षका स्वामी होता है ॥ ३५ ॥

इस संसारमें जो स्त्रियां शीलरूपी आभरणको धारण करती हैं वे देवोंके द्वारा पूजा प्रतिष्ठा पाकर सोलहवें स्वर्गमें जाकर देव होती हैं ॥ ३६ ॥ जिसका निर्मल शीलरूपी रत्न स्त्रियोंके कटाक्षरूपी लुटेरोंके द्वारा नहीं हरा गया वही पुरुष संसारमें पुण्यवान है ऐसा मैं मानता हूं ॥ ३७ ॥ जिनका शीलरूपी श्रेष्ठ भंडार मनरूपी राजाके द्वारा प्रेरणा किये गये काम और इंद्रियरूपी चोरोंके द्वारा

नहीं लूटा गया वे ही पुरुष संसारमें धन्य हैं ॥ ३८ ॥ जिन्होंने स्त्रियोंके किये हुए अनेक उपद्रवोंके होनेपर तथा सैकड़ों कठिन परिषहोंके उपस्थित होने पर अपना शीलरूपी माणिक-रत्न नहीं छोड़ा है उनके लिये मैं बार बार नमस्कार करता हूँ ॥ ३९ ॥

बहुत कहनेसे क्या, थोड़ेमेंसे इतना समझ लेना चाहिये कि यह शीलव्रत सब व्रतोंका सार है और धर्मरूपी रत्नोंका भंडार है इसलिये हे मित्र! तू इसको सब तरहसे पालन कर ॥ ४० ॥ जो बुद्धिमान अतिचार रहित इस शीलव्रतको पालन करता है वह इस संसारमें पूजा प्रतिष्ठा पाकर अंतमें स्वर्ग मोक्ष प्राप्त करता है ॥४१॥

प्रश्न—हे प्रभो! यद्यपि यह शीलव्रत स्वयं निर्मल है तथापि इसमें मल उत्पन्न करनेवाले अतिचारोंको आप कृपाकर कहिये ॥ ४२ ॥

उत्तर—हे वत्स! सुन। इस व्रतमें मल उत्पन्न करनेवाले स्त्रियोंके संसर्गमें और अत्यंत अशुभ कर्मके उदयसे उत्पन्न हुए अतिचारोंको मैं कहता हूँ ॥ ४३ ॥ अन्यविवाहकरण, परिग्रहीता इत्वरिकागमन, अपरिग्रहीता इत्वरिकागमन, अनंगक्रीडा और कामतीव्राभिनिवेश ये पांच ब्रह्मचर्याणुव्रतके अतिचार कहलाते हैं ॥४४-४५॥

जो अज्ञानी जीव दूसरोंके पुत्र पुत्रियोंके विवाह करते हैं उनके ब्रह्मचर्यमें मल उत्पन्न करनेवाला अन्यविवाहकरण नामका पहिला अतिचार लगता है ॥ ४६ ॥ जो पुरुष रागपूर्वक किसीकी विवाहिता व्यभिचारिणीकी इच्छा करते हैं उनके शीलव्रतमें परिग्रहीता इत्वरिकागमन नामक दूसरा अतिचार होता है ॥ ४७ ॥ जो मूर्ख पतिरहित परस्त्रियोंकी अथवा अविवाहित वेश्या आदिकोंकी इच्छा करते हैं उनके व्रतमें अपरिग्रहीता इत्वरिकागमन नामका तीसरा अतिचार लगता है ॥ ४८ ॥ जो पुरुष योनिको छोड़कर रागपूर्वक मुखादिकमें

क्रीड़ा करते हैं अथवा शरीर पर यत्र तत्र क्रीड़ा करते हैं उनके अनंगक्रीड़ा नामका चौथा अतिचार लगता है ॥ ४९ ॥

जो बुद्धिमान कामसेवनमें अत्यंत तृष्णा रखता है और अग्निके समान जिसे संतोष होता ही नहीं उसके काम तीव्राभिनिवेश नामका पांचवा अतिचार लगता है ॥ ५० ॥ जो मूर्ख अपने शीलव्रतको छोड़कर परस्त्रीका अथवा किसी तिर्यंचिनीका सेवन करता है वह परलोकमें नपुंसक होकर नरकका स्वामी होता है ॥ ५१ ॥ जो मनुष्य इन पांचों अतिचारोंका त्यागकर ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करता है वह स्वर्गका राज्य पाकर अंतमें मुक्त होता है ॥ ५२ ॥

हे भव्य ! परस्त्रीका सेवन नरकरूपी घरकी देहली है, धर्मरूपी वृक्षको काटनेके लिये कुठारके (कुल्हाडीके) समान है, पापरूपी वनको बढ़ानेके लिये वर्षाके समान है, भाई बंधु आदिको नाश करनेवाला है, देवगति और स्वर्गरूपी घरको बंद करनेके लिये अर्गल (बेंडा)के समान है और सज्जन पुरुषोंके द्वारा सदा निंद्य है इसलिये हे भव्य ! स्थूल ब्रह्मचर्य धारण कर, तू सब प्रकारकी परस्त्रियोंका त्याग कर ॥ ५३ ॥

इसी प्रकार वेश्या भी मद्य मांसादिकमें सदा आसक्त रहती है। संसारमें जितने दुष्ट हैं सब उसे सेवन करते हैं, पापरूपी वनको उत्पन्न करनेके लिये भूमिके समान है, धर्मरूपी रत्नोंकी चोर है, दुर्गति और दुर्बुद्धियोंको उत्पन्न करनेवाली है, और मोक्षमार्गको रोकनेके लिये अर्गलके समान है। इसलिये हे विद्वन् ! तू शील-रूपी घरमें प्रवेशकर इस वेश्यासेवनका भी सदा त्याग कर ॥ ५४ ॥

यह शीलरत्न स्वर्गमोक्षको देनेवाला है, यश और पुण्यको बढ़ानेवाला है, संसारमें इसकी कोई उपमा नहीं, यह अत्यन्त निस्पृह

है, सद्धर्मरूपी निर्मल रत्नोंका पिटारा है. पापोंका नाश करनेवाला है, उत्तम सुख देनेवाला है, अत्यन्त पवित्र है, धीरवीर पुरुषोंके द्वारा ही यह सेवन किया जाता है, अत्यंत शुभ है, सार है और संसाररूपी महासागरसे पार कर देनेवाला है। इसलिये हे भव्य ! तू ऐसे शीलव्रतका पालन कर ॥ ५५ ॥ ये जीव ब्रह्मचर्यव्रतके फलसे इस-लोकमें भी देवोंके द्वारा पूजा प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं और परलोकमें भी स्वर्ग मोक्षके स्वामी होते हैं ॥ ५६ ॥

प्रश्न—हे भगवन् ! इस शीलव्रतके माहात्म्यसे इसी लोकमें किसको फल मिला है उसकी कथा कृपाकर मेरे लिये कह दीजिये ॥५७॥

उत्तर—हे चतुर ! तू चित्त लगाकर सुन। मैं पुण्य फल देनेवाली शीलव्रतकी कथा कहता हूँ ॥ ५८ ॥ इसी मनोहर ललाट देशके भृगुकच्छ नामके नगरमें पुण्यकर्मके उदयसे बुद्धिमान् राजा वसुपाल राज्य करता था ॥५९॥ उसी नगरमें एक जिनदत्त नामका सेठ रहता था। जिनदत्ता उसकी सेठानीका नाम था। उन दोनोंके रूप और शीलसे सुशोभित नीली नामकी पुत्री थी ॥ ६० ॥

उसी नगरमें एक समुद्रदत्त नामका दूसरा सेठ रहता था और उसको सुख देनेवाली उसकी सेठानीका नाम सागरदत्ता था ॥६१॥ उन दोनोंके सागरदत्त नामका पुत्र था। वह सागरदत्त अत्यंत यौवना-वस्थामें किसी एक दिन अपने किसी मित्रके साथ जिनालयमें गया था। वहांपर सेठ जिनदत्तकी पुत्री नीली वस्त्राभरणोंसे सुशोभित होकर भगवानकी पूजाकर भगवानके ही सामने कायोत्सर्ग धारणकर खड़ी थी ॥ ६२-६३ ॥ उसे देखकर सागरदत्तने अपने मित्रसे पूछा कि रूप और लावण्यसे सुशोभित क्या यह कोई देवता है ? ॥ ६४ ॥

सागरदत्तकी यह बात सुनकर उसके मित्रने कहा कि यह देवता

नहीं है किंतु सेठ जिनदत्तकी पुत्री नीली है ॥ ६५ ॥ उसके रूपको देखकर वह सागरदत्त उसमें तीव्र आसक्त होगया, वह कामबाणसे बींधा गया और उसका हृदय रागसे भर गया ॥ ६६ ॥ वह रातदिन यही चिंतवन करने लगा कि यह नीली रूप लावंण्यकी सीमा है और महा पुण्यवती है, मैं इसके साथ किस प्रकार विवाह करूँ ? इसी चितामें वह रातदिन कृश होने लगा ॥ ६६-६७ ॥ उसके पिता समुद्रदत्तने यह बात जानकर अपने पुत्र सागरदत्तसे कहा कि हे पुत्र ! जिनदत्त जैनको छोड़कर और किसीको अपनी पुत्री नहीं देगा ॥ ६८ ॥

वह जिनदत्त सेठ हम लोगोंको चण्डालके समान देखता है फिर भला विवाहके लिये वह हमें अपनी पुत्री देगा ? ॥ ६९ ॥ यही सोच विचारकर वे दोनों बाप बेटे कपट धारण कर किसी मुनिराजके पास गये और वहां पर जिनधर्म धारण कर दोनों ही धर्मको बढ़ानेवाले श्रावक बन गये ॥ ७० ॥ सागरदत्तने मिथ्यात्व छोड़ दिया है और जिनधर्म धारण कर लिया है यह सब जगह प्रसिद्ध होगया और फिर सेठ जिनदत्तने भी सागरदत्तके लिये अपनी पुत्री दे दी ॥ ७१ ॥

जब नीली सागरदत्तके घर चली गई तब उन्होंने उसे अपने पिताके घर जानेसे रोक दिया और फिर वे दोनों कुमार्गगामी बाप बेटे बुद्धके भक्त बौद्ध होगये ॥ ७२ ॥ जब यह बात जिनदत्तने सुनी तब वह बहुत पश्चात्ताप करने लगा और कहने लगा कि मेरे पुत्री हुई ही नहीं थी, अथवा होकर कूएमें पड़ गई अथवा मर गई ॥७३॥ पुत्रीको अन्धे कूएमें डाल देना अच्छा परन्तु मिथ्यात्वको सेवन करनेवाले मूर्खके लिये देना अच्छा नहीं ॥ ७४ ॥

इसका भी कारण यह है कि यदि वह कूएमें डाल दी जायगी तो केवल इसी एक भवमें दुःख भोगेगी परन्तु मिथ्यादृष्टिके घर जानेपर वह मिथ्यात्वसे उत्पन्न होनेवाले अनेक प्रकारके पाप करेगी और फिर अनन्त भवोंतक दुःख पावेगी ॥ ७५ ॥ कन्याको कूएमें डाल देनेसे मनुष्यको बालहत्याका दोष लगता है और नीच मनुष्यको देनेमें अनेक प्रकारके पाप होते हैं ॥ ७६ ॥

इधर नीली अपने श्वसुरके घर अपने पतिके साथ अलग रहती हुई प्रतिदिन चित्त लगाकर जैनधर्मका पालन करने लगी ॥ ७७ ॥ समुद्रदत्तने यह सोचा कि धर्म श्रवण करनेसे और बौद्ध भिक्षुकोंको दान देनेसे समय पाकर यह बुद्धकी भक्ति करने लगेगी। यह विचार कर किसी एक दिन उसने नीलीसे कहा—हे नीली! हमारे जो बौद्ध भिक्षु हैं वे बड़े ज्ञानी हैं, बड़े विद्वान् हैं, इसलिये तू उन्हें आमन्त्रण कर किसी एक दिन भोजन दे। उनको भोजन देनेसे हमें बहुत सुख होगा ॥ ७८-७९ ॥

नीलीने यह बात स्वीकार करली, भिक्षुकोंको आमन्त्रण दिया गया, वे आये और नीलीने सबको भोजन दिया परन्तु उनकी अनेक प्राणियोंको नाश करनेवाली एक एक जूती बारीक कतर कतरकर घी बूरेमें पागकर खिला दी ॥८०॥ जब वे भिक्षु भोजन करके जाने लगे और उन्हें एक एक जूती नहीं मिली तब उन्होंने क्रोधित होकर पूछा कि प्राणोंका हित करनेवाली हमारी एक२ जूती कहां है ॥८१॥ इसके उत्तरमें नीलीने कहा कि आप तो बड़े ज्ञानी और विद्वान् हैं आप ही बतलाइये कि आपकी जूती कहां है? यदि आपमें इतना ज्ञान नहीं है तो फिर विद्वान् लोग आपको पूज्य कैसे मान सकते हैं। यह सुनकर भिक्षुकोंने कहा कि हम लोगोंमें ऐसा ज्ञान नहीं है।

तब नीलीने कहा कि तो सब जूतियां आप लोगोंके पेटमें हैं। यदि आपको मेरे वचनोंका विश्वास न हो तो वमन कर डालिये। इसपर उन्होंने जबर्दस्ती वमन किया और उसमें चर्मके छोटे२ टुकड़े दिखाई दिये ॥ ८२–८४ ॥

तदन्तर बड़े निरादरके साथ और लज्जासे व्याकुल होकर वे सब भिक्षु चले गये। नीलीके इस कर्त्तव्यसे और भिक्षुओंका मान खण्डन हो जानेके कारण श्वसुरके घरके सब लोग नीलीसे रुष्ट हो गये ॥८५॥ क्रोधित होकर सागरदत्तकी बहिन आदिने पापकर्मके उदयसे नीलीके लिये पर मनुष्यके साथ गमन करनेका महादोष लगाया ॥८६॥ जब नीलीका यह महादोष संसारमें प्रसिद्ध हो गया तब नीली नीचे लिखी प्रतिज्ञा कर भगवानके सामने खड़ी होगई कि "*यदि मेरा यह झूठा लगा हुआ दोष नष्ट हो जायगा तब मैं भोजन* करूँगी अन्यथा जीवनपर्यंत जीवोंको सुख देनेवाला अनशन व्रत धारण करूँगी ॥ ८७–८८ ॥

इस प्रकारकी प्रतिज्ञा कर और निश्चल शरीरको धारण कर, धीरवीर महासती नीली हृदयमें भगवान् जिनेन्द्रदेवको स्मरण करती कायोत्सर्ग धारणकर भगवानके सामने खड़ी होगई ॥ ८९ ॥ उसके शीलके माहात्म्यसे नगरके देवताको भी क्षोभ उत्पन्न हुआ और उसने रात्रिमें उसके सामने आकर कहा —॥ ९० ॥ हे महासती! तू व्यर्थ ही प्राणोंका त्याग मतकर, मैं आज रातको ही यहांके राजाको, मन्त्रीको तथा मुख्य२ सेठ लोगोंको एक स्वप्न देता हूं कि 'नगरके जो दरवाजे कीलित होगये हैं वे किसी महासतीके बांये पैरके स्पर्श होते ही खुल जांयगे।' इसके बाद तू अपने बांये पैरसे उनका स्पर्श करना, तेरे पैरका स्पर्श होते ही वे सब किवाड खुल जांयगे और तेरी शुद्धता प्रगट हो जायगी ॥ ९१–९३ ॥

यह कहकर वह देवता चला गया, उसने जाकर राजा और मंत्रियोंको वैसा ही स्वप्न दिया और फिर नगरके दरवाजोंको कीलित कर स्वयं वहां बैठ गया ॥ ९४ ॥ दरवाजोंके रक्षकोंने सवेरे ही आकर महाराजसे निवेदन किया। उधर उन्हें स्वप्न आया ही था इसलिये रक्षकोंकी बात सुनते ही स्वप्नकी बात याद की और नगरकी सब स्त्रियोंको बुलाकर सबके बांये पैरका स्पर्श उन दरवाजोंसे कराया परन्तु वे दरवाजे किसीसे नहीं खुले ॥ ९५–९६ ॥

तब पवित्र प्रभाको धारण करनेवाली नीली वहांसे उठाकर लाई गई। उसके पैरका स्पर्श कराते ही दरवाजे झट खुल गये॥९७॥ तब राजा प्रजा सबने नीलीको अत्यन्त शीलवती समझा और वस्त्रा-भरणोंसे उसकी पूजा की तथा अन्य लोगोंने भी उसकी स्तुति की ॥ ९८ ॥ इसप्रकार वह नीली संसारभरमें निर्दोष प्रसिद्ध हुई, सबके द्वारा पूज्य हुई, और परलोकमें भी देवोंके द्वारा पूज्य हुई ॥ ९९ ॥

देखो, यम नियम इंद्रियदमन और शांत परिणामोंसे परिपूर्ण तथा निर्मल गुणोंको उत्पन्न करनेके लिये पृथ्वीके समान और शील-रूपी रत्नोंकी खानि ऐसी सेठकी पुत्री नीली शील-रत्नके प्रभावसे समस्त दोषोंसे रहित हुई तथा इसी लोकमें देव राजा प्रजा आदि सब लोगोंके द्वारा पूज्य हुई ॥ १०० ॥ इस शीलरत्नके प्रभावसे ही सती सीताका अग्निकुण्ड रामचन्द्र आदि सब महापुरुषोंके सामने देवोंके द्वारा सरोवर बनगया था ॥ १०१ ॥

जो महासती सीता देव और मनुष्योंके द्वारा पूज्य हुई थी उसकी कथा रामायण (पद्मपुराण) आदि शास्त्रोंसे जान लेनी चाहिये ॥ १०२ ॥ महासेठ सुदर्शन कामदेव थे, और अत्यन्त रूपवान थे, वे भी शीलरत्नके प्रभावसे उपसर्गसे छूटे और राजा तथा देवोंके

द्वारा पूज्य हुए थे ॥ १०३ ॥ गुणोंके सागर और अत्यन्त धीरवीर ऐसे उन सुदर्शनसेठकी कथा विद्वानोंको सुदर्शनचरित्र नामके ग्रंथसे जान लेनी चाहिये ॥ १०४ ॥

इसीप्रकार धीरवीर चक्रवर्ती तथा राजा भरतके सेनापति और गुणोंकी खानी राजा जयकुमार इन्द्रकी सभामें भी इन्द्रोंके द्वारा स्तुति करने योग्य समझे गये थे ॥१०५॥ तथा महाशीलके प्रभावसे वे पूज्य हुए थे, और मुक्तिके स्वामी हुए थे। विद्वानोंको उनकी कथा आदिनाथपुराणसे जान लेनी चाहिये ॥ १०६ ॥ इस शील-व्रतके कारण सुकेतु आदि कितने ही पुरुष देवोंके द्वारा पूज्य हुए हैं उन सबकी कथाओंको कोई कह भी नहीं सकता ॥ १०७ ॥ जो प्राणी इस शीलव्रतको पालन नहीं करते वे इस जन्ममें भी अनेक वध बन्धन आदि महा दुःखोंको पाते हैं और परलोकमें मरकर नरक आदि दुर्गतियोंमें जन्म लेते हैं ॥ १०८ ॥

प्रश्न—हे प्रभो, इस शीलको विना पालन करनेसे जिसने अनेक दुःख पाये हैं उसकी कथा भी कृपाकर मेरे लिये कह दीजिये ॥१०९॥

उत्तर—हे वत्स ! तू चित्त लगाकर सुन। जिसने अपने शीलव्रतको छोड़ दिया है उसकी भय उत्पन्न करनेवाली कथा कहता हूं ॥ ११० ॥ अहीर नामके देशके नाशिक्य नामके नगरमें अपने पुण्यके फलसे राजा कनकरथ राज्य करता था ॥ १११ ॥ उसकी रानीका नाम कनकमाला था। दैवयोगसे वह शीलरहित थी। उसी राजाके यहां एक यमदंड नामका कोतवाल था, और उसकी माताका नाम वसुन्धरी था ॥ ११२ ॥

वह वसुन्धरी विधवा थी, अत्यन्त जवान थी, और व्यभिचारिणी थी। किसी एकदिन शामके समय यमदंडकी स्त्रीने अपने कुछ आभूषण

अपनी सासु वसुन्धरीके पास रखनेके लिये दिये थे। उन आभूषणोंको लेकर वह वसुन्धरी रात्रिके समय जारके पास जा रही थी तब मार्गमें यमदंडने उसे रोक लिया, उसके साथ विषयसेवन किया और उसके पास जो आभूषण थे वे लेकर अपनी स्त्रीको देदिये ॥ ११३-११४॥ उन आभूषणोंको देखकर उसकी स्त्रीने कहा कि ये तो मेरे आभूषण हैं, मैंने ये शामको रखनेके लिये अपनी सासुको दिये थे ॥ ११५॥

अपनी स्त्रीकी यह बात सुनकर यमदण्डने उसी समय सोच लिया कि रातको जिसे मैंने सेवन किया है वह मेरी माता ही होगी ॥ ११६॥ तदनंतर वह मूर्ख जानबूझकर भी प्रतिदिन रातको जार बनकर उसके घर जाने लगा और उस अपनी माताके साथ कुकर्म करने लगा ॥ ११७॥

वह कुमार्गगामी महामूर्ख यमदंड अपने पापकर्मके उदयसे छिपकर प्रतिदिन अपनी माताके पास जाने लगा और उसके साथ अत्यन्त आसक्त होगया ॥ ११८ ॥

किसी एक दिन यमदण्डकी स्त्रीने क्रोधित होकर धोबिनसे कह दिया कि "मेरा पति अपनी माताके साथ सदा रहता है" ॥ ११९॥ धोबिनने यह बात मालिनसे कह दी । इस प्रकार वह यमदण्डका पाप समस्त संसारमें प्रसिद्ध होगया ॥ १२०॥ किसी एक दिन सुन्दर फूल लेकर मालिन रानीके पास गई । रानीने कौतूहलपूर्वक उससे कोई अपूर्व बात पूंछी । १२१॥ मालिनने कहा कि हे देवी ! पापी यमदण्ड कोतवाल प्रतिदिन अपनी माताके साथ विषयसेवन करता है ॥ १२२॥

रानीने यह बात राजासे कह दी कि—हे देव ! आपका मूर्ख कोतवाल अपनी माताके साथ आसक्त हो गया है ॥ १२३ ॥ राजाने रानीकी यह बात सुनकर गुप्तचरोंके द्वारा छिपकर सब बात देखी और फिर उसपर विश्वास किया ॥ १२४ ॥ तदनंतर राजाने

उस पापी यमदंडको वध, बंधन, छेदन, आदि महा घोर दुःख देकर दंडित किया ॥ १२५ ॥ पाप और कुमार्गमें चलनेके महा दुःखोंको भोगकर वह यमदंड मरकर अत्यंत दुःख देनेवाली घोर दुर्गतियोंमें परिभ्रमण करने लगा ॥ १२६ ॥ परस्त्री हरण करनेके दोषसे ही रावणका राज्य नष्ट हो गया था और वह मरकर तीसरे नरकमें पहुंचा था, उसकी कथा संसारमें प्रसिद्ध है ॥ १२७ ॥ अमृतादेवी नामकी महा पट्टरानी इस शीलव्रतके अभावसे ही अनेक प्रकारके कष्ट और दुःखोंको सहकर छठवें नरकमें पहुंची थी ॥ १२८ ॥ वैराग्यको बढ़ानेवाली उसकी कथा महाराज यशोधरके जीवनचरित्रसे (यशोधर-चरित्र अथवा यशस्तिलकचम्पूसे) जान लेना चाहिये ॥ १२९ ॥

ग्यारह रुद्र दशपूर्वोंके जानकार थे और जिनमुद्राको धारण करनेवाले थे तथापि केवल शीलभंगके पापसे उन्हें नरकके दुःख भोगने पड़े थे ॥१३०॥ वासुदेव आदि और भी अनेक पुरुष हुए हैं जिन्हें दुर्गतियोंके घोर दुःख भोगने पड़े हैं वे सब शीलव्रतके खण्डन करनेसे ही भोगने पड़े हैं ॥ १३१ ॥

देखो ! यमदण्ड कोतवाल विषयोंके वश होकर कुमार्गगामी हुआ था इसलिये उस पापके फलसे उसे राजाके द्वारा दिये हुए अत्यन्त तीव्र दुःख भोगने पड़े और फिर समस्त दुःखोंसे परिपूर्ण दुर्गतियोंके दुःख भोगने पड़े। इसलिये ऐसे पापोंसे बचना ही कल्याण-कारक है ॥ १३२ ॥

इस प्रकार आचार्य श्रीसकलकीर्ति विरचित प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमें ब्रह्मचर्य अणुव्रतका स्वरूप, नीलीबाई और कोतवालकी कथाको कहनेवाला यह पन्द्रहवां सर्ग समाप्त हुआ।

सोलहवां सर्ग।

जिन्होंने कर्मरूप शत्रुओंके समूहको शांत कर दिया है, जो शांति देनेवाले हैं, और संसारभरमें शांतिके व्यापक हैं ऐसे श्री शांतिनाथ भगवानको मैं अपने कर्म शांत करनेके लिये नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ अब मैं उत्कृष्ट संतोषको उत्पन्न करनेवाले और लोभको नाश करनेवाले परिग्रहपरिमाण नामके पांचवें अणुव्रतको कहता हूं ॥ २ ॥ गणधरादि देवोंने परिग्रहप्रमाणको सबसे श्रेष्ठ व्रत कहा है तथा श्रावकोंका लोभ दूर करनेके लिये ही शास्त्रोंमें इसका निरूपण है ॥ ३ ॥

जो बुद्धिमान् सन्तोष धारण कर परिग्रहोंकी संख्या नियत कर लेते हैं उनके यह पांचवां परिग्रहपरिमाण नामका व्रत होता है ॥४॥ खेत, घर, धन, धान्य, नौकर, चाकर, घोड़ा, बैल आदि पशु, आसन, शयन, वस्त्र और भांड ये गृहस्थोंके दश प्रकारके परिग्रह भगवान् जिनेन्द्रदेवने कहे हैं। गृहस्थोंको पापरूप आरम्भोंको घटानेके लिये इन सब परिग्रहोंकी संख्या नियत कर लेनी चाहिये ॥ ५-६ ॥ इनमें पहिला परिग्रह खेत है वह सबसे अधिक हिंसा करानेवाला है अतएव धर्म-पालन करनेके लिये तू उसका त्याग कर। यदि तू उसका त्याग कर नहीं सकता तो हल आदिकोंकी संख्या नियत कर ले ॥ ७ ॥ संसारमें जितनी भी घर आदिकी सम्पत्ति है वह सब ममत्व बढ़ानेवाली है और त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसा करनेवाली है इसलिये सन्तोष धर्मको सिद्ध करनेके लिये तू घर आदिकोंकी भी संख्या नियत कर ले ॥ ८ ॥

हे वत्स ! पाप उत्पन्न करनेवाले लोभको छोड़कर और सन्तोष रूपी अमृतको पीकर सोना चांदी आदि धनकी भी थोड़ीसी संख्या

नियत कर ले ॥ ९ ॥ चावल, गेहूं, चना आदि अनेक कीड़ोंके उत्पन्न होनेके कारण हैं अतएव अपने व्रत शुद्ध रखनेके लिये तू इनका भी थोड़ासा प्रमाण नियत करले ॥ १० ॥ श्रावकोंको अपने गुरुके पास जाकर दास दासी आदि सेवकोंका तथा स्त्रियोंका प्रमाण नियत कर लेना चाहिये ॥ ११ ॥ घोड़ा, बैल, गाय आदि जितने पशु हैं सबके पालन करनेमें त्रस जीवोंकी हिंसा होती है इसलिये इनका भी प्रमाण कर संख्या नियत कर लेनी चाहिये ॥ १२ ॥

इसी प्रकार गाड़ी, पालकी आदि सवारियोंकी संख्या भी नियत कर लेनी चाहिये और धर्म-पालन करनेके लिये पलङ्ग आदि सोने व आराम करनेके साधनोंकी भी संख्या नियत कर लेनी चाहिये ॥ १३ ॥ इसी तरह वस्त्रोंकी संख्या तथा वर्तन आदि अन्य सामग्रियोंकी संख्या भी नियत कर लेनी चाहिये ॥ १४ ॥ इस परिग्रहके परिमाण करनेसे गृहस्थोंका लोभ नष्ट हो जाता है और तृष्णा सन्तोष रूपमें परिणत हो जाती है ॥ १५ ॥ सन्तोषसे धर्म होता है, धर्मसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है और स्वर्ग प्राप्त होनेसे सुख मिलता है इसलिये सुख चाहनेवाले लोगोंको यह लोभ दूरसे ही छोड़ देना चाहिए ॥ १६ ॥

सन्तोषके समान सुख तीनों लोकमें न तो हुआ है न हो सकता है न, इसके समान अन्य कुछ सार है और न कोई इसके समान उत्तम धर्म प्रगट करनेवाला है ॥ १७ ॥ सन्तोषरूपी आसन पर बैठा हुआ मनुष्य जो जो पदार्थ चाहता है वह चाहे तीनों लोकोंमें कहीं भी क्यों न हो उसे उसी समय मिल जाता है ॥ १८ ॥ जो उत्तम विद्वान सन्तोषरूपी थोड़ेसे अमृतको भी पी लेता है वह जन्म, मरण, बुढ़ापा आदि विषको नष्टकर और महा सुखोंको भोगकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करता है ॥ १९ ॥

जिस प्रकार मांगनेवाले लोगोंको धनकी प्राप्ति नहीं होती उसी प्रकार जो लोभसे द्रव्यकी इच्छा करते हैं उन्हें द्रव्यकी भी प्राप्ति नहीं होती ॥ २० ॥ जिस प्रकार निस्पृह जीवोंको विना इच्छाके भी धनकी प्राप्ति हो जाती है उसी प्रकार सन्तोष धारण करनेसे मनुष्योंको धनकी प्राप्ति हो जाती है, उसीप्रकार सन्तोष धारण करनेसे मनुष्योंको धनकी प्राप्ति अपने आप होजाती है ॥२१॥ सन्तोष धारण करनेसे द्रव्य आता है और लोभ करनेसे घरमें रक्खा हुआ द्रव्य भी चला जाता है। यही विचार कर हे भव्य पुरुषो ! जो धर्म और धन प्राप्त करानेवाला इष्ट हो वही करना चाहिये ॥ २२ ॥ अथवा पुण्यकर्मके उदयसे मनुष्योंके लक्ष्मी स्वयं आजाती है और विना पुण्यके बहुत दिनसे इकट्ठी की हुई और घरमें रक्खी हुई लक्ष्मी भी नष्ट हो जाती है ॥ २३ ॥

इसीलिये धन चाहनेवाले लोगोंको अपनी शक्तिके अनुसार पुण्यकार्य करना चाहिये। क्योंकि लक्ष्मी पुण्यसे ही आती है, विना पुण्यके केवल इच्छा करनेसे कुछ नहीं होता ॥ २४ ॥ इस लोकमें चक्रवर्तीकी लक्ष्मी तथा तीर्थंकरोंकी लक्ष्मी और परलोकमें इंद्रादिकको सुख देनेवाली लक्ष्मी धर्मात्मा मनुष्यके ही घर स्थिरताके साथ निवास करती है ॥ २५ ॥ जो बुद्धिमान थोड़ेसे भी परिग्रहका परिमाण कर लेते हैं उनके घर, उनकी परीक्षा करनेके लिये बहुतसा धन जबर-दस्ती आ जाता है ॥ २६ ॥

परिग्रहोंका नियम किये विना यह प्राणी पशुके समान है इसमें कोई सन्देह नहीं, क्योंकि दोनों ही परिग्रहका परिमाण किये विना अपनी इच्छानुसार परिभ्रमण करते हैं ॥ २७ ॥ कदाचित् सूर्य अपना तेज छोड दे और सुमेरु पर्वत अपनी स्थिरता छोड दे तो भी

विना नियमके मनुष्योंको पुण्यकी प्राप्ति कभी नहीं हो सकती ॥२८॥ जिसप्रकार पशु नग्न रहते हुए भी विना किसी प्रकारका नियम धारण किये पुण्य प्राप्त नहीं कर सकते उसी प्रकार धर्मरहित प्राणी भी विना नियमके पुण्य सम्पादन नहीं कर सकते ॥ २९ ॥

यम नियम पालन करनेसे मनुष्योंको प्रचुर पुण्यकी प्राप्ति होती है और सन्तोष धारण करनेसे संसारमें यश फैलता है तथा इन्द्रियां वशमें होजाती हैं, मन शांत हो जाता है ॥ ३० ॥ नियमरूपी अंकुशके ताड़न करनेसे विषयरूपी वनमें इच्छानुसार घूमता हुआ और धर्मरूपी श्रेष्ठ वृक्षोंको उखाडता हुआ मनरूपी हाथी वशमें हो जाता है ॥ ३१ ॥ हे भव्य ! सन्तोषरूपी तीक्ष्ण तलवारसे अपनी पूर्ण शक्ति लगाकर लोभरूपी दुराचारका नाशकर और नियमादिक वा परिग्रहका परिमाण धारण कर ॥ ३२ ॥

इसका भी कारण यह है कि लोभके फन्देमें फँसा हुआ यह प्राणी धनके लिए गुरु और सज्जन लोगोंको भी मार देता है और अनेक प्रकारके पाप उपार्जन करता है जिन पापोंके फलसे उसे नरकमें ही जाना पड़ता है ॥ ३३ ॥ लोभी मनुष्य न तो धर्मको समझता है, न पापको जानता है, न सुखदुःखको जानता है, न हित अहितको जानता है, न गुरुको समझता है, न देवको समझता है, न कुगतिको जानता है और न गुण अवगुणको जानता है ॥३४॥ यह जीव लोभके ही कारण अनेक देशोंमें तथा समुद्रोंमें परिभ्रमण करता है और धनके लिये ही हजारों कपट बनाता है ॥ ३५ ॥

जिस प्रकार अग्निको बहुतसे इंधनसे भी सन्तोष नहीं होता और समुद्रको अनेक नदियोंके जलसे सन्तोष नहीं होता उसी प्रकार लोभी पुरुषको बहुतसा धन मिलने पर भी सन्तोष नहीं होता॥३६॥

लोभी मनुष्योंकी आशा समस्त संसारमें फैल जाती है और रत्न आदि संसारभरका समस्त धन दे देनेपर भी वह शान्त नहीं होती ॥ ३७॥ यह धन दुःखसे तो आता है, आये हुए धनकी बड़ी रक्षा होती है और इसके चले जानेपर भी मनुष्योंको दुःख ही होता है, इस प्रकार सब जगह दुःख देनेवाले इस धनको धिक्कार हो ॥ ३८ ॥

धन प्राप्त हो जानेसे मनुष्योंको उसकी रक्षा आदिकी चिन्ता उत्पन्न हो जाती है, इसके सिवाय वह परलोकमें भी नरक आदि दुर्गतियोंके महा दुःख देनेवाला है ॥ ३९ ॥ बहुत कहनेसे क्या लाभ है, थोड़ेसेमें इतना समझ लेना चाहिये कि यह धन समस्त दुःखोंकी खानि है और विना दानके गृहस्थोंको अनेक प्रकारके शोक क्लेश और दुःखोंको देनेवाला है ॥ ४० ॥ यही समझकर हे मित्र ! सन्तोष रूपी सार पदार्थको धारण कर, अपकीर्ति देनेवाले लोभको नाशकर और धनादिककी संख्या नियत कर ॥ ४१ ॥

हे मित्र ! देख, यह कुलोभ गणधर और मुनियोंके द्वारा निंद्य है, दानादिक शुभ कार्योंसे रहित है, पापरूपी धनको बढ़ानेके लिये मेघ है, धर्मरूपी कल्पवृक्षको जलानेके लिये अग्नि है, नरकादिक दुर्गतियोंका मार्ग है और मुक्तिरूपी घरको बन्द करनेके लिये किवाड़के समान है इसलिये तू परिग्रहका परिमाण नियतकर इस कुलोभका त्याग कर ॥ ४२ ॥ जो पुरुष पांचों अतिचारोंको छोड़कर परिग्रह-परिमाण व्रतको धारण करता है वह बुद्धिमान सोलहवें स्वर्गमें सुख भोगकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करता है ॥ ४३ ॥

प्रश्न—हे प्रभो ! कृपा कर इस व्रतको शुद्ध करनेके लिये इस व्रतके पांचों अतीचारोंको कहिये ॥ ४४ ॥

उत्तर—हे श्रावकोत्तम ! तू चित्त लगाकर सुन । इस व्रतमें

मल उत्पन्न करनेवाले और त्याग करने योग्य अतिचारोंको कहता हूँ ॥ ४५ ॥ अतिवाहन, अतिसंग्रह, विस्मय, लोभ और अतिभारारोपण ये पांच परिग्रह परिमाणके अतीचार हैं ॥ ४६ ॥ घोड़े, बैल आदिको उनकी शक्तिसे अधिक चलाना और मार मारकर चलाना, अतिवाहन नामका पहिला अतिचार है ॥ ४७ ॥

लोभके वश होकर धन धान्यादिकका अतिशय संग्रह करना अतिसंग्रह नामका दूसरा अतिचार है ॥ ४८ ॥ जो खरीदने योग्य पदार्थ वेच दिया हो अथवा उस खरीदने योग्य पदार्थकी प्राप्ति ही न हुई हो उस समय लोभके वश होकर विषाद करना अतिविस्मय नामका तीसरा अतिचार है ॥ ४९ ॥ जो धन प्राप्त हो जाने पर भी उसको देने या खर्च करनेमें अत्यंत तृष्णा करते हैं अथवा धनकी प्राप्तिके लिये अतिशय लोभ करते उनको लोभ नामका चौथा अतिचार लगता है ॥ ५० ॥

जो निर्दय होकर न्यायमार्गको छोड़कर (शक्तिसे अधिक) बोझा लाद देते हैं उनके अतिभारारोपण नामका अतिचार लगता है ॥५१॥ हे मित्र ! यह परिग्रहका प्रमाण करना शुभगति रूपी रत्नोंका पात्र है, नरकरूपी घरको बंद करनेके लिये किवाड़ोंके समान है, धर्मरूपी रत्नोंकी खानि है, अशुभरूपी वृक्षोंको उखाड़नेके लिये वायुके समान है और लोभरूपी हाथीको मारनेके लिये सिंह है। इसलिये तू साररूप सन्तोषको धारण कर परिग्रहपरिमाण व्रतको धारण कर ॥५२॥ जो बुद्धिमान् इस परिग्रह परिमाण व्रतको धारण करता है वह देवोंके द्वारा आदर सत्कार पाकर अनुक्रमसे स्वर्गमोक्षके सुख प्राप्त करता है ॥ ५३ ॥

प्रश्न—हे स्वामिन् ! जिसने इस व्रतको पालनकर इस लोकमें

भी देवोंके द्वारा आदर सत्कार प्राप्त किया उसकी कथा कृपाकर निरूपण करिये ॥ ५४ ॥

उत्तर—हे श्रावकोत्तम ! तू मनके अन्य सब संकल्प विकल्प छोड़कर सुन ! मैं पुण्य बढ़ानेवाली राजा जयकुमारकी कथा कहता हूँ ॥ ५५ ॥ कुरुजांगलदेशके हस्तिनापुर नामके शुभ नगरमें पुण्य-कर्मके उदयसे कुरुवंशी राजा सोमप्रभ राज्य करता था ॥ ५६ ॥ उसके पुत्रका नाम जयकुमार था उसने परिग्रहपरिमाणका व्रत लिया था और स्त्रीपरिमाणमें उसके केवल सुलोचना ही थी, और सबका त्याग था ॥ ५७ ॥

किसी एक दिन जयकुमार और सुलोचना दोनों दम्पति अपने पहिले विद्याधर भवकी कथा कहकर अनेक प्रकारके दृश्य देखते हुए बैठे थे कि इतनेमें ही पहिले भवकी विद्याने आकर कहा कि हे राजन् ! मुझे आज्ञा दीजिये, मैं इस संसारमें आपके सब काम कर सकूँगी ॥५८–५९॥ उस विद्याके बलसे उन दोनोंने पहिले भवके हिरण्य-वर्मा और प्रभावती नामके विद्याधर विद्याधरीका रूप धारण किया ॥६०॥

उन दोनोंने पुण्य बढ़ानेवाली सुमेरुपर्वत आदिकी यात्रा की और फिर चौबीस तीर्थंकरोंकी वन्दना करनेके लिये वे दोनों कैलास पर्वतपर आये ॥६१॥ वहांपर महाराज भरतने जो चौबीस तीर्थकरोंके जिन भवन बनवाये थे उनकी वन्दना की और फिर वे दोनों अलग अलग स्थानपर जा विराजमान हुए ॥ ६२ ॥

इसी समय सुधर्म सभामें सौधर्म इन्द्रने जयकुमारके सन्तोष-व्रतकी प्रशंसा की ॥ ६३ ॥ इसलिये उसकी परीक्षा करनेके लिये दिव्य गुणोंसे सुशोभित ऐसा रविप्रभ नामका देव अपने परिवारके साथ आया ॥ ६४ ॥ रविप्रभने हावभाव विलास और लावण्यरससे

परिपूरित ऐसा विद्याधरीका उत्तमरूप धारण किया ॥ ६५ ॥ तथा चार विलासिनी उसने अपने साथ लीं ।

इसप्रकार स्त्रीका रूप धारणकर वह शीघ्र ही जयकुमारके पास आया और जयकुमारसे कहने लगा कि हे नरेश्वर ! जिस विद्याधरोंके स्वामी राजा नमिने सुलोचनाके स्वयंवरमें तेरे साथ कातरोंको भय उत्पन्न करनेवाला भयंकर युद्ध किया था उसकी मैं समस्त गुणोंसे परिपूर्ण स्वरूपा नामकी महारानी हूँ, मैं इस समय अत्यन्त युवती हूँ, मेरे पास अनेक विद्याएं हैं और मैं महाराज नमिसे विरक्त होगई हूँ । इसलिये हे पुरुषोत्तम ! यदि आप महाराज नमिका राज्य चाहते हैं और अपनेको जीवित रखना चाहते हैं तो मुझे स्वीकार कीजिये ॥ ६६-६९ ॥

उस बनी हुई विद्याधरीकी यह बात सुनकर जयकुमारने कहा कि तूने यह बड़ी ही प्रतिकूल, निंद्य, पाप संतापको उत्पन्न करनेवाली, और बुरी बात कही ॥ ७० ॥ मेरे परस्त्रीगमन करनेका सदाके लिये त्याग है । सुलोचनाके विना अन्य स्त्रियां मेरे लिये माताके समान हैं ॥ ७१ ॥ इसलिये हे देवी ! तू भी कुत्सित परिणामोंको छोड़, धर्म और व्रतोंको धारण कर तथा विद्वानोंके द्वारा पूज्य होती हुई शीलवती हो ॥ ७२ ॥

इतना कहकर जयकुमार गुणोंकी खानि और ध्यानके मूल कारण ऐसे श्री तीर्थंकर भगवानको हृदयमें विराजमान कर कायोत्सर्ग धारणकर खड़ा होगया ॥ ७३ ॥ तब उस देवने कोई उपाय न देखकर हावभाव कटाक्षोंके द्वारा तथा दृढ़ आलिंगनोंके द्वारा अत्यन्त असह्य और घोर उपसर्ग किया ॥ ७४ ॥ जयकुमार मेरु पर्वतके समान अचल होकर खड़ा रहा, उसने घोर दुःख देनेवाली और त्याग

करनेयोग्य ऐसी समस्त घोर परीषह सहन की ॥ ७५ ॥ तब उस देवने अपनी माया संकोची और प्रगट होकर जयकुमारसे कहा कि मैं तेरी परीक्षासे अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ है ॥ ७६ ॥

हे देव ! आप महापुरुषोंके द्वारा भी पूज्य हैं, धीरवीर हैं, विद्वानोंके द्वारा स्तुति करनेयोग्य हैं, हमने आपकी कीर्ति स्वर्गमें भी देवोंकी सभामें सुनी है। हे देव ! सौधर्म इन्द्रने आपके सन्तोष व्रतकी बहुत अधिक प्रशंसा की थी परन्तु वास्तवमें आपकी प्रशंसा उससे भी अधिक है उसे सुनकर ही हम आपकी परीक्षा लेनेके लिये आए थे। हे पुरुषोत्तम ! आपको देखकर अब हमारा निर्णय हो गया ॥ ७७-७९ ॥

इस प्रकार कहकर तथा वस्त्राभरणोंसे उनकी पूजाकर नमस्कार कर और अनेक प्रकारसे प्रशंसाकर वह देव अपने स्थानको चला गया ॥ ८० ॥ तदन्तर जयकुमार भी अपने घर आया और प्रतिदिन धर्मको हृदयमें विराजमान कर संसारके सुख भोगने लगा ॥ ८१ ॥ किसी समय उस पुण्यवानको वैराग्य उत्पन्न हुआ, उसने तृणके समान राज्यका त्याग कर दिया, और मोहरूपी महा पापका नाश कर दीक्षा धारण कर ली ॥ ८२ ॥ तदन्तर उन जयकुमारने वैराग्य भावनाओंके द्वारा सारभूत असह्य तपश्चरण किया और समस्त कर्मोंको नाश कर अजर अमर मोक्षपद प्राप्त किया ॥ ८३ ॥ और भी बहुतसे श्रावकोंने इस सन्तोष व्रतको धारण कर अनुपम सुख प्राप्त किया है, इस संसारमें उन सबकी कथाओंको कौन कह सकता है ॥ ८४ ॥

जो समस्त गुणोंके समुद्र थे, स्वर्गके देवोंने भी जिनकी पूजा की थी, इन्द्रने भी जिनकी प्रशंसा की थी, जो धीरवीर थे, विद्वानोंके द्वारा पूज्य थे, समस्त शंकाओंसे रहित थे, लोभके सर्वथा त्यागी थे,

संसारभर जिनकी सेवा करता था और जो मुक्ति-लक्ष्मीके स्वामी हुए थे ऐसे मुनिराज जयकुमार सदा जयशील हो ॥ ८५ ॥ जो मूर्ख धर्मरूप और साररूप गुणोंकी खानि ऐसे सन्तोष व्रतको छोड़कर लोभ करता है वह अनेक दुर्गतियोंके दुःख भोगता है ॥ ८६ ॥

प्रश्न—हे स्वामिन्! इस परिग्रहपरिमाण नामके व्रतके विना जिसने दुःख पाया है उसकी कथा कृपाकर कहिये।

उत्तर—हे श्रावकोत्तम! तू चित्त लगाकर सुन, मैं परिग्रह-परिमाण व्रतको न पालनेवाले अत्यन्त लोभी ऐसे श्मश्रुनवनीतकी कथा कहता हूं ॥ ८८ ॥

इसी भरतक्षेत्रके अयोध्या नगरमें भवदत्त नामका एक सेठका लड़का था उसको सुख देनेवाली धनदत्ता नामकी उसकी स्त्री थी ॥ ८९ ॥ उन दोनोंके एक पुत्र हुआ था उसका नाम लवुदत्त था। वह अत्यंत लोभी था। किसी एक समय द्रव्य कमाने और व्यापार करनेके लिये वह दूर देशांतरमें गया ॥ ९० ॥ वहांपर जाकर उसने द्रव्य भी कमाया परन्तु पापकर्मके उदय होनेसे मार्गमें ही दुःख देनेवाले चोरोंने उसका सब धन लूट लिया ॥ ९१ ॥

इस प्रकार अत्यन्त निर्धन होकर वह अपने घरको आ रहा था। मार्गमें किसी एक दिन उसने गवालियेके घरसे पीनेके लिये छाछ मांगी ॥ ९२ ॥ छाछके पी लेने पर उसने देखा कि उस छाछमेंके मक्खनके कुछ कण मूछोंमें लग गये हैं। उन्हें देखकर उसने अपने हृदयमें विचार किया कि थोड़े दिन इसीप्रकार छाछ पीपीकर मक्खनके कण इकट्ठे करनेसे व्यापार करनेयोग्य धन हो सकता है इसलिये कुछ दिन तक घासकी एक झोंपड़ी बनाकर यहां ही रहना चाहिये ॥ ९३–९४ ॥

इस प्रकार विचार कर वह वहीं एक झोंपड़ी बनाकर उसीमें रहने लगा। वह प्रतिदिन मूछोंमें लगे हुए मक्खनको इकट्ठा करता था इसलिये लोगोंने उसका नाम श्मश्रुनवनीत रख लिया था ॥९५॥ कुछ समय पाकर इकट्ठा होते होते वह घी लगभग एक सेरके हो गया तब किसी दिन शीतकालके समय उस छोटी झोंपड़ीको बंदकर वह लघुदत्त दरवाजेकी ओर पैरकर सो गया। दरवाजेके पास ही घीका वर्तन रक्खा हुआ था और उसके पास ही शीतसे बचनेके लिये अग्नि जला रक्खी थी। इस प्रकार लेटे लेटे वह बड़े भारी आरंभ और संग्रहका विचार करने लगा ॥ ९६-९७ ॥ वह सोचने लगा कि अब मैं इस घीसे कपास आदिका व्यापार कर सकता हूं। इस प्रकार धीरे धीरे व्यापार करते करते बाहरसे माल लानेवाला और ले जानेवाला बड़ा व्यापारी हो जाऊँगा ॥ ९८ ॥

तदनन्तर मेरे हाथी, घोड़े आदिकी विभूति हो जायगी। बड़े२ सामन्त हो जांयगे, राज्य मिल जायगा और फिर इसी व्यवसायसे राजाधिराज पद मिल जायगा ॥ ९९ ॥ तदन्तर मैं चक्रवर्ती हो जाऊँगा इसमें कोई संदेह नहीं। फिर मुझे समस्त इंद्रियोंके सुख देनेवाले भोगोपभोग प्राप्त हो जांयगे ॥ १०० ॥ तब मैं सतखने महा मनोहर शुभ राजभवनमें सोऊँगा, अनेक शुभ लक्षणोंसे सुशोभित स्त्री-रत्न मेरे पैरोंके पास बैठेगी ॥ १०१ ॥ वह बड़ी रूपवती होगी और हृदयमें भोगोंकी लालसा करती हुई वह मेरे पैर दाबनेके लिये अपने हाथोंसे मेरे पैर पकड़ेगी ॥ १०२ ॥ तब मैं बड़े प्रेमके साथ उस सुन्दर स्त्रीको यह कहकर स्वयं लात मारूंगा कि हें, यह क्या करती है, तू नहीं जानती कि मैं स्वयं तेरे रूपमें मिल गया हूं ! ॥ १०३ ॥

इसप्रकार चिंतवन करते हुए और अपने हृदयमें अपनेको चक्रवर्ती मानते हुए उस मूर्ख लघुदत्तने आलसके साथ पैर फैलाये ॥ १०४ ॥ दैवयोगसे वे पैर घीके वर्तन पर जा लगे जिससे वह सब घी फैलकर अग्निमें जा पड़ा और उस घीसे दरवाजेके पास ही अग्नि बड़ी तेजीके साथ जलने लगी ॥ १०५ ॥ वह अग्निकी भारी ज्वाला दरवाजेके पास ही जल रही थी इसलिये वह बाहर निकल भी न सका और उस अग्निमें ही जलकर मर गया ॥ १०६ ॥

मन रहित होने और अत्यन्त तीव्र लोभी होनेके कारण रौद्र-ध्यानसे उसके प्राण छूटे और इसीलिये उसे अनेक दुःखोंसे भरपूर अनेक दुर्गतियोंमें परिभ्रमण करना पड़ा ॥ १०७ ॥ इसके सिवाय सुभौम चक्रवर्तीको आदि लेकर और भी ऐसे बहुतसे लोग हो गये हैं जिनका हृदय लोभसे सदा व्याकुल रहता था और जो अत्यन्त लोभी थे, और इसलिये बहुतसे आरम्भ और परिग्रहके कारण उन्हें नरक और तीर्यंच गतियोंके दुःख भोगने पड़े। उन सबकी कथाओंको कोई भी विद्वान् नहीं कह सकता ॥ १०८-१०९ ॥

हे मित्र! देख! यह कुलोभ समस्त पापोंकी जड़ है, अनेक दुर्गतियोंके दुःख देनेवाला है और विद्वानोंके द्वारा निंद्य है। इसी कुलोभके कारण लघुदत्त वैश्यको दुर्गतिमें जाना पड़ा इसलिये सारभूत सन्तोषरूपी शस्त्रोंके द्वारा कुलोभको नष्टकर ॥ ११० ॥ इस संसारमें जो श्रावक निःशंकित आदि सम्यग्दर्शनके अङ्गोंको पालन करते हैं, जैनधर्मको पालन कर प्रसन्न होते हैं, सन्तोष आदि सद्गुणोंको धारण करनेमें तत्पर रहते हैं, श्री जिनेन्द्रदेव और मुनियोंकी सदा भक्ति करते रहते हैं, धर्मध्यानमें सदा लीन रहते हैं, और जिनकी बुद्धि शुभ है ऐसे श्रावक पांचों अणुव्रतोंको पालनकर सुख देनेवाले अच्युत

स्वर्गको पाते हैं और फिर अनुक्रमसे मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ १११ ॥

ये पांचों अणुव्रत देवगतिके सुखके घर हैं, ज्ञानरूपी रत्नके पिटारे हैं, मोक्षकी जड हैं, अनेक गुणोंसे सुशोभित हैं, दुर्गतिरूपी घरको बन्द करनेके लिये किवाड हैं, पापरूपी वृक्षोंको जलानेके लिए अग्नि है। हे मित्र ! ऐसे इन पांचों अणुव्रतोंको पालन कर ॥ ११२ ॥

इस प्रकार आचार्य सकलकीर्ति विरचित प्रश्नोत्तर श्रावकाचारमें परिग्रहपरिमाणका स्वरूप और जयकुमार तथा श्मश्रुनवनीतकी कथाको कहनेवाला यह सोलहवां सर्ग समाप्त हुआ ।

सत्रहवां सर्ग ।

जो कुन्थु आदि समस्त जीवोंकी दया पालन करनेमें चतुर हैं, जो तीर्थंकर और चक्रवर्ती हैं और जो देवाधिदेव हैं ऐसे श्री कुन्थुनाथ भगवानको मैं कुन्थु आदि समस्त जीवोंकी दया पालन करनेके लिये नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ इसप्रकार अणुव्रतोंका स्वरूप कहकर अब आगे गृहस्थोंको सुख देनेवाले और गुणोंकी खानि ऐसे तीनों प्रकारके गुणव्रतोंका वर्णन करते हैं ॥ २ ॥

गणधरदेवोंने दिग्विरतिव्रत, अनर्थदण्डविरतिव्रत, और भोगोपभोग संख्यान ऐसे श्रावकोंके तीन गुणव्रत बतलाये हैं ॥ ३ ॥ ये गुणव्रत दया आदि व्रतोंके कारण हैं और गुणोंको बढ़ानेवाले हैं । इसलिए धर्मकी सिद्धिके लिए इनको सारभूत गुणव्रत कहते हैं ॥४॥ जो बुद्धिमान समस्त दिशाओंकी मर्यादा नियतकर उसके बाहर कभी नहीं जाता है उसके दिग्विरति नामका पहिला गुणव्रत होता है ॥५॥

स्वामी वृषभदेवने समुद्र, नदी, पर्वत, द्वीप, देश, वन आदि

इस दिग्व्रतकी मर्यादा बतलाई है ॥ ६ ॥ अथवा जीवोंकी हिंसा बचानेके लिये गृहस्थोंको योजनोंके द्वारा दशों दिशाओंकी मर्यादा नियत कर लेनी चाहिये ॥ ७ ॥ नियत की हुई मर्यादाके बाहर पापोंका त्याग हो जाता है तथा मर्यादाके बाहर पापोंके लिये मनुष्योंके संकल्प और भाव भी नहीं होते इसीलिये बुद्धिमान् मर्यादाके बाहर समस्त पापोंका त्याग हो जानेसे उन अणुव्रतोंके मर्यादा बाहर महाव्रत कह देते हैं ॥ ८-९ ॥

हिंसादिक पांचों पापोंका मन, वचन, कायसे और कृत कारित अनुमोदनासे त्याग करना महाव्रत कहलाता है ॥ १० ॥ यद्यपि इस प्रकारका त्याग दिग्व्रत धारण करनेवाले गृहस्थोंके नहीं होता तथापि एकदेश हिंसादिकका त्याग करनेवाले और दिग्व्रत धारण करनेवाले गृहस्थोंके मर्यादा बाहर उपचारसे महाव्रत माना जाता है ॥ ११ ॥ इस दिग्व्रतको धारण करनेसे सन्तोष होता है, मर्यादाके बाहर भ्रमणका त्याग हो जाता है और हिंसादि पापोंका सर्वथा त्याग हो जाता है इसलिये दिग्व्रत धारण करनेवाले गृहस्थोंको महा पुण्यकी प्राप्ति होती है ॥ १२ ॥

इस दिग्व्रतको धारण करते समय बुद्धिमान गृहस्थोंको अपने स्वार्थको वशमें कर जीवनपर्यंततकके लिये नियम करना चाहिये ॥ १३ ॥ जो गृहस्थ अतिचार रहित इस दिग्व्रतको पालन करता है वह सुख देनेवाले महा पुण्यको प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

प्रश्न—हे भगवान्! कृपाकर इस व्रतके अतिचारों निरूपण कीजिये।

उत्तर—हे मित्र! तू चित्त लगाकर सुन, मैं उन अतिचारोंको कहता हूँ ॥ १५ ॥ ऊर्ध्वव्यतिक्रम, अधोव्यतिक्रम, तिर्यग्व्यतिक्रम,

क्षेत्रवृद्धि और विस्मरण ये पांच इस दिग्व्रतके अतिचार हैं ॥ १६ ॥ जो प्रमादसे अज्ञानसे अथवा किसी कार्यके वश होकर ऊपरकी (ऊर्ध्व दिशाकी) नियत की हुई मर्यादाको उल्लंघन करते हैं उनके दोष उत्पन्न करनेवाला ऊर्ध्वव्यतिक्रम नामका पहिला अतिचार होता है ॥१७॥

जो किसी कार्यके वशसे नियत की हुई अधोलोककी मर्यादाका उल्लंघन करते हैं उनके व्रतको नाश करनेवाला दूसरा अधोव्यतिक्रम नामका अतिचार लगता है ॥ १८ ॥ जो लोभके वश होकर आठों दिशाओंकी मर्यादाका त्याग कर देते हैं उनके व्रतको घात करनेवाला और असह्य ऐसा तिर्यग्व्यतिक्रम नामका अतिचार लगता है ॥१९॥ जो पुरुष प्रमाद अज्ञान अथवा लोभसे सब दिशाओंके क्षेत्रकी मर्यादाको बढ़ा लेते हैं उनके क्षेत्रवृद्धि नामका अतिचार होता है ॥२०॥ जो दिग्व्रतमें धारण की हुई मर्यादाको ही भूल जाते हैं उनके पाप संताप और दुःख देनेवाला विस्मरण नामका अतिचार होता है ॥ २१ ॥

हे भव्य ! तू दयाको पालन करनेके लिये और व्रतोंको शुद्ध करनेके लिये अतिचारोंको छोड़कर पुण्य बढ़ानेवाले दिग्व्रतको धारण कर ॥ २२ ॥ इस प्रकार पहिले गुणव्रतका व्याख्यानकर अब तेरे लिये अनर्थदंडविरति नामके दूसरे गुणव्रतका व्याख्यान करता हूँ ॥२३॥ जो पुरुषोत्तम दिग्व्रतका पालन करता हुआ भी विना कारणके लगनेवाले पापोंका त्याग करता है उसके अनर्थदंडविरति नामका व्रत होता है ॥ २४ ॥

यद्यपि अनर्थदंडके बहुतसे भेद हैं तथापि व्यर्थ ही पापोंको उत्पन्न करनेवाले उसके पांचों भेदोंको मैं कहता हूँ । भावार्थ—बहुतसे भेद इन्हीं पांचोंमें अन्तर्भूत हैं ॥ २५ ॥ पापोपदेश, हिंसादान, दुराचरणोंको करनेवाला अपध्यान, कानोंको दूषित करनेवाली दुःश्रुति

और प्रमादके वश रहनेवालोंकी प्रमादचर्या ये पांच अनर्थदंडके औत्सर्गिक वा मुख्य भेद हैं ॥ २६–२७ ॥

हाथी घोड़े आदि तिर्यंचोंके बांधने, उनके खरीदने वेचनेके लिये, जीवोंकी हिंसा करनेके लिये, खेती आरम्भ आदिके वचन कहनेके लिये, विवाहके लिये, झूठ चोरी परिग्रहके लिये, कुगुरु कुदेव आदिकी पूजा करने, पाप बढ़ाने, मिथ्यात्व सेवन करनेके लिये, घरके निंद्य व्यापार करनेके लिये, श्रेष्ठ धर्मकी क्रियाओंको रोकनेके लिये, धन कमानेके लिये, दीक्षा लेनेसे रोकनेके लिये, जो अज्ञानी जीव दूसरे लोगोंको उपदेश दिया करते हैं उसको भगवान जिनेन्द्रदेवने पापोपदेश नामका पहिला अनर्थदंड कहा है ॥ २८–३१ ॥

जो मूर्ख लोगोंके द्वारा पापरूप उपदेश दिया जाता है उसको विद्वान् लोग दुःख देनेवाला पापोपदेश अनर्थदंड कहते हैं ॥ ३२ ॥ विद्वान् लोगोंको धर्मोपदेश छोड़कर अपने वा दूसरेके लिये दुःखका सागर ऐसा पापोपदेश कभी नहीं देना चाहिये ॥ ३३ ॥ इसका भी कारण यह है कि जो उन पापोंको करता है या उनका उपदेश देता है, या उनमें अपनी सम्मति देता है, उन सब मूर्खोंके एकसा पाप लगता है ॥ ३४ ॥

इसलिये हे मित्र ! तू सदा धर्मोपदेश कर। कण्ठगत प्राण होने पर भी पापोपदेश मत कर पापोपदेशका सर्वथा त्याग कर ॥ ३५ ॥

तलवार आदि सब प्रकारके शस्त्र, कुदाल, कुठार, लकड़ी, रस्सी, अग्नि, सांकल जो जो वैल घोड़ा आदि पशुओंके मारने वा बांधनेके कारण हों, जो जो हिंसाके उपकरण हों, चक्की, उखली, चूलि, वुहारी आदि पाप उत्पन्न करनेवाले हों तथा विष आदि और भी जो जो जीवोंके घातक हों उन सबका दूसरोंके लिये देना

हिंसादान कहलाता है। क्योंकि ये सब कर्मोंके बन्धका कारण है ॥ ३६-३८ ॥

मूर्ख लोग जीवोंको दुःख देनेवाले, बाधा पहुंचनेवाले जो जो पदार्थ दूसरोंको देते हैं वह सब गौतमादि देवोंने हिंसादान कहा है ॥ ३९ ॥ गृहस्थोंको महा हिंसा करनेवाला लोहा आदिका व्यापार भी नहीं करना चाहिये क्योंकि ऐसा व्यापार सब अशुभ है और पाप उत्पन्न करनेवाला है ॥ ४० ॥ हिंसा और जीवोंका विध्वंस करनेवाला लोहा आदि कहीं नहीं लेजाना चाहिये। क्योंकि उस लोहेसे पाप उत्पन्न करनेवाले शस्त्र आदि बन सकते हैं ॥ ४१ ॥ विवेकी पुरुषोंको पाप उत्पन्न करनेवाला मधु वा शहद नहीं लेना चाहिये क्योंकि वह अनेक जीवोंकी हिंसासे उत्पन्न होता है और अनेक जीवोंसे भरा रहता है ॥ ४२ ॥

अदरख आदि कंदमूल भी अनेक जीव उत्पन्न करनेवाले व महा पाप प्रकट करनेवाले हैं इसलिये इनका व्यवसायकर धन कमाना भी उचित नहीं है ॥ ४३ ॥ तिल आदि ऐसे धान्य जो कि कीड़ोंके घर हैं नहीं भरने चाहिये और न ऐसे धान्योंका तेल निकालना चाहिये क्योंकि ऐसे धान्योंका तेल निकालनेसे अनेक जीवोंका विनाश होता है ॥ ४४ ॥ अपनी कीर्ति बढ़ानेके लिये भी बावड़ी कूआ तलाव आदि भी नहीं बनवाना चाहिये। क्योंकि इन सबका बनवाना पाप उत्पन्न करनेवाला और अनेक पंचेन्द्रिय जीवोंका घात करनेवाला है ॥ ४५ ॥

गृहस्थोंको अपने घरके कामोंके लिये भी वृक्षोंको नहीं कटवाना चाहिये। क्योंकि वृक्षोंका कटवाना अनेक पापोंका उत्पन्न करनेवाला, दुःखोंका घर और अनेक जीवोंका नाश करनेवाला है ॥ ४६ ॥

अपना घर बनवानेके लिये भी गृहस्थोंको ईंटे नहीं पकवाना वा बनवाना चाहिये । क्योंकि ईंटोंका बनवाना वा पकवाना त्रस स्थावर सब जीवोंकी हिंसा करनेवाला और पापोंका सागर है ॥ ४७ ॥ उत्तम पुरुषोंको बरसातके दिनोंमें द्रव्य कमानेके लिये गाड़ी लेकर नहीं जाना चाहिये क्योंकि बरसातमें गाड़ी लेजानेसे अनेक जीवोंकी हिंसा होती है ॥ ४८ ॥

बहुत दिनके रक्खे हुए मक्खनमें अनेक त्रस जीव भरे रहते हैं । इसलिये चतुर पुरुषोंको उसका घी नहीं बनवाना चाहिये । क्योंकि यह कार्य भी परलोकमें पाप उत्पन्न करनेवाला है ॥ ४९ ॥ इसी प्रकार अनेक त्रस जीवोंकी हिंसा करनेवाले गुड़, पुष्प, लाख, मृगचर्म, वस्त्र धोनेकी सामग्री, कीड़ोंसे भरे हुए पशु सेवक आदि तथा और भी जोर पाप उत्पन्न करनेवाले, जीवोंकी हिंसा करनेवाले, निंद्य और सज्जन पुरुषोंके द्वारा वर्जित पदार्थ हैं वे सब पदार्थ द्रव्य कमानेके लिये विवेकी पुरुषोंको नहीं ले जाना चाहिये और अहिंसा-व्रतको शुद्ध रखनेके लिये न ऐसे पदार्थ किसी दूसरेको देने चाहिये ॥ ५०-५२ ॥

जो पुरुष अत्यन्त लोभी हैं तथा हिंसा करनेवाले पदार्थोंका व्यापार करते हैं, पाप कर्मके उदयसे उनके घर रहनेवाली लक्ष्मी भी अपने आप चली जाती है और वे दरिद्रताके सन्मुख हो जाते हैं ॥५३॥ जो न्यायमार्गमें रहकर काम करते हैं और जिन्होंने लोभको अपने हृदयसे निकाल दिया है ऐसे मनुष्योंके उत्तम आचरण करनेसे और पुण्य कर्मके उदयसे लक्ष्मी अपने आप आजाती है ॥ ५४ ॥ यही समझकर दरिद्री गृहस्थोंको भी धन वा द्रव्य कमानेके लिये निंद्य पदार्थोंको स्वीकार नहीं करना चाहिये ॥५५॥ अपनी कीर्ति बढ़ा-

नेके लिये, लोभके लिये वा अपनी प्रतिष्ठा प्रगट करनेके लिये कण्ठगत प्राण होनेपर भी हिंसा करनेवाले पदार्थोंको कभी नहीं देना चाहिये क्योंकि इनका देना हिंसादान है ॥ ५६ ॥

मूर्खलोग जो राग अथवा द्वेषसे दूसरोंके वध बन्धनका, उच्चाटन, मारण वशीकरण आदिका, शोक क्लेश महा दुःख देने आदिका, दूसरेके भोगोपभोगके पदार्थोंके हरण करने वा परस्त्रीके हरण करनेका अथवा किसीके द्रव्य मारनेका चिन्तवन करते हैं उसको अपध्यान कहते हैं ॥५७-५८॥ दूसरे मनुष्योंका जो कुछ पापरूप चिन्तवन करना है अथवा दूसरोंको दुःख देनेके कारणोंका चिन्तवन करना है, और दूसरोंके अहितका चिन्तवन करना है वह सब नरकमें पटकनेवाला अपध्यान वा कुध्यान है ॥ ५९ ॥

जो दुष्ट व्यर्थ ही अपध्यान करता रहता है वह महापाप इकट्ठे कर अन्तमें नरकरूपी कूएमें पड़ता है ॥ ६० ॥ इसलिये हे भव्य! तू मोक्ष प्राप्त करनेके लिए स्वर्गरूपी घरके आंगनके समान धर्मध्यान धारणकर और दुःखसे उत्पन्न होनेवाले अपध्यानका त्यागकर ॥६१॥

जो द्रव्य कमानेकी, व्यापार, खेती आरम्भ आदि करनेकी, घर बनाने आदि शिल्पशास्त्रकी, पशुओंके पालन करनेकी, युद्ध वर्णन करनेकी, मिथ्या एकान्त मतके पुष्ट करनेकी, वशीकरण विद्वेषकरण आदिके कारणोंकी, कुधर्म, कुशास्त्र, कुदेव, कुगुरुकी, कुसंस्कारकी और राग प्रगट करनेकी कथाएं कही वा सुनी जाती हैं और जिन्हें मूर्ख लोग ही कहते वा सुनते हैं उसे दुःश्रुति कहते हैं। यह दुःश्रुति अनेक पाप और दुःख देनेवाली और स्वर्ग मोक्षरूपी घरको बन्द करनेके लिये अर्गलके समान है ॥ ६२-६५ ॥

जो अज्ञानी लोग राजकथा, चोरकथा, भोजनकथा, स्त्रीकथा

आदि विकथाओंको सुनते हैं वह भी स्वाध्यायसे रहित दुःश्रुति ही है ॥६६॥ ऐसी दुःश्रुतिरूप कथाओंके सुननेसे मिथ्याज्ञान होता है, मिथ्याज्ञानसे रागद्वेष आदि विकार उत्पन्न होते हैं, विकारोंसे पाप होता है, पापोंसे नरकमें पड़ता है और नरकोंमें अनेक प्रकारके दुःख सहने पड़ते हैं ॥ ६७ ॥

जो अज्ञानी इन विकथाओंको कहता है और जो इनको सुनता है उन दोनोंको नरक और तिर्यग्गतिके दुःख देनेवाला समान पाप लगता है ॥ ६८ ॥ इसलिये हे भव्य ! इन कुशास्त्रोंको पाप उत्पन्न करनेवाले और धूर्तोंके बनाये हुए जानकर और जिनेन्द्रदेवके कहे हुए शास्त्रोंको सुनकर किंपाकफलके समान अवश्य ही इनका त्यागकर देना चाहिये ॥ ६९ ॥

विना किसी प्रयोजनके पृथ्वी खोदना, बहुतसा पानी फैलाना, अग्नि जलाना, वायु करना, अपने हाथसे किसी वनको काटना, व्यर्थ ही घूमना आना जाना, वा किसी कार्यमें दूसरोंको आने जानेकी प्रेरणा करना, इत्यादि जो अज्ञानी गृहस्थ प्रमादसे करते हैं उसको गणधरादि देव प्रमादचर्या नामका अनर्थदंड कहते हैं ॥ ७०-७२ ॥ अज्ञानी लोग जो विना किसी प्रयोजनके पापरूप कुछ भी क्रियाएं करते हैं उन सब क्रियाओंको प्रमादचर्या अनर्थदण्ड कहते हैं ॥ ७३ ॥

प्रमादचर्या अनर्थदण्डसे जीवोंका घात होता है, जीवोंका घात होनेसे पाप होता है, पापसे नरक मिलता है और नरकोंमें जो वचनोंसे भी नहीं कहा जा सके ऐसा घोर दुःख मिलता है ॥७४॥ यह श्रेष्ठ धर्म ही सुखका घर है और धर्मकी खानि है, यही समझकर इस श्रेष्ठ धर्मको धारण करनेके लिये ही प्रयत्न करना चाहिये और दुःख

देनेवाले और व्रतोंको भंग करनेवाले प्रमादचर्याका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये ॥ ७५ ॥

ये पांचो ही अनर्थदंड विना ही कारणके दुःख देते हैं और पापोंका संग्रह करते हैं इसीलिये बुद्धिमान लोग इनको अनर्थदंड कहते हैं ॥ ७६ ॥ ये पांचों ही प्रकारके अनर्थदंड समस्त पापोंको उत्पन्न करनेवाले हैं इसलिये मन वचन शरीरका निग्रहकर अपने वशमें कर प्रयत्न पूर्वक इनका त्याग करना चाहिये ॥ ७७ ॥ जो बुद्धिमान अपने चारित्रकी प्रसिद्धिके लिये अतिचारोंको छोड़कर इस अनर्थदण्डविरति नामके व्रतको धारण करता है वह स्वर्गरूपी घरमें अवश्य पहुँचता है ॥ ७८ ॥

प्रश्न—हे भगवन् ! कृपाकर मुझे इस व्रतके सब अतिचारोंका निरूपण कीजिये ।

उत्तर—हे महाभाग ! सुन, मैं उन सब अतिचारोंको कहता हूँ ॥ ७९ ॥ कंदर्प, कौत्कुच्य, मौखर्य, असमीक्ष्याधिकरण, और अति-प्रसाधन ये पांच अनर्थदण्ड व्रतके अतिचार कहे जाते हैं ॥ ८० ॥ जो रागपूर्वक हँसीसे मिले हुए अत्यंत निंद्य और भंड वचन कहे जाते हैं उन दुर्वचनोंको कंदर्प कहते हैं ॥ ८१ ॥ जो हँसी और भंडरूप दुर्वचनोंके साथ शरीरकी निंद्य और दुष्ट चेष्टाकी जाती है उसको कौत्कुच्य कहते हैं ॥ ८२ ॥

जो विना ही कारणके धृष्टतापूर्वक बहुत बोलता है उसके मौखर्य नामका अतिचार लगता है ॥ ८३ ॥ जो मनुष्य हिताहितको विना सोचे समझे किसी कार्यको कर बैठता है उसके पाप और दुःख देनेवाला असमीक्ष्याधिकरण नामका अतिचार लगता है ॥ ८४ ॥ जो अज्ञानी भोगोपभोगकी सामग्रीको आवश्यकतासे अधिक इकट्ठी

कर लेता है उसके अतिप्रसाधन नामका अतिचार लगता है ॥८५॥

हे भव्य ! व्रतोंको पालन करनेके लिये और स्वर्ग-मोक्षके सुख प्राप्त करनेके लिये अनेक भेदोंसे भरे हुए और व्यर्थ ही पाप उत्पन्न करनेवाले इन अनर्थदण्डोंका तू त्याग कर ॥ ८६ ॥

अब आगे गुण बढानेके लिये भोगोपभोग संख्यान नामके तीसरे गुणव्रतको कहते हैं । यह गुणव्रत कामेंद्रियको दमन करनेके लिये है ॥ ८७ ॥ जो बुद्धिमान लोग भोग और उपभोगोंकी संख्या नियत कर लेते हैं उसीको भगवान जिनेन्द्रदेव भोगोपभोग परिमाण नामका श्रेष्ठ व्रत कहते हैं ॥ ८८ ॥ पीनेके पदार्थ, भोजनके पदार्थ तांबूल, गंध, पुष्प आदि जो पदार्थ एकवार काममें आते हैं उनको श्रीगणधरदेव भोग कहते हैं ॥ ८९ ॥ वस्त्र, आभूषण, शय्या, सवारी, घर, स्त्री, हाथी, घोडे आदि जो बार२ सुख देते हैं उनको विद्वान् लोग उपभोग कहते हैं ॥ ९० ॥

हे भव्य ! तू अदरक आदि कंदमूलका भक्षण करना सर्वथा छोड़ दे क्योंकि वह पाप देनेवाला अनंतानंत जीवोंका समुदाय है इसलिये वह अभक्ष्य ही है ॥ ९१ ॥ उन अदरक आदि कंदमूलोंके विदारण करनेसे जहां एक जीवका मरण होता है वहीं पर अनंतानंत जीवोंका मरण अवश्य हो जाता है ॥ ९२ ॥ कंदमूलोंमें पानी और बीजका संयोग होनेसे जहां एक प्राणीकी उत्पत्ति होती है वहीं अनं-तानंत जीवोंकी उत्पत्ति हो जाती है ॥ ९३ ॥

ककड़ी आदि जिन फलोंमें सिरा संधिका निश्चय न हो वा गन्ना आदिकी गांठ हो उसमें अनंतानंत प्राणियोंका निवास रहता है ॥ ९४ ॥ तोडनेसे जिसका समान भाग हो जाय (जिस प्रकार चाकूसे काटते हैं वैसा एकसा टुकड़ा हो जाय) अथवा छिन्नभिन्न

हो जाने पर भी जो उग आवे–पैदा हो जाय ऐसे फल वा वृक्ष अनन्तकायिक कहलाते हैं॥ ९५॥

जो मूर्ख सरसोंके समान भी कंदमूल खाते हैं वे अनन्त जीवोंका भक्षण करनेके कारण मरकर परलोकमें अनेक दुर्गतियोंमें परिभ्रमण करते हैं॥ ९६॥ जो रोगी सुख प्राप्त करनेके लिये कन्दमूलका भक्षण करता है वह अनेक प्रकारके रोगोंसे पीड़ित होकर नरकरूपी कुएमें पडता है॥ ९७॥ तिलके समान जरासे कन्दमूलमें भी अनन्त जीवोंका निवास रहता है इसलिये जो मिथ्यादृष्टि उस कन्द-मूलका भक्षण करते हैं वे उन सब जीवोंको खा जाते हैं॥ ९८॥

कन्दमूल अनन्त जीवोंका पिंड है यह समझकर भी जो उसे भक्षण करते हैं वे अत्यन्त नीच हैं, उन्हें कौनसे पाप लगेंगे अथवा उनकी कौनसी गति होगी इस बातको हम जान भी नहीं सकते॥९९॥ इसलिये मनुष्योंको विषके समान सब तरहके कन्दमूलका त्याग कर देना चाहिये क्योंकि उसमें अनन्त जीवोंकी राशि सदा उत्पन्न होती रहती है॥ १००॥ नीम आदिके फूल भी अनेक सूक्ष्म जीवोंसे भरे हुए होते हैं तथा उनमें त्रस जीव उत्पन्न होते रहते हैं उनके खानेसे सब तरहके पाप होते हैं इसलिये हे मित्र! इनका शीघ्र ही त्यागकर देना चाहिये॥ १०१॥

बुद्धिमानोंको पुण्य सम्पादन करने व जिह्वा आदि इन्द्रियोंको दमन करनेके लिये पाप उत्पन्न करनेवाले पत्तेवाले शाक व कीड़ोंसे भरे हुए पुष्प आदि सबको जानकर त्याग कर देना चाहिये॥१०२॥ विद्वानोंको जीवोंकी रक्षा करनेके लिये पाप उत्पन्न करनेवाले बेलकी गिरी जामुन छोटे वेर आदि सबका त्याग कर देना चाहिये॥१०३॥ बेंगन, तरबूज, कुंहड़ा (पेठा वा काशीफल) वा और भी जो कुछ

लोकमें वा शास्त्रोंमें सदोष हों दूषित हों उन सबका त्याग कर देना चाहिये ॥ १०४ ॥

पुण्यवान् मनुष्योंको पापोंसे डरनेके लिये और धर्म पालन करनेके लिये जिनमें दोष अदोषका संदेह हो ऐसे अजान फलोंका भी त्याग कर देना चाहिये ॥ १०५ ॥ हे भव्य ! पापोंको दूर करनेके लिये मक्खन भी अनेक सूक्ष्म जीवोंसे भरा हुआ है, महा निन्द्य है, अनेक दोषोंको उत्पन्न करनेवाला है और नरकके दुःख देनेवाला है ॥१०६॥ विना कतरी हुई साबूत सुपारी छुहारे आदि फलोंमें भी जीव रहते हैं इसलिये अभक्ष्य पदार्थोंका त्याग करनेके लिये विवेकी पुरुषोंको ऐसे फलोंका भी सदाके लिये त्यागकर देना चाहिये ॥ १०७ ॥

जो नीच कीडोंसे भरे हुए साबूत फलोंको खाता है वह अनेक कीडोंको खा जानेके कारण मांसभक्षीके समान समझा जाता है ॥१०८॥ पापोंसे डरनेवाले बुद्धिमानोंको दो दिनसे ऊपरके दही और छाछका त्याग कर देना चाहिये क्योंकि दो दिनके बाद उसमें अनेक एकेंद्रिय दो इन्द्रिय जीव उत्पन्न होजाते हैं ॥ १०९ ॥ पापोंसे डरनेवाले मनुष्योंको सुख प्राप्त करनेके लिये दो दिनके ऊपरका सब प्रकारका भोजन छोड देना चाहिये क्योंकि उसमें दो दिनके बाद एकेंद्रिय, दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय आदि जीव उत्पन्न होजाते हैं ॥ ११० ॥

अग्निपर पका हुआ जो अन्न दुर्गन्धयुक्त हो गया हो, उसका स्वाद विगड गया हो तो अभक्ष्य और अशुभ समझकर उसे भी छोड़ देना चाहिये ॥ १११ ॥ जब जिह्वा इन्द्रियसे ताडित होकर अचार खाते हैं वे उसमें पड़नेवाले अनेक कीडोंका मांस खानेके कारण नीच लोगोंके समान समझते हैं ॥ ११२ ॥

हे मित्र ! प्राणोंका नाश होनेपर भी अचार नहीं खाना चाहिये

और जिसपर सफेदी आजाती है ऐसी फूली हुई चीज भी अनेक कीडोंसे भरी हुई होती है इसलिये वह भी नहीं खानी चाहिये क्योंकि ऐसे पदर्थोंका खाना भी नरक और तिर्यंचगतिके दुःखोंका कारण है॥ ११३ जो मूर्ख छाछमें अन्नको दो दो दिन रखकर (रावरी वा महेरी वनाकर) खाते हैं वे अनेक कीड़ोंको खा जानेके कारण नीचोंके समान समझे जाते हैं ॥ ११४ ॥ जो जिह्वालम्पटी मूर्ख अभक्ष्य पदार्थोंका भक्षण करते हैं वे अपार पापभारके कारण परलोकमें नरकरूपी महासागरमें डूबते हैं ॥ ११५ ॥

मनुष्योंको विष मिला भोजन खालेना अच्छा, एक प्राणीको मार डालना अच्छा परंतु अनंत जन्मोंतक दुःख देनेवाले अभक्ष्य पदार्थोंका भक्षण करना अच्छा नहीं ॥ ११६ ॥ यही समझकर श्रावकोंको धर्म और व्रतोंको शुद्ध रखनेके लिये अभक्ष्य फलोंका विष्टाके समान दूरसे ही त्याग कर देना चाहिये ॥११७। जो पदार्थ अपने लिये अनिष्ट हो अथवा उंटनीका दूध आदि अनुपसेव्य (जिसे सद्-गृहस्थ सेवन न करते हों) हों ऐसे समस्त पदार्थोंका त्याग कर व्रत धारण करना चाहिये ॥ ११८ ॥

गणधर देवोंने गृहस्थोंको सुख पहुँचानेके लिये भोगोपभोगोंका त्याग करनेके लिये यम और नियम बतलाये हैं। भोगोपभोगोंका जन्मपर्यन्त त्याग करना यम है और कुछ दिनके लिये त्याग करना नियम है ॥ ११९ ॥ जो सदोष वा निर्दोष पदार्थ जन्म पर्यंतके लिये त्याग किया जाता है वह बुद्धिमानोंको मोक्ष देनेवाला यम कहलाता है ॥१२०॥ तथा धर्मपालन करनेके लिये जो भोगोपभोग पदार्थोंका महीना पंद्रह दिन दो महीना चार महीना वर्ष दिन आदिकी संख्या नियत कर त्याग किया जाता है वह स्वर्गकी सम्पदा देनेवाला नियम कहलाता है ॥ १२१ ॥

बुद्धिमान लोगोंको परलोकके सुख प्राप्त करनेके लिये अपनी शक्तिको प्रकट कर भोगोपभोगके समस्त पदार्थोंमें यम नियम धारण करना चाहिये ॥ १२२ ॥ छहों रसोंसे परिपूर्ण भोजन, पान, कुँकुम, पुष्प, तांबुल, गीत, नृत्य, ब्रह्मचर्य, स्नान, आभूषण, वस्त्र, वाहन, शयन, आसन और सचित्त पदार्थोंकी संख्या नियत कर प्रतिदिन इन सबका प्रमाण नियत कर लेना चाहिये ॥ १२३-१२४ ॥ मुहूर्त, दिन, रात्रि, पक्ष, महीना छह महीना आदिका नियम लेकर भोगोपभोगोंकी मर्यादा नियत कर लेनी चाहिये ॥ १२५ ॥

भोगोपभोगोंकी संख्या नियत कर लेनेसे मन और इंद्रियां वशमें होजाती हैं और मनुष्योंको तृष्णा, क्रोध, लोभ आदि सब विकार वा अन्तरंग शत्रु नष्ट हो जाते हैं ॥ १२६ ॥ भोगोंमें सन्तोष धारण करनेसे मनुष्योंको सन्तोषजन्य सुख प्राप्त होता है, कीर्ति और प्रतिष्ठा बढ़ती है तथा भोगोपभोगोंकी अनेक सम्पदाएं प्राप्त होती हैं ॥ १२७॥ ज्ञानी पुरुषोंको भोगोपभोगोंका परिमाण नियत कर लेनेसे इस संसारमें आनंद प्राप्त होता है, स्वर्गमोक्षका साधन महा धर्मध्यान प्रगट होता है तथा परलोकमें इन्द्र चक्रवर्ती आदिकी ऋद्धियां और विभूतियां प्राप्त होती हैं और तीनों लोकोंको क्षोभ उत्पन्न करनेवाला तीर्थंकर पद प्राप्त होता है ॥ १२८-२९ ॥

इसलिये बुद्धिमानोंको विधिपूर्वक भोगोपभोग पदार्थोंकी संख्या नियत कर लेनी चाहिये । विना व्रतोंके एक घड़ी भी कभी व्यतीत नहीं करनी चाहिये ॥ १३० ॥ जो नष्ट बुद्धिवाले नीच पुरुष भोगोपभोगोंकी संख्या नियत नहीं करते वे सदा समस्त पदार्थोंका भक्षण करते रहनेके कारण सज्जन लोगोंमें पशु माने जाते हैं ॥ १३१ ॥ विना यम नियमके मूर्ख लोग दरिद्री होते हैं और तृष्णासे अनेक पापोंको उत्पन्न कर दुर्गतियोंमें परिभ्रमण करते हैं ॥ १३२ ॥

जो धनी पुरुष इच्छापूर्वक भोगोपभोग सम्पदाओंको ग्रहण करते हैं वे विना नियमके दरिद्री होकर दुर्गतिमें परिभ्रमण करते हैं ॥१३३॥ जो गृहस्थ संतोषरूपी अमृतको पीकर भोगोंकी तृष्णाका त्याग कर देते हैं वे जैन शास्त्रोंमें मुनियोंके समान माने जाते हैं ॥१३४॥ समस्त भोगोपभोगोंका त्याग कर देनेसे गृहस्थ भी मुनिके समान माना जाता है और भोगोंकी इच्छा करता हुआ मुनि भी गृहस्थके समान नीच श्रेणीमें गिना जाता है ॥ १३५ ॥

हे विद्वन् ! यही समझकर तुझे धर्म मोक्ष और सुखकी प्राप्तिके लिये थोड़ेसे भोगोंमें सन्तोष देनेवाली भोगोपभोगोंकी संख्या नियत कर लेनी चाहिये ॥ १३६ ॥ जो बुद्धिमान अतिचारोंको छोड़कर भोगोंकी संख्या नियत करते हैं वे सोलहवें स्वर्गके सुख भोगकर अनुक्रमसे मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ १३७ ॥

प्रश्न—हे प्रभो ! मुझपर दया कर उन भोगोपभोग परिमाणके अतीचारोंको कहिये ।

उत्तर—हे भव्य! तू चित्त लगाकर सुन, मैं उन अतीचारोंको कहता हूं ॥ १३८ ॥ विषयानुपेक्षा, अनुस्मृति, अतिलौल्य, अतितृष्णा और अनुभव ये पांच भोगोपभोग परिमाणके अतिचार गिने जाते हैं ॥ १३९ ॥ जो उपेक्षा त्याग वा उदासीनताको छोड़कर आदरपूर्वक सदा भोगोपभोगोंको भोगता रहता है उसके विषयानुपेक्षा (विषयोंसे उदासीन न होना) नामका अतिचार लगता है ॥१४०॥

जो मूर्ख विषयोंको भोगकर पीछेसे उनके सुख सुन्दरताका स्मरण करता है उसके अनुस्मरण नामका अतिचार लगता है ॥१४१॥ जो अत्यंत कामातुर और लोलुपी होकर उन भोगोंका भोग करता है और अत्यंत लोभके कारण फिर भी उनकी इच्छा करता है उसके अतिलौल्य नामका अतिचार होता है ॥१४२॥ अत्यंत लोलुपताके

कारण जो आगामी कालके लिये भी भोगोंकी इच्छा करता है उसके व्रतमें अतितृष्णा नामका अतिचार लगता है ॥ १४३ ॥

जो अत्यन्त आसक्त होनेके कारण जब कभी असमयमें भी भोगोंका भोग करता है उसके भोगोपभोग परिमाण नामके गुणव्रतमें अनुभव नामका अतिचार लगता है ॥ १४४ ॥ जो गृहस्थ केवल काम पीडाको दूर करनेके लिये थोड़ेसे भोगोंको सेवन करते हैं उनके ये अतिचार नहीं लगते ॥ १४५ ॥ जिस प्रकार चोर कोतवालकी मृत्यु चाहता है उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि पुरुष चारित्र मोहनीय कर्मके उदयसे विषयोंका सेवन करते हैं ॥ १४६ ॥

यह समस्त भोगोपभोगोंका परिणाम मोक्षके सुखका कारण है, पुण्यरूपी वनको बढ़ानेके लिये प्रबल मेघ है, पापरूपी वृक्षको जलानेके लिये अग्नि है, अनंत सुखरूपी गुणका कारण है और स्वर्गकी सीढियोंके समान है इसलिये हे विद्वन् ! मोक्ष प्राप्त करनेके लिये तू भोग और उपभोगोंका परिमाण सदाके लिये नियत कर ॥ १४७ ॥

हे भव्य जीव ! यह भोगोपभोग परिमाण नामका व्रत समस्त गुणोंका समुद्र है, दोषरूपी वृक्षोंको जलानेके लिये अग्नि है, विद्वान लोग भी इसकी सेवा करते हैं, स्वर्ग मोक्षका यह एक अद्वितीय कारण है, नरकरूपी घरको बन्द करनेके लिये किवाड है, पाप तथा संतापोंको दूर करनेवाला है और गुणोंसे परिपूर्ण है । इसलिये हे मित्र ! तू मन वचन कायसे इस व्रतका पालन कर ॥ १४८ ॥

इस प्रकार आचार्य श्री सकलकीर्ति विरचित प्रश्नोत्तर श्रावकाचारमें तीनों गुणव्रतोंका निरूपण करनेवाला यह सत्रहवां सर्ग समाप्त हुआ ।

अठारहवां सर्ग।

जो अनन्तगुणोंके सागर हैं, जो गुणस्वरूप हैं, जिनराज हैं और जिन्होंने कर्मरूप शत्रुओंकी सब संतान नाश कर दी हैं ऐसे श्री अरनाथ तीर्थंकरको मैं कर्मरूप शत्रुओंको नाश करनेके लिये नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ इस प्रकार गुणव्रतोंका निरूपण कर अब मैं भव्य जीवोंका उपकार करनेके लिये शिक्षाको संपादन करनेवाले शिक्षा-व्रतोंको कहता हूँ ॥ २ ॥

देशावकाशिक, सामायिक, प्रोषधोपवास और दानके साथ होनेवाला वैयावृत्य ये चार शिक्षाव्रत कहलाते हैं ॥ ३ ॥ दशों दिशाओंकी मर्यादा नियतकर जो बुद्धिमान उसके वहार नहीं जाते भीतर ही रहते हैं उनके श्रीजिनेन्द्रदेव देशावकाशिक व्रत कहते हैं ॥ ४ ॥ इस संसारमें जो दिनोंकी संख्या नियत कर उतने दिनोंके लिये दिग्व्रतका उपसंहार करना दिशाओंकी मर्यादा और घटा लेना देशावकाशिक व्रत कहलाता है ॥ ५ ॥ श्रीजिनेन्द्रदेव वन, घर, नदी, गांव, खेत, कोस, योजन आदिको देशावकाशिककी सीमा बतलाते हैं अर्थात् देशावकाशिक व्रतमें इनकी नियत करनी चाहिये अथवा कोस और योजनोंके द्वारा सीमा नियत करनी चाहिये ॥६॥

श्रीजिनेन्द्रदेव इस देशावकाशिक व्रतकी दिन पक्ष महीना छह महीना एक वर्ष आदिको कालकी मर्यादा कहते हैं अर्थात् कालकी अवधि नियत कर देशावकाशिक व्रत धारण करना चाहिये ॥ ७ ॥ जिसने अपने हृदयमें देशावकाशिक व्रत धारण कर लिया है उसके मर्यादाके बाहर मन वचन कायसे पांचों पापोंकी प्रवृत्ति नहीं होती इसलिये मर्यादाके बाहर समस्त जीवोंकी हिंसाका त्याग होजानेसे

उसके अणुव्रत भी महाव्रतके लिये कल्पना किये जाते हैं।

भावार्थ—प्रत्याख्यानावरण कषायका उदय होनेसे उसके महाव्रत हो तो नहीं सकते परन्तु मर्यादाके वाहर उससे कोई पाप भी नहीं होता इसलिये उसके अणुव्रत मर्यादाके वाहर महाव्रतके समान गिने जाते हैं ॥ ८–९ ॥ देशावकाशिक व्रतको धारण करनेवाले पुरुषके संतोष धारण होता है, जीवोंकी दया करनेरूप महा पुण्यकी प्राप्ति होती है और तृष्णा लोभ आदि विकार सब उसके नष्ट हो जाते हैं ॥ १० ॥

इसलिये हे मित्र ! धर्म धारण करनेके लिये और व्रतोंको पालन करनेके लिये चंचल परिणामोंको छोड़कर कालकी मर्यादा कर तथा घर आदिकी सीमा नियतकर तुझे यह देशावकाशिक व्रत अवश्य धारण करना चाहिये ॥ ११ ॥ जो मनुष्य समस्त अतिचारोंको छोड़कर इस देशावकाशिक व्रतको धारण करते हैं उनके घरके आंगनमें स्वर्गकी लक्ष्मी अपने आप आ जाती है ॥ १२ ॥

प्रश्न—हे स्वामिन् ! कृपाकर देशावकाशिक व्रतके अतिचारोंको निरूपण कीजिये ।

उत्तर—हे वत्स ! सुन, अब मैं इस व्रतके पांचों अतिचारोंको कहता हूँ ॥१३॥ प्रेषण, शब्द, आनयन, रूपाभिव्यक्ति और पुद्गलक्षेपण, ये पांच अतिचार देशावकाशिकके कहलाते हैं ॥१४॥ जो स्वयं मर्यादा किये हुये देशके भीतर रहकर भी मर्यादाके वाहर किसी दूसरेको भेजता है उसके प्रेषण नामका पहिला अतिचार लगता है ॥ १५ ॥

जो मनुष्य मर्यादाके भीतर रहता हुआ भी काम करनेवालोंको मर्यादाके वाहर देखकर उनको काम लगानेके लिये या भीतर बुलानेके लिये खकारकर या और किसी प्रकारके शब्दोंका इशारा

करता है वह भी दोषी ही है अर्थात् उसके शब्द नामका दूसरा अतिचार लगता है ॥ १६ ॥ अपनी नियत की हुई मर्यादाके बाहर रक्खे हुए पदार्थोंको अपने किसी कामके लिये किसी मनुष्यके द्वारा मगाना आनयन नामका अतिचार है ॥ १७ ॥ अपनी नियत की हुई मर्यादाके भीतर रहकर भी काम करनेवालोंको अपना रूप दिखाकर उनसे कोई काम लेना रूपाभिव्यक्ति नामका अतिचार है ॥ १८ ॥

जो मर्यादाके भीतर रहकर भी मर्यादाके बाहर ईंटें पत्थर ढेले आदि फेंककर उनके इशारेसे अपने सेवकोंसें वा अन्य किसीसे काम कराना पुद्गलक्षेपण नामका अतिचार है ॥१९॥ जो नियत की हुई मर्यादाके बाहर न तो किसीको भेजता है न बाहरसे कुछ मंगाता है और न किसी प्रकार इशारा करता है उसके व्रतमें कोई दोष नहीं लग सकता ॥ २० ॥ यही समझकर हे भव्य ! व्रतोंको पालन करनेके लिये तू धर्मको बढ़ानेवाले और पापोंको नाश करनेवाले इस देशावकाशिक व्रतको बड़े प्रयत्नसे पालन कर ॥ २१ ॥

इस प्रकार शिक्षाव्रत कह चुके। अब आगे व्रतोंके लिये और श्रावकोंकी विशुद्धता बढ़ानेके लिये पापोंको नाश करनेवाले सामायिकको कहते हैं ॥ २२ ॥ यह धर्मध्यान और शुक्लध्यानको प्रगट करनेवाला सामायिक श्री जिनेन्द्रदेवने नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल और भावके भेदसे छह प्रकारका बतलाया है ॥२३॥ जो बुद्धिमान् शुभ और अशुभोंके भेदोंको सुनकर रागद्वेषका त्याग कर देता है उसके नाम सामायिक होता है ॥ २४ ॥

जो शुभ और अशुभ रूप चेतन तथा जड़ पदार्थोंको देखकर रागद्वेषादिका त्याग करता है उसका वह स्थापना सामायिक कहलाता

है ॥२५॥ जो सुवर्ण मिट्टी आदि पदार्थोंमें समान भाव रखता है उसके द्रव्य सामायिक होता है। यह द्रव्य सामायिक समतावालेके ही होता है, अन्य किसीके नहीं ॥ २६ ॥ जो किसी शुभ देशमें सुख पाकर और अशुभ देशमें दुःख पाकर रागद्वेषका त्याग कर देता है वह क्षेत्र सामायिक कहलाता है ॥ २७ ॥ जो शीतकालमें तथा उष्णकालमें समता धारण करते हैं, किसी कालको भी सुख वा दुःख देनेवाला नहीं मानते उनके काल सामायिक होता है इसमें कोई संदेह नहीं ॥ २८ ॥

जो मित्र शत्रु आदिमें रागद्वेष छोड़कर समताभाव धारण करते हैं उनके भाव सामायिक होता है ॥ २९ ॥ जो रागद्वेष आदि सब विकारोंको छोड़कर अपने हृदयको समस्त पापोंसे रहित बना लेता है और धर्मध्यान धारण करता है उसके समस्त सुखोंकी खानि, स्वर्ग-मोक्षको देनेवाला और कर्मरूपी वनको जलानेके लिये दावानल अग्निके समान सारभूत सामायिक होता है ॥ ३०-३१ ॥

वह सामायिक किसी गुफामें, वनमें, पर्वत, पर सूने मकानमें, जिनालयमें वा अपने घरमें जहां कि न तो अधिक शीत हो न अधिक उष्णता हो, जहांपर चित्तमें समता बनी रहे, जहांपर कठोर शब्द न होते हों, स्त्रियां न हों, पशु न हों, लोग न हों, मित्र न हों, जो ध्यानके योग्य एकान्त स्थान हो और जहांपर डांस मच्छर कीड़े आदि न हों ऐसे स्थान पर एक धोतीके (एक वस्त्रके) विना अन्य सर्व बाह्य परिग्रहोंका त्यागकर प्रोषधोपवास अथवा एकाशन करके अवश्य सामायिक करना चाहिये ॥ ३२-३४ ॥ उस समय शरीरको निश्चल रखना चाहिये, भौंह चलाना मुंह मटकाना आदि सबका त्यागकर देना चाहिये, मुखपर समताभाव प्रगट होना चाहिये, हाथसे इशारा करना आदि सबका त्याग कर देना चाहिये ॥३५॥

बुद्धिमानोंको जिनालय अथवा घरमें उत्तरकी ओर मुँहकरके हाथ जोड़कर और स्वस्थचित्त होकर खड़े होना चाहिये ॥ ३६ ॥ संकल्प विकल्प आदिका त्यागकर मनको स्थिर रखना चाहिये, घरकी चिंता सब छोड़ देनी चाहिये, तथा ध्यान और अध्ययनमें तत्पर रहना चाहिये ॥ ३७ ॥ उस समय बुद्धिमानोंको अपने हृदयमें धर्म संवेग और वैराग्य धारण करना चाहिये, रागद्वेष छोड़ देना चाहिये और सामायिक पाठके अर्थका चिंतवन करना चाहिये ॥ ३८ ॥

वाग्जाल, कठोर शब्द, विकथा आदिका त्याग कर देना चाहिये। सामायिक पाठको मधुर स्वरसे पढ़ना चाहिये, स्वर अक्षर पदार्थ आदिका शुद्ध उच्चारण करना चाहिये, न जोरसे न धीरे पढ़ना चाहिये, पाठके अक्षर न कम हो न अधिक हों। अपने आत्माको शुद्ध करनेके लिये शुभ और शुद्ध पाठ पढ़ना चाहिये ॥ ३९-४० ॥

सबसे पहिले ईर्यापथ शुद्धि करनी चाहिये और फिर दो घडीका नियम लेकर चैत्य भक्तिका पाठ पढना चाहिये ॥४१॥ फिर वस्त्रसे वा अन्य किसी पीछी आदि साधनसे पृथ्वीको शुद्धकर पंचांग वा अष्टांग नमस्कार करना चाहिये ॥ ४२ ॥ फिर खड़े होकर आत्माको शुद्ध करनेवाला कायोत्सर्ग करना चाहिये अर्थात् मोक्ष प्राप्त करनेके लिये नौवार नमस्कार मंत्र पढ़ना चाहिये ॥ ४३ ॥ आदि और अन्तमें बृहत् नमस्कार करना चाहिये अर्थात् एक एक प्रमाण करना चाहिये और तीन तीन आवर्त करना चाहिये ॥ ४४ ॥

तदनंतर बुद्धिमानोंको चौवीस तीर्थंकरोंकी स्तुति करनी चाहिये तथा इसके आदि अन्तमें भी एक एक नमस्कार और तीन तीन आवर्त करने चाहिये ॥ ४५ ॥ सामायिक करनेवालोंको एक एक

व्युत्सर्गमें (कायोत्सर्गमें जो कि आदि अन्तमें किया जाता है) चार चार नमस्कार और बारह बारह आवर्त करने पड़ते हैं ॥४६॥ फिर चैत्यवन्दन कर पांचों परमेष्ठियोंका स्तवन करना चाहिये। और फिर कायोत्सर्गादि समस्त क्रियाएं कर लोकोत्तम पांचों परमेष्ठियोंका स्तवन करना चाहिये ॥ ४७ ॥ हे भव्य ! मोक्ष प्राप्त करनेके लिये सामायिक करते समय चित्तको एकाग्र कर आदरपूर्वक व्युत्सर्ग आदि सब क्रियाएं करनी चाहिये ॥ ४८ ॥

वैराग्य परिणामोंको बढ़ानेके लिये, आत्माका कल्याण करनेके लिये, और संवेग धारण करनेके लिये अनित्य, अशरण आदि अनुप्रेक्षाओंका चिंतवन करना चाहिये ॥ ४९ ॥ यह शरीर अपवित्र है, संसार अनेक महा दुःखोंसे परिपूर्ण है और भोग नरकोंके दुःख देनेवाले हैं इसलिये शरीर संसार और भोगोंसे सदा विरक्त रहना चाहिये ॥ ५० ॥

छह द्रव्य और सातों तत्त्व सम्यग्दर्शनकी खानि है इसलिये हे भव्य ! छहों द्रव्योंमें, सातों तत्त्वोंमें और सारभूत रत्नत्रयमें सामायिक करते समय सदा अपनी भावनाएं रखनी चाहिए ॥ ५१ ॥ आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय ये चारों ही धर्मध्यान स्वर्गरूपी घरके आंगन हैं इसलिये सामायिकमें इन चारों धर्मध्यानोंका अवश्य धारण करना चाहिये ॥ ५२ ॥ सामायिक करते समय बुद्धिमानोंको ऐसा ही चिंतवन करना चाहिये जिससे इन्द्रियां सब वशमें होजाय और मन निश्चल होजाय ॥ ५३ ॥

सामायिक करनेवाले धीरवीर पुरुषोंको प्रतिज्ञापूर्वक कातरलोगोंको भय उत्पन्न करनेवाली शीत, उष्ण, दंशमसक आदि बाईसों परिषह सहन करनी चाहिये ॥ ५४ ॥ समताभावोंको धारण करने-

वाले बुद्धिमानोंको तिर्यञ्च, देव, मनुष्य और अचेतनोंके किये हुए तथा घोर दुःख देनेवाले उपसर्गोंको भी सहन करना चाहिये ॥५५॥ अनिष्ट संयोग, इष्ट वियोग और रोगसे उत्पन्न होनेवाले आर्तध्यान तथा निदानका भी त्याग कर देना चाहिये, क्योंकि यह चारों प्रकारका आर्तध्यान तिर्यञ्च योनिका कारण है ॥ ५६ ॥

सामायिक करनेवाले पुरुषको हिंसानंद, स्तेयानंद, अनृतानंद और विषय संरक्षणानन्द (हिंसामें आनन्द मानना, झूठ बोलनेमें आनन्द मानना, चोरीमें आनन्द मानना और परिग्रहोंकी रक्षा करनेमें आनन्द मानना) इन चारों प्रकारके रौद्रध्यानोंका त्याग कर देना चाहिये; क्योंकि ये चारों प्रकारके रौद्रध्यान नरकमें पटकनेवाले हैं ॥ ५७ ॥

आर्तध्यान और रौद्रध्यान ये दोनों प्रकारके ध्यान अपध्यान हैं, महापाप उत्पन्न करनेवाले हैं और निंद्य हैं इसलिये सामायिक करने-वाले पुरुषोंको घोर उपसर्ग होने पर भी इनसे बचते रहना चाहिये, इनका त्याग कर देना चाहिये ॥ ५८ ॥ व्रतोंको निर्दोष पालन करनेके लिये सामायिक करनेवालोंको तत्त्वोंके चिंतवनका अवलम्बन लेकर धर्मध्यान आदिके द्वारा सामायिकके समयकी वृद्धि करनी चाहिये अर्थात् धर्मध्यान धारण कर अधिक समय तक सामायिक करनेका अभ्यास करना चाहिये ॥ ५९ ॥

सामायिक करते समय बाह्य अन्तरङ्ग परिग्रह नहीं होते और न आरम्भ इंद्रियोंके विषय ही होते हैं तथा न कषाय ही होते हैं, अत-एव सामायिकमें हिंसा आदि समस्त पापोंका त्याग हो जानेके कारण उस समय गृहस्थोंके तेरह प्रकारका चारित्र हो जाता है ॥६०-६१॥

सामायिक करता हुआ गृहस्थ समस्त परिग्रहोंका त्याग कर देनेके कारण वस्त्रसहित मुनिके समान साधु अवस्थाको प्राप्त हो जाता

है ॥ ६२ ॥ यह गृहस्थ सामायिकके बलसे पहिलेके इकट्ठे किये हुए पापकर्मोंका नाश करता है और नये कर्मोंको ग्रहण नहीं करता है ॥ ६३ ॥

सामायिक करनेवाला बुद्धिमान चित्तमें समता धारण करनेके कारण स्वर्ग राज्यका कारण ऐसा महापुण्य उपार्जन करता है ॥६४॥ जो भव्य जीव शुभ व्रतोंको करता हुआ सामायिक करता है वह सोलहवें स्वर्गकी संपदा पाकर मोक्षमें जा विराजमान होता है ॥६५॥ शास्त्रोंको जाननेवाले और व्रतोंको पालन करनेवाले भव्य मुनि सामा-यिकके कारण अत्यन्त समताभाव धारण करते हैं इसलिये वे अग्रिम (उत्तम) ग्रैवेयकमें ही जाकर जन्म लेते हैं ॥ ६६ ॥

सामायिकमें समस्त परिग्रहोंका त्याग हो जाता है और समस्त अशुभ छूट जाते हैं इसलिये गृहस्थोंके लिये सामायिकके समान अन्य कोई भी धर्म किसी तरह नहीं हो सकता ॥६७॥ यही समझकर बुद्धिमानोंको प्रतिदिन सवेरे ही उठकर धर्म धारण करनेके लिये सबसे पहिले पूर्णरीतिसे सामायिक करना चाहिये ॥ ६८ ॥

तदनंतर मनुष्योंको घरके काम करने चाहिये; क्योंकि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पदार्थोंमें सबसे पहिले धर्म पुरुषार्थ ही कहा है ॥ ६९ ॥ इसी प्रकार चतुर पुरुषोंको दोपहरके समय भी पहिले धर्म और संवेगका कारण ऐसा शुभ सामायिक करना चाहिये और फिर भोजन करना चाहिये ॥ ७० ॥ तथा बुद्धिमानोंको धर्मकी सिद्धिके लिये शामके समयमें भी पहिले सारभूत सामायिक करना चाहिये और फिर शयन करना (सोना) चाहिये ॥ ७१ ॥

इस प्रकार प्रत्येक गृहस्थको प्रतिदिन तीन तीन वार सामायिक करना चाहिये और प्राण नाश होने पर तथा महारोगादिक होने पर

भी इस सामायिकके नियमका भंग नहीं करना चाहिये ॥ ७२ ॥ जो बुद्धिमान सवेरे दोपहर शाम तीनों समय धर्मध्यान करते हैं वा सामायिकवा जप आदि करते हैं वे हिंसा आदिसे उत्पन्न हुए समस्त पापोंको नष्टकर महापुण्य उपार्जन करते हैं ॥ ७३ ॥

सामायिकमें बहुतसे आरंभ और बहुतसे परिग्रहका भार भरा नहीं रहता इसलिये सामायिक करनेवाले गृहस्थ हलके जहाजके समान शीघ्र ही संसार रूपी समुद्रके पार हो जाते हैं ॥ ७४ ॥ जो सामायिकके सूत्रपाठोंका पाठ नहीं कर सकते उन्हें एकाग्रचित्त होकर एकसौ पचास वार पंचनमस्कार मंत्रका जाप करना चाहिये ॥ ७५ ॥

जो गृहस्थाश्रम रूपी रथमें लगे रहनेपर भी सामायिक नहीं करते, सदा पापकार्योंकी चितामें ही लगे रहते हैं वे नीच बैल हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ७६ ॥ जो अज्ञानी इस श्रेष्ठ पंच नमस्कार मंत्रका जाप नहीं करते उनका मुँह महापाप करनेवाले बिलके समान समझना चाहिये ॥ ७७ ॥

जो मनुष्य सामायिक, महामंत्र, स्तवन आदिसे भरपूर धर्मध्यानको नहीं करते हैं वे पापके कारण नरकमें ही पड़ते हैं ॥ ७८ ॥ यही समझकर तू सुखमें, दुःखमें, भयमें, मार्गमें, रोगमें, सोनेमें, बैठनेमें सर्व स्थानोंमें पदपदपर इस मंत्रराज (पंच नमस्कार मंत्र) का जप कर ॥ ७९ ॥ जिसप्रकार परमाणुसे कोई छोटा नहीं है और आकाशसे अन्य कोई बड़ा नहीं है उसी प्रकार पंच नमस्कार मंत्रसे बढ़कर और कोई मंत्र इस संसारमें नहीं है ॥ ८० ॥ इस मंत्रराजके प्रतापसे शाकिनी, भूत, पिशाच, रोग, चोर, राज्यबन्धन आदि किसी प्रकारका भय मनुष्योंको नहीं होता है ॥ ८१ ॥

जो जीव सातों व्यसनोंमें आसक्त थे और महा पापी थे वे भी मरनेके समय सब मन्त्रोंके स्वामी इस पंच नमस्कार मंत्रका जपकर शुभ कर्मके उदयसे स्वर्गमें जा पहुँचे हैं ॥ ८२ ॥ इस मंत्रराजके प्रतापसे श्रेष्ठ लक्ष्मी भी विवेकी पुरुषोंके घरकी दासीके समान वश हो जाती है और दरिद्रता सब नष्ट हो जाती है ॥ ८३ ॥ मुझे तो ऐसा निश्चय है कि चिंतामणी रत्न, निधियां, कल्पवृक्ष और कामधेनु आदि सब इस पंच नमस्कार मंत्रके सदा कालसे चले आये सेवक ही हैं ॥ ८४ ॥

जो मनुष्य एकाग्रचित्तसे सारभूत पंचपरमेष्ठियोंका ध्यान करते हैं वे इन्द्र, चक्रवर्ती और तीर्थङ्करकी संपदाको अवश्य प्राप्त होते हैं ॥ ८५ ॥ बहुत कहनेसे क्या लाभ है ? थोड़ेसेमें इतना समझ लेना चाहिये कि मंत्रके प्रभावसे तीनों लोकोंमें उत्पन्न होनेवाले जितने सुख हैं उन सबको पाकर बुद्धिमान लोग मोक्षमें ही विराजमान होते हैं ॥ ८६ ॥ दिन रातमें जो पाप उत्पन्न होते हैं उन सबके क्षय होनेका कारण प्रतिक्रमण है इसलिये बुद्धिमानोंको शाम सवेरे दोनों समय प्रतिक्रमण अवश्य करना चाहिये ॥ ८७ ॥

उत्तम गृहस्थोंको धर्मध्यानकी सिद्धिके लिये अपनी शक्तिके अनुसार प्रतिदिन चारों प्रकारका स्वाध्याय करना चाहिये ॥८८॥ उत्कृष्ट श्रावकोंको रात्रिके समय धर्म पालन करनेके लिये और अहिंसा आदि व्रतोंकी रक्षा करनेके लिये प्रतिदिन दो योग धारण करने चाहिये अर्थात् सुबह शाम दोनों समय ध्यान करना चाहिये ॥८९॥ जो उत्तम बुद्धिमान ऊपर लिखे आवश्यकोंको प्रतिदिन करते हैं वे मुनियोंके समान शुभ स्वर्गमें जाते हैं और फिर अनुक्रमसे मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ ९० ॥

क्षुल्लक व्रतोंको (एकदेश व्रतोंको) धारण करनेवाले अणुव्रतियोंको प्रतिदिन समस्त आवश्यक करने चाहिये तथा रोग क्लेश आदि आ जानेपर भी कभी नहीं छोड़ने चाहिये ॥ ९१ ॥ जिस प्रकार दांत रहित हाथी और दाढ रहित वाघ अपने काम करनेमें समर्थ नहीं होता उसी प्रकार आवश्यकोंको न करनेवाला मनुष्य अपने कर्मोंको नाश नहीं कर सकता ॥ ९२ ॥ जिस प्रकार समयपर बोया हुआ बटका बीज बहुतसे फलोंको फलता है उसी प्रकार अपने २ समयपर किये हुए आवश्यक भी बहुतसे फलोंको फलते हैं ॥ ९३ ॥

जिस प्रकार असमयमें बोये हुए वटके बीजपर उत्तम फल नहीं लगते उसी प्रकार आवश्यक भी यदि समयपर नहीं किये जांय तो उनसे कर्म नष्ट नहीं हो सकते ॥ ९४ ॥ इसलिये हे मित्र ! सवेरे, दोपहर और शामको तीनों समय चार चार घड़ी पर्यंत प्रतिदिन सामायिक करना चाहिये ॥ ९५ ॥ चतुर पुरुषोंको इन आवश्यक कार्योंमें अतिक्रम, अतिचार और असह्य अनाचार कभी नहीं करना चाहिये ॥ ९६ ॥

अपने मनसे शुद्धताकी कमी करना अतिक्रम कहलाता है और विषयोंमें आसक्त होना गृहस्थोंके लिये व्यतिक्रम कहलाता है ॥९७॥ प्रमादके कारण आवश्यकोंमें वा चारित्रमें आलस करना अतिचार है और अत्यन्त मूर्ख मनुष्य जो व्रतोंका भंग कर देते हैं उसे अनाचार कहते हैं ॥ ९८ ॥

अपनी प्रतिज्ञामें तत्पर रहनेवाले बुद्धिमानोंको समस्त व्रतोंको विशुद्ध रखनेके लिये आवश्यकोंमें तथा व्रतादिकोंमें अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार आदि दोषोंका त्याग कर देना चाहिये

॥ ९९ ॥ जो समस्त अतिचारोंको छोड़कर शुद्ध सामायिक करते हैं उनको समस्त पापोंसे रहित महाधर्मकी प्राप्ति होती है ॥ १००॥

प्रश्न—हे स्वामिन् ! कृपाकर मेरे लिये उन अतिचारोंका निरूपण कीजिये।

उत्तर—हे वत्स ! मैं उन दुःख देनेवाले अतिचारोंको कहता हूं, तू चित्त लगाकर सुन ॥ १०१ ॥ वचनदुःप्रणिधान, कायदुःप्रणिधान, मनोदुःप्रणिधान अनादर और अस्मरण ये पांच सामायिकके अतिचार गिने जाते हैं ॥ १०२ ॥ जो सामायिक करता हुआ भी अपने मौनव्रतको छोड़कर बुरे वचन (गाली, गलौच वा हिंसा आदि करनेवाले) कहता है उसके दुःख देनेवाला वचन दुःप्रणिधान नामका अतिचार लगता है ॥ १०३ ॥

जो सामायिक करता हुआ भी अपने स्थान वा आसनको छोड़कर हाथ वा अन्य किसीके इशारेसे शरीरकी चेष्टा करते हैं उनके व्रतमें कायदुःप्रणिधान नामका अतिचार लगता है ॥ १०४ ॥ जो सामायिक करते हुए भी समताभावको छोड़कर अपने मनमें वध बन्ध आदिसे उत्पन्न होनेवाला अशुभ संकल्प विकल्प करते हैं उनके मनोदुःप्रणिधान नामका अतिचार लगता है ॥ १०५ ॥

जो मूर्ख अत्यन्त प्रमादके कारण, विना ही आदरके शुभ सामायिकको करता है उसके अनादर नामका अतिचार लगता है ॥ १०६ ॥ जो सामायिकमें होनेवाले नित्य कर्मोंको चञ्चल हृदयसे करता है (चञ्चल हृदयके कारण कभी किसी क्रियाको व कभी किसी पाठको भूल जाता है) उसके अस्मरण नामका अतिचार लगता है ॥ १०७ ॥ जो अपने समय पर पांचों अतिचारोंको छोड़कर और बत्तीस दोषोंको टालकर सामायिक करता है वह अवश्य ही मोक्षपद प्राप्त करता है ॥ १०८ ॥

प्रश्न—हे प्रभो ! पुण्य उपार्जन करनेके लिये उन दोषोंको कृपाकर कहिये ।

उत्तर—हे बुद्धिमान् ! मन लगाकर सुन, अब मैं उन दोषोंको कहता हूं ॥१०९॥ अनादृत, स्तब्ध, प्रविष्ट, परिपीडित, दोलायित, अंकुशित, कच्छपरिंगित, मत्स्योद्वर्त, मनोदुष्ट, वेदिकाबद्ध, भय, विभ्यत, ऋद्धिगौरव, गौरव, स्तनित, प्रतिनीक, प्रदुष्ट, तर्जित, शब्द, हेलित, त्रिवलित, कुंचित, दृष्ट, अदृष्ट, संघकरमोचन, आलब्ध, अनालब्ध, हीन, उत्तरचूलिका, मूक, दुर्दर, सूललित इन बत्तीस दोषोंको छोड़कर हे मित्र ! तू सामायिक कर ॥ ११०–११४ ॥

जो मनुष्य सामायिककी क्रियाएं विना आदरके अपने थोड़ेसे भाव लगाकर करते हैं उनके अनादर (अनादृत) नामका दोष लगता है ॥ ११५ ॥ जो मूर्ख विद्या आदिके अहंकारसे हृदयमें उद्धतता धारणकर सामायिककी क्रियाओंको करता है उसके स्तब्ध नामका दोष अवश्य लगता है ॥ ११६ ॥ जो परमेष्ठियोंके अत्यन्त समीप बैठकर सामायिक करता है उसके प्रविष्ट नामका दोष लगता है ॥ ११७ ॥ जो अपने दोनों हाथोंसे जंघाओंका स्पर्श करता हुआ अथवा दबाता हुआ सामायिक करता है अथवा वन्दना करता है उसके परिपीड़ित नामका दोष होता है ॥ ११८ ॥

जो अपने शरीरको झूलेके समान हिलाता हुआ सामायिक करता है अथवा जो अपने आत्माको चञ्चल रखता है, जिसके संदेह बना रहता है—सामायिक वन्दना वा उसके फलमें जो संदेह रखता है उसके दोलायित नामका दोष लगता है ॥ ११९ ॥ जो अज्ञानी अंकुशके समान अंगूठेको ललाट वा मस्तकपर रखकर सामायिक वा वन्दना करता है उसके अंकुशित नामका दोष लगता है ॥ १२० ॥

जो कटिभागसे (कमरसे) कछुएके समान कुछ आगेको सरककर वन्दना करता है उसके कच्छपरिंगित नामका दोष लगता है ॥१२१॥ जो मच्छके समान एक ही बगलसे अथवा दोनों बगलोंसे वंदना करता है उसके मत्स्योद्वर्त नामका दोष लगता है ॥ १२२ ॥ जो दुष्ट आचार्य वा गुरुके ऊपर खेद प्रकाशित करता हुआ सामायिक वा वन्दना करता है उसके मनोदुष्ट नामका दोष लगता है ॥१२३

जो दोनों हाथोंसे अपने शरीरको वा दोनों जंघाओंको बांधकर, दबाकर सामायिक वा वंदना करता है उसके वेदिकाबद्ध नामका दोष लगता है ॥१२४॥ जो मरण भय आदि सातों भयोंसे डरकर सामायिक वा वंदना करता है उसके भय नामका दोष लगता है ॥१२५॥ जो परमार्थको न जानकर केवल गुरु आदिके डरसे ही सामायिक आदि क्रियाओंको करता है उसके विभ्यत् नामका दोष लगता है ॥ १२६ ॥

चारों प्रकारका महासंघ मेरी भक्ति करेगा, मेरा गौरव करेगा, यही समझकर जो अज्ञानी सामायिक वा वन्दना करता है उसके ऋद्धिगौरव नामका दोष लगता है ॥१२७॥ जो अपने सुखके लिये आसन आदिके द्वारा अपने माहात्म्यको प्रगटकर सामायिक वा वन्दना करता है उसके गौरव नामका दोष लगता है ॥ १२८ ॥ जो गुरुको प्रसन्न करनेके लिये सबसे छिपकर सामायिक वा वन्दना करता है उसके स्तनित नामका दोष लगता है ॥ १२९ ॥

जो देव, गुरु वा योगियोंके प्रतिकूल होकर उनकी आज्ञाको न मानकर सामायिक वा वन्दना करता है उसके प्रतिनीक नामका दोष लगता है ॥१३०॥ जो दूसरोंके साथ द्वेष वैर वा कलह करके भी मन वचन कायसे न तो दूसरोंसे क्षमा कराता है न क्षमा करता

है—विना क्षमा करे कराये योंही सामायिक वा वन्दना करता है उसके प्रदुष्ट नामका दोष लगता है ॥ १३१ ॥ जो अन्य शैक्ष्य आदिकोंको उंगलीसे तर्जनाकर भय उत्पन्न कर अथवा आचार्य वा गणसे तर्जित होकर सामायिक वा वन्दना करता है उसके तर्जित नामका दोष लगता है ॥ १३२ ॥

जो सामायिक करता हुआ भी मौन छोड़कर बातें करता है उसके पाप बढ़ानेवाला शब्द नामका दोष लगता है ॥ १३३ ॥ जो आचार्य आदि अन्य मुनियोंका तिरस्कार कर वचनसे उनका उपहासकर सामायिक वा वन्दना करता है उसके हेलित नामका दोष लगता है ॥ १३४ ॥ जो कमर मोडकर, गर्दन टेढ़ीकर वा छाती नवाकर अथवा भौंह चलाकर अथवा ललाटपर तीन रेखा चढ़ाकर सामायिक आदि सत्कर्म करता है उसके त्रिवलित नामका दोष लगता है ॥ १३५ ॥

जो दोनों हाथोंसे अपने मस्तकको स्पर्शकर सामायिक वा वन्दना करता है, अथवा संकुचित होकर मस्तकको जंघाओंके समीप ले जाकर सामायिक वा वन्दना करता है उसके संकुचित दोष लगता है ॥ १३६ ॥ जो आचार्य वा अन्य मुनियोंके देखनेपर तो सामायिक आदि क्रियाओंको अच्छी तरह करता है और उनके न देखनेपर अपनी इच्छानुसार सब दिशाओंकी ओर देखता हुआ सामायिक आदि क्रियाओंको करता है उसके दृष्ट नामका दोष होता है ॥ १३७ ॥ जो गुरुकी दृष्टिसे छिपकर सामायिक आदि करता है अथवा पीछी आदिसे विना शोधे, विना देखे चंचल मनसे क्रियाओंको करता है उसके अदृष्ट नामका दोष कहलाता है ॥ १३८ ॥

जो संघको प्रसन्न करनेके लिये अथवा संघसे भक्ति आदि

करानेकी इच्छासे सामायिक वा वन्दना करता है उसके संघकरमोचन नामका दोष लगता है ॥ १३९ ॥ जो उपकरण आदिको पाकर आवश्यक आदि क्रियाओंको करता है—विना उपकरण आदिके मिले जो नहीं करता उसके मद उत्पन्न करनेवाला आलब्ध नामका दोष लगता है ॥ १४० ॥ जो लोभके वशीभूत होकर उपकरण आदिकी इच्छासे सामायिक आदि आवश्यक क्रियाओंको करता है उसके अनालब्ध नामका दोष लगता है ॥ १४१ ॥

जो काल, व्यंजन, ग्रन्थ अर्थ (अथवा मात्रा आदि) आदिसे रहित सामायिक वा आवश्यकोंके पाठोंको पढ़ता है उसके पाप उत्पन्न करनेवाला हीन नामका दोष लगता है ॥ १४२ ॥ जो सामायिक वा वन्दनाको बड़ी शीघ्रतासे थोड़े ही समयमें कर लेता है और आलोचना आदि उसकी चूलिकाको (अंतिम क्रियाको) बड़ी देरसे करता है इसप्रकार जो सामायिक करता है उसके उत्तरचूलिका नामका दोष लगता है ॥ १४३–१४४ ॥

जो गूँगेके समान मुखके भीतर ही भीतर सामायिक वा वन्दना करता है अथवा ऊँगलीके इशारे वा हुँकार आदि करता हुआ सामायिक आदि क्रियाओंको करता है उसके मूक नामका दोष लगता है ॥१४५॥ जो अपने जोर जोर शब्दोंसे दूसरोंके अच्छे शब्दोंको दबाकर सामायिक आदि क्रियाओंको करता है उसके दुर्दर नामका दोष लगता है ॥१४६॥ जो एक स्थानपर बैठकर ही सबकी वंदना करता है अथवा जो पंचम स्वर आदिसे गा गाकर वंदना करता है उसके सुललित नामका दोष लगता है ॥ १४७ ॥

जो इन बत्तीस दोषोंसे रहित होकर सामायिक करता है उसके पापकर्मोंकी सबसे अधिक निर्जरा होती है ॥१४८॥ जो इन दोषोंको

छोड़कर सामायिक करता है उसके स्वर्ग मोक्षको वश करनेवाला समस्त सुखोंकी खानि-सारभूत और संसाररूपी महासागरसे पार करनेवाला शुभरूप महा पुण्य प्राप्त होता है ॥१४९॥ जो इन दोषोंका विना त्याग किये ही सामायिक करता है वा वंदना आदि क्रियाओंको करता है उसके कर्मोंका नाश कभी नहीं हो सकता, उसका सामायिक आदि करना केवल शरीरको दुःख पहुंचाना है ॥१५०॥

इसीप्रकार बुद्धिमानोंको शरीरसे ममत्वका त्याग करनेके लिये श्रेष्ठ धर्मको प्रगट करनेवाला कायोत्सर्ग भी बत्तीस दोषोंसे रहित होकर ही करना चाहिये अर्थात् कायोत्सर्गके भी बत्तीस दोषोंका त्याग कर देना चाहिये ॥ १५१ ॥ जिस प्रकार पैरमें उत्पन्न हुई पीडासे दुःख आजाता है उसी प्रकार कायोत्सर्ग करनेवाले मनुष्यके अवश्य ही कर्म नष्ट हो जाते हैं ॥ १५२ ॥

प्रश्न—हे प्रभो! कृपाकर मेरे लिये कायोत्सर्गके दोषोंका निरूपण कीजिये।

उत्तर—हे श्रावकोत्तम! सुन, अब मैं कायोत्सर्गके दोषोंको कहता हूं ॥ १५३ ॥ घोटक, लता, *स्तम्भ, कुड्य, मालशबर, लम्बोदर, तनुदृष्टि, वायस, खलित, युग, कपित्थ, शिरःप्रकम्पन, मूकित, अंगुलि, भ्रूविकार, वारुणीपायी, दिशामालोकन, ग्रीवोन्नमन, प्रणमन, निष्ठीवन, स्वांगस्पर्श ये कायोत्सर्गके ×दोष कहलाते हैं

---

* इसमें स्तंभ और कुड्य अलग अलग लिखे हैं परंतु अनगारधर्मामृतमें दोनों एक स्तंभमें ही शामिल कर लिये हैं।

× बाकीके दोष इसप्रकार हैं। पट्टक—इसका स्वरूप ६२ वें श्लोकमें लिखा है। शृङ्खलित—जो अपने पैरोंको सांकलसे बंधे हुएके समान करके कायोत्सर्ग करें। उत्तीरत—मस्तकको ऊँचाकर कायोत्सर्ग

अतः बुद्धिमानोंको इनका त्याग कर देना चाहिये ॥१५४-१५७॥

जिस प्रकार अच्छा घोड़ा एक पैर ऊँचा करके खड़ा होता है उसी प्रकार जो कायोत्सर्ग करते समय एक पैरको ऊँचा कर केवल एक पैरसे पृथ्वीको स्पर्श करता हुआ खड़ा होता है उसके घोटक नामका दोष होता है ॥ १५८ ॥ जो संयमी लताके समान अङ्ग-उपाङ्गोंको कम्पाता हुआ कायोत्सर्ग करता है उसके लता नामका दोष लगता है ॥ १५९ ॥ जो संयमी किसी खम्भेका सहारा लेकर कायोत्सर्ग करता है अथवा जो अपने हृदयको शून्य बनाकर (आत्माका चिंतवन किये विना) कायोत्सर्ग करता है उसके स्तम्भ नामका दोष लगता है ॥ १६० ॥

जो श्रावक किसी दीवालका अथवा अन्य किसी पदार्थका सहारा लेकर कायोत्सर्ग करता है उसके कुड्य नामका दोष लगता है ॥१६१॥ जो मस्तकके ऊँचे स्थानपर माला वा रस्सी बांधकर उसका सहारा लेकर कायोत्सर्गके लिये खड़ा होता है उसके माला नामका दोष लगता है ॥१६२॥ जो भीलनियोंके समान जघनस्थलको (गुह्य

करना। स्तनोन्नति—जो दूध पिलानेवालीके समान छातीको ऊँचा उठाकर कायोत्सर्ग करना। न्यूनत्व—मात्रा आदि छोड़कर कायोत्सर्गका पाठ पढ़ना। मायाप्रायास्थितिश्चित्र—दूसरोंको ठगनेवाली और अत्यन्त आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली अपने शरीरकी स्थिति बनाना। वयोपेक्षा-विवर्जन—अपना बुढ़ापा समझकर कायोत्सर्गको छोड़ देना। व्याक्षेपा-सक्तचित्तत्व चित्तका इधर उधर भटकाते हुए कायोत्सर्ग करना। कालापेक्षाव्यतिक्रम—समय देखकर कायोत्सर्गका कुछ अंश छोड़ देना। लोभाकुलत्व—लोभके कारण कुछ अंश छोड़ देना। मूढ़त्व—कर्तव्य अकर्तव्यका विचार न करना। पापकर्मैकसर्गता—हिंसादिकके कामोंमें अत्यंत उत्साह होना।

प्रदेशको) दोनों जंघाओंसे दबाकर (अथवा हाथसे ढककर) कायोत्सर्गके लिये खड़ा होता है उसके शबर नामका दोष होता है ॥ १६३ ॥ जो कायोत्सर्गमें खड़ा होकर भी मस्तकको ऊँचा करता है अथवा नीचा करता है उसके लम्बोदर नामका दोष होता है ॥ १६४ ॥ जो कायोत्सर्गमें खड़ा होकर भी अत्यन्त राग उत्पन्न करनेवाले अपने शरीरको अपने दोनों नेत्रोंकी दृष्टिसे देखता रहता है उसके तनुदृष्टि नामका दोष लगता है ॥ १६५ ॥

जो कायोत्सर्गमें खडा होकर भी कौएके समान अपनी दोनों अगल बगलोंकी ओर देखता है उसके नेत्रोंसे उत्पन्न होनेवाला वह वायस नामका दोष कहलाता है ॥ १६६ ॥ जिस प्रकार लगामके दुःखसे दुखी हुआ घोडा दांत कटकटाकर मस्तक हिलाता है उसी प्रकार जो कायोत्सर्गके समीप दांतोंको कटकटाता हुआ मस्तक हिलाता है उसके मल उत्पन्न करनेवाला खलीन नामका दोष लगता है॥१६७॥

जिस प्रकार जूँआके दुःखसे दुःखी हुआ बैल गर्दन फैलाता है उसी प्रकार जो गर्दनको फैलाकर सामायिक करता है उसके कायोत्सर्गमें दोष उत्पन्न करनेवाला युग नामका दोष होता है ॥१६८॥ जो कपित्थ वा कैथके समान अपनी मुट्ठियोंको बांधकर कायोत्सर्गके लिए खड़ा होता है उसके कपित्थ नामका दोष लगता है॥१६९॥ जो कायोत्सर्गमें खड़ा होकर भी गूंगेके समान मुंह और नाकके विकार उत्पन्न करता रहता है उसके मूक नामका दोष लगता है ॥ १७० ॥

जो शरीरसे ममत्व छोडकर भी ऊगली आदिसे विकार उत्पन्न करता रहता है (अथवा उंगलियोंसे गिनती करता रहता है) उसके अंगुली नामका दोष लगता है ॥ १७१॥ जो कायोत्सर्ग करता हुआ भी भौंह चलाता रहता है अथवा पैरकी अंगुलियोंको नचाता रहता

है उसके भ्रूविकार नामका दोष होता है ॥ १७२ ॥ जो कायोत्सर्ग करता हुआ भी शराब पीनेवालेके समान घूमता (हिलता) रहता है उसके कायोत्सर्गमें दोष लगानेवाला वारुणीपायी (उन्मत्त) नामका दोष लगता है ॥ १७३ ॥

जो शरीरसे ममत्व छोड़कर भी दशों दिशाओंकी ओर देखते रहते हैं उनके नेत्र चंचल होनेके कारण दिशावलोकन नामका दोष लगता रहता है ॥ १७४ ॥ जो कायोत्सर्ग करता हुआ भी अपनी गर्दनको ऊंची कर लेता है उसको ग्रीवा वा गर्दनसे उत्पन्न होनेवाला ग्रीवोन्नमन नामका दोष होता है ॥ १७५ ॥

जो कायोत्सर्ग करता हुआ भी अपनी गर्दनको नीची कर लेता है उसके प्रणमन नामका दोष लगता है ॥ १७६ ॥ जो कायोत्सर्ग करता हुआ भी थूंकता रहता है उसके निष्ठीवन नामका दोष लगता है ॥ १७७ ॥ जो कायोत्सर्ग करता हुआ भी किसी कारणसे अपने शरीरका स्पर्शन करता रहता है उसके स्पर्शन नामका दोष लगता है ॥ १७८ ॥ कायोत्सर्ग करनेवाले धीर वीर श्रावकोंको व मुनियोंको कर्मोंको शांत करनेके लिये मल उत्पन्न करनेवाले इन दोषोंका त्याग अवश्य कर देना चाहिये ॥ १७९ ॥

जो चार अंगुलके अन्तरसे दोनों पैरोंको एकसा रखकर कायोत्सर्ग करता है उसके कोई दोष नहीं लग सकता ॥ १८० ॥ जो बुद्धिमान् मुनि चंचलताको छोड़कर काष्ठके समान निश्चल होकर शरीरके समस्त विकारोंको छोड़कर अंग उपांगोंके हलन चलनको छोड़कर तथा समस्त दोषोंका त्यागकर एकाग्रचित्तसे कायोत्सर्ग करता है उसे स्वर्ग मोक्षके सुख अवश्य ही प्राप्त होते हैं ॥ १८१–१८२ ॥

जो शुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाला ज्ञानी पुरुष दो घड़ी पर्यंत

एकाग्रचित्तसे कायोत्सर्ग करता है वह उस कायोत्सर्गसे अनेक जन्मके पापोंको नष्ट कर देता है ॥ १८३ ॥ कायोत्सर्ग धारण करनेसे बुद्धिमानोंका शरीरसे ममत्व छूट जाता है तथा शरीरसे ममत्वका छूट जाना ही महा धर्म और सुखका खानि है ॥ १८४ ॥

इस संसारमें मनुष्योंको कायोत्सर्गके समान तपश्चरण न तो आजतक हुआ है और न आगे कभी हो सकता। यह कायोत्सर्ग स्वर्ग और मोक्षरूपी घरका द्वार है ॥ १८५ ॥ मनुष्योंके जो पैर कायोत्सर्ग धारण कर दृढ़ताके साथ खड़े हैं संसारमें उन्हींको पैर समझना चाहिये, वे ही पैर धन्य हैं, वे ही धीरवीर हैं, वे ही धर्म धारण करनेवाले हैं और वे ही पर स्वग मोक्ष देनेवाले हैं ॥१८६॥

जिन पैरोंसे कभी कायोत्सर्ग नहीं हुआ, जो केवल आने जानेमें ही काम आते हैं और हिंसादिक पाप करते रहते हैं, मनुष्योंके ऐसे पैरोंको सर्वथा व्यर्थ समझना चाहिये । ॥ १८७ ॥ जो नीच समर्थ होकर भी कायोत्सर्ग नहीं करते हैं उनका जन्म कुमार्गगामी सेवकके समान व्यर्थ ही बीत जाता है ॥ १८८ ॥

जो कायोत्सर्ग धारण कर और घोर परीषहोंको जीतकर मोक्षके साम्राज्यमें जा बिराजमान हुए हैं, संसारमें वे ही धन्य हैं और वे ही विद्वान् लोगोंके द्वारा माननीय वा पूज्य माने जाते हैं ॥ १८९ ॥ यही समझकर उत्तम बुद्धिमानोंको प्रतिदिन अपनी शक्तिको प्रगटकर मोक्षका श्रेष्ठ सुख देनेवाला यह कायोत्सर्ग करना चाहिये ॥१९०॥

यह कायोत्सर्ग समस्त सुखोंका निधि है, स्वर्गकी सीढ़ी है, नरकरूपी घरको बंद करनेके लिये किवाड़ है, दुःखरूपी दावानल अग्निके लिये मेघोंकी वर्षा है, निरुपम गुणोंकी खानि है और धर्मरूपी वृक्षका बीज है, इसलिये हे भव्य ! तू मोक्ष-सुख प्राप्त करनेके लिये इस कायोत्सर्गको धारण कर ॥ १९१ ॥

हे मित्र ! यह सामायिक शम (परिणामोंका शांत होना), दम (इंद्रियोंको दमन करना) और यम (यम नियमरूपसे त्याग करना) से उत्पन्न होता है, मुक्ति रूपी स्त्रीका स्वामी है, स्वर्गके सुखोंका घर है, तीर्थंकर परमदेव - की सेवा करते हैं, यह समस्त ऋद्धियोंका वीजभूत वा कारण है, अनन्तगुणोंसे भरपूर है और पापरूप अन्धकारको नाश करनेके लिये सूर्य है। हे मित्र ! ऐसे सामायिकको तू प्रतिदिन धारण कर ॥ १९२ ॥ यह सामायिक पापरूपी वनको उखाड़नेके लिये कुठार वा कुल्हाड़ी है, मनरूपी हाथीको वश करनेके लिये सिंह है, विषयरूपी मछलियोंको पकड़नेके लिये जाल है, कर्मरूपी ईंधनको जलानेके लिये अग्नि है, दम शम यमका घर है, धर्मध्यान और शुक्लध्यानका कारण है तथा समस्त विकारोंसे रहित है और सबमें सारभूत है। हे मित्र ! ऐसे सामायिकको तू अवश्य धारण कर ॥ १९३ ॥

जो रत्नत्रयसे सुशोभित मुनिराज श्रुतज्ञानरूपी महासागरके पारगामी हुए हैं, अथवा उत्तम ग्रैवेयकमें जा विराजमान हुए हैं वे केवल इस सामायिककी आराधनासे ही हुए हैं। यह सामायिक श्रेष्ठ धर्मको देनेवाला सुखकी खानि है, मोक्षसुखका सारभूत है, विद्वानोंके लिये सारभूत है, इसके समान संसारमें अन्य कोई पदार्थ नहीं है, यह अद्वितीय है इसलिये हे भव्य ! ऐसे सामायिकको तू अवश्य धारण कर ॥ १९४ ॥

इसप्रकार आचार्य श्री सकलकीर्ति विरचित प्रश्नोत्तर श्रावकाचारमें
देशावकाशिक और सामायिक व्रतका निरूपण करनेवाला
यह अठारहवां सर्ग समाप्त हुआ।

उन्नीसवां सर्ग।

जो कर्मरूपी शत्रुको चूर चूर करनेके लिये महामल्ल हैं और भव्य जीवोंको धर्मोपदेश देनेवाले हैं ऐसे श्री मल्लिनाथ भगवानको मैं अपने कर्म नष्ट करनेके लिये नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ इस-प्रकार सामायिकका निरूपण कर अब आगे अनेक गुणोंको उत्पन्न करनेवाले प्रोषधोपवास नामके तीसरे शिक्षाव्रतको कहते हैं ॥ २ ॥ श्रावकोंको अष्टमी और चतुर्दशीके दिन सब तरहके पापोंका त्यागकर सदा प्रोषधोपवास करना चाहिये ॥ ३ ॥

जिस दिन प्रोषधोपवास करना हो उसके एक दिन पहिले धारणा और उपवासके दूसरे दिन पारणा की जाती है। मनुष्योंको धारणाके दिन एकाशन करना चाहिये और पारणाके दिन भी एकाशन करना चाहिये। इस प्रकार एकाशन, दूसरे दिन उपवास व तीसरे दिन एकाशन करनेको प्रोषधोपवास कहते हैं ॥ ४ ॥ बुद्धिमानोंको मोक्ष प्राप्त करनेके लिए उपवासके दिन अन्न, पान, खाद्य स्वाद्य इन चारों प्रकारके आहारका त्याग करना चाहिए ॥५॥

धीरवीर पुरुषोंको उपवासके दिन अद्भुत साहस प्रगट कर पानीकी एक बूँद भी ग्रहण नहीं करनी चाहिए ॥ ६ ॥ जो उपवास ग्रहण करके कषाय द्रव्योंसे मिले हुए जलको (किसी काढ़ेको वा शरबत आदिको) पीते हैं उनके उपवासमें अवश्य कमी होती है ॥७॥ जो प्रोषधोपवास ग्रहण करके भात मिले हुए जलको (चावलोंके मांडको जिसमें कुछ चावलोंका तत्व मिला रहता है) पीते हैं उन मूर्खोंका प्रोषधोपवास अवश्य नष्ट होजाता है ॥ ८ ॥

भगवान जिनेन्द्रदेवने आहार पानी सबका त्याग करने व समस्त पाप और चिंताओंसे अलग रहनेको उत्कृष्ट उपवास कहा है ॥ ९ ॥

उपवासके दिन वीतराग भगवानके गुण प्राप्त करनेके लिये बुद्धिमानोंको एक वस्त्रको (धोतीको) छोड़कर अन्य सब वस्त्रोंका त्याग कर देना चाहिये तथा आभूषण, स्नान, गन्ध, पुष्प, कुंकुम, अञ्जन, तांबूल, अङ्ग उपांगोंके विकार और शय्या आदि सबका त्याग कर देना चाहिये ॥ १०-११ ॥

घरके व्यापारसे होनेवाली हिंसा, विकथा आदि, असत्य, चोरी, अब्रह्म, द्रव्यपरिग्रह आदि सब पापोंका त्याग कर देना चाहिये । मनके सब अशुभ संकल्पोंका, हिंसा आदि पापोंके करनेवाले वचनोंका आने जाने आदि क्रियाओंका तथा और भी पाप उत्पन्न करनेवाले कामोंका सबका त्याग कर देना चाहिये ॥ १२-१३ ॥ धीरवीर बुद्धिमानोंको उपवासके दिन मन, वचन, काय तीनों योगोंसे समस्त अशुभोंका त्याग कर मुनियोंके समान विराजमान रहना चाहिये ॥१४॥

धीरवीर पुरुषोंको उपवास ग्रहण कर मुनियोंके आश्रममें (मुनियोंके समुदायमें वा उनके रहने योग्य स्थानोंमें), जिनालयमें, किसी सूने मकानमें अथवा पर्वतकी गुफा आदिमें रहना चाहिये ॥ १५ ॥ बुद्धिमानोंको ऐसे स्थानोंमें रहकर चित्त लगाकर धर्म और संवेगको बढ़ानेवाले तथा श्री तीर्थंकरके मुखसे उत्पन्न हुए श्रुतज्ञानरूपी शुभ अमृतका पान करना चाहिये अर्थात् शास्त्र श्रवण करना चाहिये ॥ १६ ॥

यदि प्रोषधोपवास करनेवाला ज्ञानवान और धर्मात्मा हो तो उसे स्वयं धर्मरूपी अमृतका पान करना चाहिये और अपना व दूसरोंका उपकार करनेके लिये अन्य भव्य जीवोंको उसका पान कराना चाहिये अर्थात् उसे स्वयं शास्त्र स्वाध्याय करना चाहिये और दूसरोंको सुनाना चाहिये ॥१७॥ इसी प्रकार बारह अनुप्रेक्षाएँ, छह द्रव्य, सात तत्व, चारों प्रकारका धर्मध्यान और शास्त्रोंका मनन

का चिंतवन भी उन बुद्धिमानोंको करना चाहिये ।। १८ ।।

इसी प्रकार बुद्धिमानोंको पाप और नरक देनेवाले संसार, शरीर और भोगोंसे वैराग्य भावनाओंका चिंतवन करना चाहिये, क्योंकि यह वैराग्य ही स्वर्ग और मोक्षरूपी घरका आंगन है ॥१९॥ धीरवीर बुद्धिमान मनुष्योंको केवलज्ञान रूपी सूर्यका चिंतवन करना चाहिये, क्योंकि वह केवलज्ञानरूपी सूर्य लोक अलोकको प्रकाशित करनेवाला है, अनंत गुणोंका समुद्र है, मोक्षका कारण है और जिनेंद्रदेव भी इसका ध्यान करते हैं। इसीप्रकार अनंत महिमाओंसे सुशोभित परमात्माका ध्यान भी उनको करना चाहिये ॥२०-२१॥

इसीप्रकार उस दिन बुद्धिमानोंको चित्त लगाकर अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधु इन पांचों परमेष्ठियोंके वाचक पंच नमस्कार मन्त्रका जप और ध्यान करना चाहिये ॥२२॥ हे मित्र! बहुत कहनेसे क्या लाभ है? थोडेसेमें इतना समझ ले, कि प्रोषधोपवासके दिन स्वर्ग मोक्ष प्राप्त करनेके लिये समस्त पापोंका त्याग कर मुनिके समान रह ।। २३ ।।

इसप्रकार जो बुद्धिमान वैराग्य धारण कर तथा हिंसा आदि समस्त पापोंका त्याग कर प्रोषधोपवास करते हैं वे असंख्यात पापोंको नष्ट करते हैं ।। २४ ।। जो उपवास धारण करके भी गृहस्थीके आरंभ व्यापार आदिके समस्त पाप करते हैं उनका वह उपवास हाथीके स्नानके समान व्यर्थ है—उस उपवाससे केवल खेद ही होता है, पाप नष्ट नहीं होते ।। २५ ।। इसलिये धीरवीर पुरुषोंको उपवासके शुभ दिनमें प्राण नष्ट होनेपर भी घर सम्बन्धी आरंभादिक पाप कभी नहीं करने चाहिये ।। २६ ।। जो पुरुष पर्वके दिनोंमें भावपूर्वक उपवास धारण करते हैं वे स्वर्गके राज्यका उपभोग

करके अन्तमें अवश्य मुक्ति-स्त्रीके स्वामी होते हैं ॥ २७ ॥ जो चतुर्दशीके दिन नियमपूर्वक प्रोषधोपवास करता है वह चौदह गुण-स्थानोंको पारकर मोक्षमें जा विराजमान होता है ॥ २८ ॥

चतुर्दशीके समान धर्म करनेयोग्य महा पवित्र और उपवास, प्रोषधोपवास आदि करने योग्य उत्तम पर्व तीनों कालोंमें भी अन्य कोई नहीं हो सकता ॥ २९ ॥ जो चतुर्दशीके दिन चित्त लगाकर प्रोषधोपवास करता है वह सोलहवें स्वर्गके सुख भोगकर मुक्तिरूपी सर्वोत्तम स्त्रीके समीप जा पहुँचता है ॥३०॥ जो प्रत्येक चतुर्दशीके दिन घर सम्बन्धी समस्त पापोंको छोड़कर उपवास करता है और इस प्रकार चौदह उपवास करता है वह महा पुण्य उपार्जन करता है ॥३१॥

बुद्धिमानोंको चतुर्दशीके दिन धारण किया हुआ उपवास प्राण नष्ट होनेपर भी नहीं छोड़ना चाहिये, क्योंकि चतुर्दशीके दिन धारण किया हुआ उपवास धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है ॥ ३२ ॥ जो सम्यग्दृष्टी उत्तम पुरुष अष्टमीके दिन उपवास करते हैं वे आठों कर्मोंको नष्टकर मोक्षमें जा विराजमान होते हैं ॥ ३३ ॥ अष्टमीका दिन सबमें सारभूत है। उस दिन जो उत्तम प्रोषधोपवास करता है वह इन्द्रका साम्राज्य पाकर अनुक्रमसे मोक्ष प्राप्त करता है ॥ ३४ ॥

जो पुण्य प्राप्त करनेके लिये अष्टमीके दिन नियमपूर्वक उपवास करता है वह अपने आठों कर्मोंको नष्टकर सम्यक्त्व ज्ञान दर्शन आदि सिद्धोंके सर्वोत्तम आठों गुणोंको धारण करता है ॥ ३५ ॥ जो गृहस्थ अष्टमीके दिन उपवास धारण कर धर्म पालन करते हैं वे इस दिनके समस्त पापोंको नष्टकर महा पुण्य उपार्जन करते हैं ॥३६॥ इसलिये गृहस्थी पुरुषोंको प्राण नष्ट होनेपर भी अष्टमीके दिनका प्रोषधोपवास

कभी नहीं छोड़ना चाहिये क्योंकि अष्टमीके दिन किया हुआ उपवास धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है ॥ ३७ ॥

इसलिये हे भव्य! तू विना किसी इच्छाके केवल धर्मपालन करनेके लिये प्रत्येक महीनेमें सारभूत चार (दो अष्टमीके, दो चतुर्दशीके) उपवास कर ॥ ३८ ॥ जो मूर्ख पर्वके दिनोंमें उपवासको छोड़कर कामसेवन करते हैं वे नरकरूपी महासागरमें अवश्य डूबते हैं ॥ ३९ ॥ जो सारभूत अष्टमीके दिन स्त्री सेवन करते हैं वे उस पापकर्मके उदयसे मरकर विष्टाके कीडा होते हैं ॥४०॥ जो चतुर्दशी आदि पर्वके दिनोंमें व्रत नहीं करते वे भवभवमें दरिद्री और नपुंसक होते हैं ॥ ४१ ॥

यही समझकर बुद्धिमानोंको पर्व आदिके विशेष दिनोंमें उपवास नामका तपश्चरण अवश्य करना चाहिये क्योंकि यह पर्वके दिनोंमें किया हुआ उपवास स्वर्ग मोक्षरूपी लक्ष्मीको वश करनेवाला है ॥४२॥ यह उपवासजन्य तपश्चरण मुक्तिरूपी नगरमें जानेके लिये भरपूर पाथेय (मार्गमें खानेयोग्य पदार्थ) है तथा यही उपवासरूपी तपश्चरण मुक्तिरूपी स्त्रीको वश करनेके लिये परम मंत्र है ॥ ४३ ॥ यह उपवासरूपी तपश्चरण इच्छानुसार पदार्थोंको देनेके लिये कल्पवृक्ष है और यही तपश्चरण मनमें सोचे हुए पदार्थोंको देनेके लिये चिन्तामणि रत्नके समान है ॥ ४४ ॥ विद्वान् लोग इसी तपश्चरणको रत्न आदि समस्त पदार्थोंकी खानिभूत निधि कहते हैं ॥ ४५ ॥

तीनों लोकमें रहनेवाली लक्ष्मीको आकर्षण करने—अपनी ओर खींचनेके लिये यही उपवासरूपी तप परम मन्त्र है तथा जन्ममरणरूपी ज्वरको दूर करनेके लिये उपवास परम औषध है ॥ ४६ ॥ कर्मरूपी महा वनको जला देनेके लिये यही तपश्चरण अग्निके समान

है और पापरूपी मलको धोनेके लिये गणधर देवोंने इसी उपवासरूपी तपश्चरणको जलके समान बतलाया है ॥ ४७ ॥ पापरूपी पर्वतको चूर चूर करनेके लिये भगवान जिनेन्द्रदेवने इसी तपको वज्र बतलाया है और यही तपश्चरण अशुभरूपी महा शत्रुओंको नष्ट करनेके लिये तीक्ष्ण शस्त्रोंके समान है ॥ ४८ ॥

इन्द्रियरूपी मदोन्मत्त हाथीको मारनेके लिये यह तपश्चरण सिंहके समान है और मनरूपी बन्दरको रोकने वा वश करनेके लिये यही तपश्चरण जालके समान माना जाता है ॥४९॥ तपश्चरणसे सुशोभित होनेवाला बुद्धिमान् तीनों कालोंमें उत्पन्न होनेवाले और तीनों लोकोंमें रहनेवाले जिन जिन पदार्थोंकी इच्छा करता है वे सब पदार्थ उसके समीप अपने आप आ जाते हैं ॥ ५० ॥ जिसका हृदय मुक्तिरूपी स्त्रीमें आसक्त है ऐसा जो बुद्धिमान् पुरुष एकाग्र चित्त होकर तपश्चरण करता है उसके लिये इस संसारमें कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं है ॥५१॥

जो बुद्धिमान् पहिले मोक्ष जा चुके हैं, अब जा रहे हैं अथवा आगे जायगे वे केवल तपश्चरणसे ही गये हैं, तपश्चरणसे ही जा रहे हैं और तपश्चरणसे ही जायगे। तपश्चरणके सिवाय अन्य किसी भी कारणसे मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ५२ ॥ जो धीरवीर पुरुष अपनी शक्तिको प्रगट कर तपश्चरणरूपी धनका संग्रह करते हैं वे विद्वानोंके द्वारा इस संसारमें धन्य माने जाते हैं ॥ ५३ ॥ तीर्थंकर परमदेव होनहार मोक्षके स्वामी हैं और इन्द्रादिक सब उनकी पूजा करते हैं परन्तु वे भी दो दिन चार दिन महीने दो महीने वा छह छह महीने तक उपवास रूपी तपश्चरणको करते हैं ॥ ५४ ॥

इस संसारमें भगवान् श्रीऋषभदेवने भी गणधरोंके साथ तपश्चरण किया था फिर भला अन्य लोगोंको तो बात ही क्या है, उन्हें तो

अवश्य करना चाहिये ॥ ५५ ॥ जिसप्रकार सुहागा आदिके संयोगसे अग्निके द्वारा तपाया हुआ सोना शुद्ध होजाता है उसीप्रकार सम्यग्द-र्शनके संयोगसे तपरूपी अग्निके द्वारा तप्त हुआ यह जीव कर्ममल कालिमासे रहित होकर शुद्ध होजाता है ॥ ५६ ॥ जिसप्रकार मैल लगा हुआ वस्त्र पानीसे धोनेपर शुद्ध होजाता है उसीप्रकार तपरूपी जलसे धुलजानेपर अत्यंत नीच पुरुष भी शुद्ध होजाता है ॥ ५७ ॥

स्थूल शरीरमें आसक्त होकर जो पुरुष तपश्चरण नहीं करते वे पुरुष भव भवमें रोग क्लेश आदिके बहुतसे दुःखोंको भोगते रहते हैं ॥ ५८ ॥ जो तपश्चरण नहीं करता वह इस लोकमें रोग दुःख और दरिद्रता आदिसे महा दुःखी होता है तथा परलोकमें अनेक पापोंका उपार्जन कर नरक और तिर्यञ्च गतिके अनेक दुःखोंको भोगता है ॥ ५९ ॥ जिसने तपरूपी आभूषण छोड़ दिया है और जो पापरूपी मैलमें सदा आसक्त रहता है उसको मिलनेवाले नरक आदिके दुःखोंको हम लोग कह भी नहीं सकते हैं ॥ ६० ॥

जो राग द्वेष रूपी रोगोंके कारण तपश्चरण नहीं करता उसे पद्रह पंद्रह दिन महीने महीने भरके लंघन करने पड़ते हैं अथवा और भी ऐसे ही अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं ॥ ६१ ॥ तपश्चरणके विना यह मनुष्य पशु ही है इसमें कोई संदेह नहीं। उपवासरूपी तपश्चरणके विना लगातार सब दिन भक्षण करनेसे यह जीव अवश्य ही दुःखी होता है ॥ ६२ ॥ यही समझकर हे धीरवीर मित्र! अपने कर्मोंको नष्ट करनेके लिये अपनी शक्तिको प्रगट कर तू प्रतिदिन तपश्चरण कर ॥ ६३ ॥

जो पांचों अतीचारोंको छोड़कर प्रत्येक महीनेके चारों पर्वोंमें नियमपूर्वक प्रोषधोपवास करता है वह तीनों लोकोंके समस्त सुखोंको प्राप्त होता है ॥ ६४ ॥

प्रश्न—हे प्रभो ! कृपाकर उन अतिचारोंको मेरे लिये निरूपण कीजिये ।

उत्तर—हे वत्स ! तू चित्त लगाकर सुन, मैं उन अतिचारोंका निरूपण करता हूँ ॥ ६५ ॥ अदृष्टमृष्ट व्युत्सर्ग, अदृष्टमृष्ट आदान, अदृष्टमृष्ट संस्तरोपकरण, प्रोषधमें अनादर और अस्मरण ये पांच प्रोषधोपवासके अतिचार गिने जाते हैं । जो विना देखे विना शोधे अपने काममें आने योग्य जल आदिको पृथ्वीपर रख देता है उसके अदृष्टमृष्ट व्युत्सर्ग नामका दोष लगता है ॥ ६७ ॥

जो मनुष्य क्षुधासे पीडित होकर वा अन्य किसी कारणसे विना देखे विना शोधे वस्त्र वा पूजाके पदार्थोंको ग्रहण करता है उसके अदृष्टमृष्टादान नामका अतिचार लगता है ॥ ६८ ॥ जो मनुष्य प्रमादके कारण रात्रिमें पीछीसे विना शोधे वा नेत्रोंसे विना देखे विछोना वा सांथरा (सोनेके लिये चटाई आदिका विछाना) करता है उसके अदृष्टमृष्ट संस्तरोपकरण नामका अतिचार लगता है ॥६९॥

जो मनुष्य क्षुधासे पीडित होकर (भूखसे घबड़ाकर) आवश्यक आदि कार्योंमें अनादर करता है उसके अनादर नामका दोष लगता है ॥ ७० ॥ अपने हृदयको घरके काममें आसक्त रखनेवाला अथवा काम अर्थ इन दो ही पदार्थोंमें हृदयको आसक्त रखनेवाला जो पुरुष अपने चित्तको निश्चल नहीं करता है उसके अस्मरण नामका दोष लगता है । (जिसका चित्त निश्चल नहीं है उससे भूल हो जाना स्वाभाविक ही है इसलिये चित्तका स्थिर न रहना ही अस्मरण कहलाता है ।) ॥ ७१ ॥

जो बुद्धिमान् समस्त प्रमादोंको छोड़कर और अपने हृदयको निश्चल कर प्रोषधोपवास करता है उसके कोई अतिचार नहीं लगा

सकता ॥ ७२ ॥ यह प्रोषधोपवास पापरूपी वनको जलानेके लिये महा अग्नि है, धर्मरूपी वृक्षको बढ़ानेके लिये मेघकी धारा है, समस्त सुखोंका सागर है, दुःखरूपी दावानल अग्निको शांत करनेके लिये पानीकी वर्षा है, स्वर्ग मोक्षका कारण है और साधुलोग भी इसकी सेवा करते हैं इसलिये हे भव्य ! निर्मल गुणोंको प्राप्त करनेके लिये सारभूत पर्वके दिनोंमें तू इस प्रोषधोपवासको धारण कर ॥ ७३ ॥

यह प्रोषधोपवास निर्मल गुणोंकी निधि है, अपने हृदयरूपी सर्पको वश करनेके लिये महा मंत्र है, विषयरूपी वनको जलानेके लिये दावानल अग्नि है, कर्मरूपी वनको काटनेके लिये कुठार है, तीनों लोक इसकी पूजा करता है और तीर्थंकर परमदेवने इसका निरूपण किया है । इसलिये हे विद्वन् ! मोक्ष प्राप्त करनेके लिये तू इस प्रोषधोपवासको सदा धारण कर ॥ ७४ ॥

यह प्रोषधोपवास किसीके वश न होनेवाली इंद्रियरूपी मदोन्मत्त हाथीको मारने वा वश करनेके लिये सिंहके समान है, धर्मको प्रगट करनेवाला वा देनेवाला है और समस्त पापोंको नाश करनेवाला है इसलिये जो बुद्धिमान प्रत्येक पर्वके दिनोंमें इस प्रोषधोपवासको धारण करता है उसके समीप स्वर्गकी लक्ष्मी अपने आप आजाती है, निर्मल मुक्ति भी उसे सदा देखती रहती है, श्रेष्ठ वाणी या सरस्वती अपने आप आ खड़ी होती है, उसकी कीर्ति चारों ओर फैल जाती है और अनुपम मोक्षरूपी राज्यकी लक्ष्मी उसे अवश्य प्राप्त होती है, अतएव गृहस्थोंको पर्वके दिनोंमें अवश्य प्रोषधोपवास करना चाहिये ॥ ७५ ॥

इसप्रकार आचार्य श्रीसकलकीर्ति विरचित प्रश्नोत्तर श्रावकाचारमें प्रोषधोपवासको निरूपण करनेवाला यह उन्नीसवां सर्ग समाप्त हुआ ।

वीसवां सर्ग।

जो महाव्रतोंको धारण करनेवाले हैं, धीरवीर हैं और अनेक व्रतोंको प्रदान करनेमें समर्थ हैं ऐसे श्री मुनिसुव्रत भगवानको मैं पुण्य उपार्जन करनेके लिये नमस्कार करता हूँ॥ १ ॥ ऊपरके सर्गमें प्रोषधोपवास नामके शिक्षाव्रतका व्याख्यान कर चुके। अब आगे अपने और दूसरोंके हितके लिये चौथे दान वा वैयावृत्य नामके शिक्षाव्रतको कहते हैं॥ २ ॥ भगवान् जिनेन्द्रदेवने गृहस्थोंको पुण्य सम्पादन करनेके लिये आहारदान, औषधदान, शास्त्रदान और वसतिका दान ऐसे चार प्रकारका दान बतलाया है॥ ३ ॥

गृहस्थोंको स्वर्ग मोक्ष प्राप्त करनेके लिए दान, पात्र और विधिको जानकर चारों प्रकारका महादान देना चाहिए॥ ४ ॥ इस संसारमें पात्र तीन प्रकारके हैं—उत्तम, मध्यम और जघन्य। मुनि उत्तम पात्र हैं, श्रावक मध्यम पात्र हैं और असंयत सम्यग्दृष्टि जघन्य पात्र हैं॥ ५ ॥

जो मुनिराज बाह्य अभ्यन्तर सब तरहके परिग्रहोंसे रहित हैं, जो श्रेष्ठ व्रत और गुप्तियोंसे शोभायमान हैं, धीरवीर आदि अनेक प्रकारके तपश्चरण करनेवाले हैं, जो सुखके सब संस्कारोंसे रहित हैं, धूल मिट्टी आदि मैलसे जिनका समस्त शरीर लिप्त हो रहा है, जिन्होंने अपने शरीरसे ममत्व छोड़ दिया है, जो संसारमें अत्यन्त दुर्लभ हैं, तपश्चरणसे जिनका सब शरीर कृष हो रहा है, जो परीषह सहन करनेमें चतुर हैं, मूलगुण उत्तरगुणोंसे सुशोभित हैं, असंख्यात गुणोंके सागर हैं, लाभ अलाभमें जिनके परिणाम एकसे रहते हैं, जो धीरवीर हैं, जो निंदा स्तुति दोनोंसे प्रतिकूल हैं, तृण सुवर्ण दोनोंमें समान भाव रखते हैं, जो अनेक दुःखोंके सागर ऐसे संसारको

स्वयं तरते हैं और दूसरोंको तार देते—पार कर देनेमें समर्थ हैं, जो कृत कारित अनुमोदना आदिके द्वारा किये हुए दोषोंसे सर्वथा रहित हैं, जो आहार करनेके लिए अमीर गरीब सबके घर बिना किसी इच्छाके प्रवेश करते हैं, जो इंद्रियोंको जीतनेमें शूरवीर हैं, सब जीवोंका हित करनेवाले हैं, रत्नत्रयसे सुशोभित हैं, ज्ञान ध्यानमें सदा तल्लीन रहते हैं, जिनके नेत्र सदा ईर्यापथमें लगे रहते हैं, जिनका हृदय शुभ है, जो राग, द्वेष, मोह, मद, उन्माद, भय आदि विकारोंसे रहित हैं, जो दान देने योग्य हैं, महापूज्य हैं और दाताओंको संसारसे पार कर देनेवाले हैं, ऐसे मुनिराजोंको ही तू उत्तम पात्र समझ ॥ ६–१३ ॥

जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रसे सुशोभित हैं, श्रावकोंके धर्मको पालन करनेमें सदा तत्पर रहते हैं, धर्म और संवेग (संसारसे डर) से सुशोभित हैं, प्रोषधोपवास आदि आवश्यक क्रियाओंको करनेवाले हैं, देव गुरु शास्त्रके भक्त हैं, और दान पूजा आदि कर्त्तव्य कर्मोंको सदा पालन करते हैं, ऐसे श्रावकोंको तू मध्यम पात्र समझ ॥ १४–१५ ॥ जो सम्यग्दर्शनसे शुद्ध हैं, श्री जिनेन्द्रदेवके शासनके भक्त हैं, जो पूजा प्रतिष्ठा आदि करनेमें तत्पर हैं, संवेग आदि गुणोंसे सुशोभित हैं, जिनको सातों तत्त्वोंका वा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानादिका पूर्ण श्रद्धान है और जो आठ मूलगुणोंसे विभूषित हैं ऐसे असंयत सम्यग्दृष्टि जघन्य पात्र गिने जाते हैं ॥ १६–१७ ॥

गृहस्थोंको अपने आप आये हुए पात्रोंके लिए शुद्ध, प्रासुक, चिकना वा मुलाम, कृतकारित अनुमोदना आदि दोषोंसे रहित, तपश्चरणको बढ़ानेवाला, सचित्त रहित, सचित्तकी मिलावटसे रहित,

सारतभूत, सुख देनेवाला और जो कुटुम्बी आदिके लिए बनाया गया हो ऐसा आहार दान देना चाहिये ॥ १८-१९ ॥ मुनिराजोंने श्रद्धा, भक्ति, शक्ति, अलुब्धतता, दया, क्षमा और विज्ञान ये सात दाताओंके श्रेष्ठ गुण बतलाये हैं ॥ २० ॥

मुनियोंका पडगाहन करना, उनको ऊँचा आसन देना, उनके चरणकमल धोना, पूजा करना, चित्त लगाकर प्रणाम करना, मनको शुद्ध रखना, वचनको शुद्ध रखना, शरीरको शुद्ध रखना और आहारकी शुद्धि रखना ये नौ गृहस्थोंको पुण्य बढ़ानेवाले दानकी विधिके भेद कहलाते हैं, इन्हींको नवधाभक्ति कहते हैं ॥२१-२२॥ नवधाभक्ति करनेवाले और ऊपर लिखे हुए सातों गुणोंसे सुशोभित गृहस्थोंको भक्तिपूर्वक उत्तम पात्रोंके लिये प्रासुक, हिंसादिक समस्त पापोंसे रहित, योग्य सुख देनेवाला, लोकनिंदासे रहित और समस्त रोगोंको दूर करनेवाला आहार दान देना चाहिये ॥ २३-२४ ॥

उत्तम गृहस्थोंको किसी मुनिराजको रोगी जानकर उस रोगको शांत करनेके लिये उन्हें औषधि दान देना चाहिये ॥ २५ ॥ इसी-प्रकार बुद्धि और संवेगको धारण करनेवाले ज्ञानी मुनियोंके लिये विवेकी गृहस्थोंको ज्ञानदान देना चाहिये तथा समस्त तत्त्वोंके कथनसे भरे हुए, लोक अलोकको प्रकाशित करनेवाले, भगवान् जिनेन्द्रदेवके मुखसे उत्पन्न हुए, गौतमादि गणधरोंके द्वारा गूँथे हुए, गृहस्थ व मुनियोंके चारित्रको निरूपण करनेवाले, द्रव्योंके गुण पर्यायोंके द्वारा होनेवाले भेद अभेदोंको प्रगट करनेवाले तथा पूर्वापर विरुद्ध आदि दोषोंसे रहित ऐसे शास्त्र अपना उपकार करनेके लिये और पात्रोंका अज्ञान दूर करनेके लिये अवश्य देने चाहिये। यह ज्ञान दान वा शास्त्र दान गृहस्थ भी मुनियोंके लिये करते हैं व मुनि भी परस्पर एक दूसरेके लिये करते हैं ॥ २६-२९ ॥

इसीप्रकार उत्तम पात्रोंको धर्मध्यानादिकी सिद्धिके लिये गृहस्थोंको ऐसी वसतिकाका दान देना चाहिये जिसमें शीत वायु आदि न जा सके, जो सूने घरके रूपमें हो या सूने मठके रूपमें हो, जिसमें सूक्ष्म जीवोंका निवास न हो, जो कारित आदि दोषोंसे रहित हो, स्वभावसे बनी हो, अच्छी हो और निर्मल हो, ऐसी वसतिकाका दान मुनियोंके लिये अवश्य देना चाहिये ॥३०-३१॥

श्रेष्ठ गृहस्थोंको अथवा मुनियोंको अपने व्रत शुद्ध रखनेके लिये पुण्य बढ़ानेवाले अभयदान नामका महादान देना चाहिये और वह ऐसे जीवोंको देना चाहिये जो मृत्युके भयसे भयभीत हों, जो सदा दुःखी रहते हों और दुःख शोक आदिके फंदेमें पड़ गये हों; ऐसे त्रस वा स्थावर जीवोंको भी यह अभयदान देना चाहिये॥३२-३३॥

आहारदान देनेसे मुनियोंके सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र आदि गुणोंकी वृद्धि होती है और फिर उत्तम ध्यान होनेसे उनके आत्मानुभवका आनन्द आया करता है ॥ ३४ ॥ आहारदानके सम्बन्धसे मुनियोंका शरीर कायोत्सर्ग आदि गुणरूप तपश्चरणमें पर्वतके समान स्थिर हो जाता है ॥ ३५ ॥ जिस प्रकार उत्तम औषधिसे रोग नष्ट हो जाते हैं और प्राण बच रहते हैं उसी प्रकार आहारसे उत्तम पात्रोंकी क्षुधा आदिक व्याधियां दूर हो जाती हैं और उनके प्राण बने रहते हैं ॥ ३६ ॥

जिसप्रकार आहार छोड़ देनेपर हाथी कुछ नहीं कर सकता उसी प्रकार विना आहारके मुनि भी तपश्चरण, चारित्र, ध्यान आदि कुछ नहीं कर सकते ॥ ३७ ॥ जिसप्रकार भोजनसे पुष्ट हुआ हाथी सब कुछ कर सकता है उसी प्रकार समस्त मुनिराज आहारके बलकी सामर्थ्यसे ही महा घोर तपश्चरण करते हैं ।

इसलिये जिसने भावपूर्वक उत्तम पात्रके लिये श्रेष्ठ आहार दिया उसने ज्ञानादिकके साथ साथ यम नियम आदि सब कुछ दिया ॥३९॥ यह संसार अनेक दुःखरूपी मगरमच्छोंसे भरा हुआ महा घोर सागर है इससे पार होनेके लिये गृहस्थोंको एक पात्र दान ही जहाज है ऐसा श्री जिनेंद्रदेवने कहा है ॥ ४० ॥

विद्वान लोग इस पात्र दानको महा हिंसा आदिसे उत्पन्न हुए पापकर्मरूपी ईंधनके समूहको जलानेके लिये अग्निके समान बतलाते हैं ॥ ४१ ॥ जिस प्रकार हाथकी अंजलिमें रक्खा हुआ जल क्षण-भरमें नष्ट हो जाता है उसी प्रकार इस पात्रदानसे महापुण्य बढ़ता रहता है ॥ ४२ ॥ इस पात्रदानसे प्राणियोंको महासुखकी प्राप्ति होती है और जिसप्रकार सवेरेके समय चोर भाग जाते हैं उसीप्रकार इस पात्रदानसे सब दुःख भाग जातेहैं ॥ ४३ ॥

विवेकी श्रावकोंको उत्तम पात्रोंके लिये श्रेष्ठ दान देनेसे गुण सब बढ़ते रहते हैं, दोष सब नष्ट हो जाते हैं, कीर्ति अपने आप आकर आलिंगन करती है, अपकीर्ति स्वयं नष्ट होना चाहती है, लक्ष्मी अपनी स्त्रीके समान आदरपूर्वक अपने आप सामने आती है, जिस प्रकार औषधिसे व्याधि नष्ट होजाती है उसी प्रकार दरिद्रता सब नष्ट होजाती है, समस्त इंद्रियोंको सुख देनेवाले महा भोगोंकी प्राप्ति होती है, अनेक दुःख देनेवाले रोग सब नष्ट होजाते हैं, सदाचार आजाता है और दुराचार अपनेआप नष्ट हो जाता है ॥४४-४७॥

आहारदान देनेसे जिसप्रकार पूज्य पात्रोंका अत्यन्त उपकार होता है उसीप्रकार सातों गुणोंसे सुशोभित गृहस्थ मनुष्योंका उपकार भी दानसे ही होता है ॥ ४८ ॥ उत्तम पात्रोंको दान देनेसे मनुष्योंको जैसे महापुण्यकी प्राप्ति होती है वैसे पुण्यकी प्राप्ति अन्य व्रत आदि किसीसे नहीं होती, क्योंकि उनमें भी जीव घात होनेकी सम्भावना है ॥ ४९ ॥

संसारमें वे मनुष्य धन्य हैं जिनके घर इन्द्र, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण आदि सबके द्वारा महापूज्य मुनिराज आहारके लिये आते हैं ॥ ५० ॥ इस पात्रदानकी केवल अनुमोदना करनेसे अनेक तिर्यंच भी परम आनन्दको देनेवाले भोगभूमिके सुख भोगकर स्वर्गमें जा उत्पन्न हुए हैं ॥ ५१ ॥ जो मनुष्य सम्यग्दर्शनसे रहित हैं वे भी केवल एकवार पात्रोंको दान देनेसे भोगभूमिके सुख भोगकर स्वर्गमें देव हुए हैं ॥ ५२ ॥ जो पुरुष सम्यग्दर्शनसे विभूषित हैं वे बुद्धिमान महा पात्रोंको दान देनेसे सुखकी खानि ऐसे अच्युत स्वर्गमें उत्तम देव होते हैं ॥ ५३ ॥

उत्तम पात्रोंको दान देनेसे चतुर पुरुषोंको इस संसारमें इन्द्र, चक्रवर्ती और तीर्थंकर आदिके द्वारा सेवन योग्य उत्तम भोग प्राप्त होते हैं ॥ ५४ ॥ जिसप्रकार मकान बनानेवाला कारीगर ज्यों ज्यों मकान बनाता जाता है त्यों त्यों ऊंचा चढ़ता है उसीप्रकार दान देनेवाला गृहस्थ जैसे जैसे उत्तम पात्रोंको दान देता है वह उस दानके प्रभावसे वैसा ही उत्तम वा उच्च होता जाता है ॥ ५५ ॥

इस संसारमें दान देनेसे ही मनुष्योंको कल्पवृक्ष, चिंतामणि और कामधेनु आदि इच्छानुसार भोग देते हैं ॥५६॥ बहुत कहनेसे क्या लाभ है ? थोड़ेसेमें इतना समझ लेना चाहिये कि इस पात्र-दानके ही प्रभावसे बुद्धिमान लोग मनुष्य और देवोंके सुख भोगकर अनुक्रमसे मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ ५७ ॥

इसी प्रकार औषधदानसे समस्त परिग्रहोंका त्याग करनेवाले मुनियोंके सब रोग नष्ट हो जाते हैं और उनका शरीर स्वस्थ हो जाता है ॥ ५८ ॥ शरीर स्वस्थ होनेसे ही वे मुनिराज सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको धारण करनेमें समर्थ होते हैं और फिर सम्यग्ज्ञान

वा सम्यक्चारित्रके प्रभावसे वे स्वर्ग मोक्षमें जा विराजमान होते हैं ॥ ५९ ॥ इसलिये औषधदानसे मनुष्योंको महापुण्यकी प्राप्ति होती है, उनका शरीर सदा नीरोग रहता है और लावण्यता आदिसे सुशोभित रहता है ॥ ६० ॥

ज्ञान दान देनेसे मुनियोंका वा पात्रोंका अज्ञान दूर होता है और मोक्षमार्गको दिखानेवाला महाज्ञान प्रगट होता है ॥ ६१ ॥ सम्यग्ज्ञानके कारण ही मुनि श्रेष्ठ ध्यान, चारित्र, यम, नियम आदि सबको पालनकर समस्त सुखोंकी निधि ऐसे मोक्षमें जा विराजमान होते हैं ॥ ६२ ॥ मुनिराज ज्ञानरूपी जहाजपर बैठकर अत्यन्त कठिनतासे पार करनेयोग्य इस संसाररूपी महासागरसे स्वयं पार होजाते हैं और अन्य कितने ही भव्य जीवोंको पार कर देते हैं॥६३॥

जो मुनि ज्ञान रहित हैं वे करने योग्य, न करने योग्य, शुभ, अशुभ, हेय, उपादेय, विवेक, बंध, मोक्ष आदि कुछ नहीं जानते हैं ॥ ६४ ॥ इसलिये जो मनुष्य पात्रोंके लिये (मुनिराजोंके लिये) ज्ञानदानरूपी महादान देते हैं वे अनेक भव्योंका उपकार करते हैं, अतएव उनके उपार्जन किये हुए पुण्यको हम लोग जान भी नहीं सकते ॥ ६५ ॥

उत्तम विद्वान् इस ज्ञानदानके प्रतापसे इस लोक और परलोक दोनों लोकोंमें मनोहर, सुस्वर, मधुर और कानोंको सुख देनेवाली वाणी प्राप्त करते हैं। कविता करना, पांडित्य प्राप्त करना, वादी होना, प्रतापी होना समस्त शास्त्रोंका सबसे अधिक ज्ञान होना, छह प्रकारका अवधिज्ञान प्राप्त होना, दोनों प्रकारका मनःपर्यय प्राप्त होना, कला-विज्ञान आदिमें कुशल होना, समस्त लौकिक व्यवहारका प्राप्त होना आदि सब ज्ञानदानके ही प्रतापसे प्राप्त होता है ॥६६-६८॥

इस सारभूत ज्ञानदानके प्रतापसे ज्ञानी पुरुष द्वादशांग, श्रुतज्ञानरूपी महासागरके पार हो जाते हैं और फिर व अनुक्रमसे इस संसारके भी पार हो जाते हैं ॥ ६९ ॥ बुद्धिमान् लोग इस संसारमें ज्ञानदानके ही प्रसादसे तीनों लोकोंको क्षोभित करनेका कारण ऐसे केवलज्ञानरूपी साम्राज्यको प्राप्त होते हैं ॥ ७० ॥ बुद्धिमान् लोग इस ज्ञानदानके ही प्रभावसे गौतमादि गणधरोंकी विभूति पाकर तथा समस्त कर्मोंको नाशकर मोक्षरूपी परमपदमें जा विराजमान होते हैं ॥ ७१ ॥ उत्तम मनुष्य इस ज्ञानदानके ही प्रसादसे सबसे अंतिम स्वर्गको पाकर तथा श्रेष्ठ राज्य भोगकर और केवलज्ञान पाकर मोक्षमें जा विराजमान होते हैं ॥ ७२ ॥

जो मनुष्य सुख प्राप्त करनेके लिये श्रेष्ठ पात्रोंको (मुनियोंको) वसतिका दान देते हैं वे इस लोक वा परलोकमें ऊँचे भवनोंमें अथवा उत्तम विमानोंमें जा विराजमान होते हैं ॥ ७३ ॥ मुनिराज हीन संहनन होनेपर उत्तम वसतिकाको पाकर ही ध्यान, अध्ययन वा तपश्चरण कर सकते हैं। विना वसतिकाके वे ध्यानादिक नहीं कर सकते। हां, जिनका शरीर वज्रके समान है, जो महा पराक्रमी हैं, जिनका हृदय शुभ है, जो परीषहोंको सहन करनेमें धीरवीर हैं, जो वज्रवृषभनाराच संहननको धारण करनेवाले हैं और जिन्होंने अपने शरीरसे ममत्वका त्याग कर दिया है, ऐसे मुनिराज पर्वतकी गुफाओंमें वा अन्यत्र भी ध्यान अध्ययन आदि समस्त कर्म कर सकते हैं ॥ ७४–७६ ॥

इसलिये जो मनुष्य उत्तम पात्रोंके लिये वसतिका दान देते हैं वे उत्तम भवन और सुन्दर विमानोंको पाकर अंतमें मोक्षमहलमें जा विराजमान होते हैं ॥ ७७ ॥

जो मनुष्य समस्त जीवोंके लिये उत्तम अभयदान देता है वह मनुष्य और देवोंके उत्तम सुख भोगकर अन्तमें निर्भयस्थानमें—सब तरहके भयोंसे रहित मोक्षस्थानमें—जा विराजमान होता है ॥ ७८ ॥ जिस प्रकार विना तपश्चरणके शरीर व्यर्थ है उसी प्रकार अभयदानके विना लोगोंके चारों दान सब व्यर्थ हैं ॥ ७९ ॥ जिस बुद्धिमानने समस्त जीवोंको सुख देनेवाला अभयदान दिया उसने पहिले कहे हुए चारों दान इकट्ठे दिये ऐसा समझना चाहिये ॥ ८० ॥

जिसप्रकार ज्ञान दर्शन आदि आत्माके गुण आत्मासे भिन्न माने जाते हैं और उनका दान दिया जाता है उसीप्रकार अभयदानको समझना चाहिये अर्थात् अभय भी आत्माका ही गुण है और आत्माके साथ रहता है, परंतु भिन्न मानकर उसका दान दिया जाता है ॥ ८१ ॥ जिस प्रकार पर्वतोंमें सुमेरु पर्वत मुख्य है और देवोंमें भगवान् जिनेन्द्रदेव मुख्य हैं उसी प्रकार समस्त दानोंमें अभयदान ही मुख्य है और यही सबसे उत्तम है ॥ ८२ ॥ मुनि वा श्रावकोंको महा फल देनेवाले इस अभयदानके समान अन्य तीनों लोकोंमें कोई नहीं होसकता ॥ ८३ ॥

यदि किसीको मरनेके बदलेमें रत्नोंसे भरी हुई समस्त पृथ्वी भी दे दी जाय तो भी कोई मरना स्वीकार नहीं करता ॥ ८४ ॥ अभयदानके प्रभावसे यह प्राणी वज्रवृषभनाराच संहननसे सुशोभित लावण्य आदि गुणोंसे विभूषित और समस्त रोगोंसे रहित ऐसे मनोहर शरीरको पाता है ॥ ८५ ॥ अभयदानके प्रतापसे मनुष्योंको मनोहर, शुभ, सारभूत धर्मोपदेश देनेमें चतुर और व्यक्त अक्षरोंसे सुशोभित ऐसी उत्तम वाणी प्राप्त होती है ॥ ८६ ॥

इस अभयदानके ही प्रतापसे मनुष्योंका हृदय सातों तत्त्वोंके चिन्तवन करनेसे भरपूर, रागद्वेष रहित और अत्यंत धीरवीर होजाता

है ॥ ८७ ॥ जो मनुष्य समस्त जीवोंको अभय दान देता है उसके घर तीनों लोकोंकी लक्ष्मी घरकी दासीके समान अपने आप वश हो जाती है ॥ ८८ ॥ गृहस्थोंको दयादानके फलसे स्वर्गकी लक्ष्मी घरकी स्त्रीके समान अपने आप आकर आलिंगन करती है ॥ ८९ ॥

जो स्थूल सूक्ष्म समस्त जीवोंको सदा अभयदान देता रहता है उसके रोग भय आदिक सब स्वप्नमें भी कभी नहीं होते हैं ॥ ९० ॥ दयादान करनेवाले मनुष्योंको छहों खण्ड पृथ्वी, नौनिधि, चौदहरत्न और अनेक सुन्दर रानियोंसे भरपूर चक्रवर्तीकी लक्ष्मी प्राप्त होती है ॥ ९१ ॥ अभयदानके प्रतापसे यह मनुष्य—अनेक करोड़ देव जिसकी पूजा करते हैं, जो महा भोगोंको देनेवाला है और सबसे उत्तम है ऐसे इन्द्रपदको प्राप्त होता है ॥ ९२ ॥

अभयदानके ही प्रतापसे मनुष्योंको अनन्त महिमासे सुशोभित और इन्द्र, नरेन्द्र आदिके द्वारा पूज्य ऐसे तीर्थंकरपदकी प्राप्ति होती है ॥ ९३ ॥ इस दयादानसे ही पापकर्मोंका संवर होता है और निर्जरा होती है तथा इस दयादानसे ही प्रतिदिन मनुष्योंको सुख देनेवाले महाधर्मकी प्राप्ति होती है ॥ ९४ ॥

संसारमें जो पदार्थ अमूल्य हैं, जो कठिनतासे प्राप्त हो सकते हैं अथवा जो तपश्चरण आदिसे भी सिद्ध नहीं हो सकते ऐसे तीनों लोकोंमें रहनेवाले समस्त पदार्थ मनुष्योंको केवल अभयदानसे प्राप्त हो जाते हैं ॥९५॥ इस दयादानके प्रतापसे मनुष्योंको अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख, अनंतवीर्य और इंद्रादिके द्वारा पूज्य ऐसा परम मोक्ष होता है ॥ ९६ ॥ यही समझकर श्रावकोंको और मुनियोंको केवल धर्मपालन करनेके लिये समस्त जीवोंको सदा अभयदान देते रहना चाहिये ॥ ९७ ॥

जो मनुष्य सुपात्रोंके लिये ऊपर कहे हुए समस्त दान सदा देता रहता है उन्हींका जन्म और उन्हींका गृहस्थाश्रम सफल समझना चाहिये ॥ ९८ ॥ जो मनुष्य धनी होकर भी कभी पात्रोंको दान नहीं देते उनका जन्म बकरीके गलेके स्तनोंके समान व्यर्थ समझना चाहिये ॥ ९९ ॥ जिस गृहस्थाश्रममें दान नहीं दिया जाता वह गृहस्थाश्रम पत्थरकी नावके समान समझना चाहिये। ऐसे गृहस्था-श्रममें रहकर मूर्खलोग अत्यंत अथाह संसाररूपी महासागरमें डूब जाते हैं ॥ १०० ॥

जिनका घर मुनियोंके चरणकमलोंके जलसे पवित्र नहीं हुआ है उनका घर श्मशानके समान है ऐसा विद्वान लोग मानते हैं ॥ १०१॥ यदि दान दिये विना ही गृहस्थ, गृहस्थ कहलाने लगें तो फिर घरके व्यापारमें लगे रहनेके कारण सब पक्षियोंको भी गृहस्थ कहना चाहिये ॥ १०२ ॥ संसारमें जो कंजूस मनुष्य पात्रोंको दान नहीं देता वह धनके मोहसे मरकर सर्प आदिकी कुगतिमें जन्म लेता है ॥ १०३ ॥

इस संसारमें दरिद्रता अच्छी परन्तु मनुष्योंको आगे नरकादिक कुगतियोंको देनेवाला तथा मोह उत्पन्न करनेवाला दान रहित धन अच्छा नहीं ॥ १०४ ॥ जो महा लोभी मनुष्य समर्थ होकर भी मुनियोंको दान नहीं देता वह अपने परलोकके समस्त सुखोंको नष्ट कर देता है ॥ १०५ ॥ जो न तो पात्रोंको दान देता है और न तपश्चरण करता है वह मनुष्य होकर भी सींग रहित पशुके समान समझा जाता है क्योंकि जिसप्रकार वह अपना ही पेट भरता है उसी-प्रकार पशु भी अपना पेट भर लेते हैं ॥ १०६ ॥

इसलिये जो गृहस्थ मुनियोंका उपकार करते रहते हैं वे तीनों

लोकोंमें प्रशंसनीय गिने जाते हैं ॥ १०७ ॥ यही समझकर हे मित्र! कुपात्र और अपात्रोंको छोड़कर तीनों प्रकारके पात्रोंके लिये (उत्तम, मध्यम, जघन्य पात्रोंके लिये) सुख देनेवाला दान सदा देते रहना चाहिये ॥ १०८ ॥

प्रश्न—हे स्वामिन् ! कृपाकर कुपात्र और अपात्रोंका लक्षण निरूपण कीजिये ।

उत्तर—हे वत्स ! चित्त लगाकर सुन, मैं उन दोनोंके लक्षण कहता हूँ ॥ १०९ ॥ जो मनुष्य सम्यग्दृष्टि नहीं हैं किंतु भोगोंकी इच्छासे मुनि वा श्रावकोंके समस्त व्रत पालन करते हैं तथा घोर तपश्चरण करते हैं, प्रतिदिन शास्त्र पढ़ते हैं और अनेक प्रकारके कायक्लेश करते हैं उनको भगवान् जिनेन्द्रदेव कुपात्र कहते हैं ॥ ११०–१११ ॥

जो इंद्रियोंके विषयोंमें आसक्त हैं, सम्यग्दर्शन और व्रतोंसे रहित हैं, जो धर्म संवेग आदिसे रहित हैं, समस्त पापोंकी प्रवृत्ति करनेवाले हैं, जो देव शास्त्र और गुरुओंकी निंदा करनेमें तत्पर हैं और सदा घरके ही कामोंमें लगे रहते हैं उनको भगवान् जिनेन्द्रदेव अपात्र कहते हैं ॥ ११२–११३ ॥ जो श्रावक अथवा मुनि तप वा चारित्र आदिसे सुशोभित होकर भी मिथ्यात्वकी पुष्टि करता है वह भी कुपात्रके ही पदको प्राप्त होता है इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ११४ ॥

जो मनुष्य पुण्य संपादन करनेके लिये कुपात्रोंको श्रेष्ठ अन्न दान देता है वह कुभोग भूमिमें तिर्यञ्च अथवा कुमनुष्य होता है ॥ ११५ ॥ कालोदधि समुद्रमें वा लवण समुद्रमें कुभोगभूमियां हैं उनमें लंबकर्ण, लोकमुख, विद्युन्मुख आदि कुमनुष्य होते हैं तथा भोगभूमियोंमें अत्यंत सुखी और दीर्घ आयुको धारण करनेवाले तिर्यञ्च होते हैं वे सब

कुपात्र दानके फलसे ही होते हैं ऐसा विद्वान् लोगोंको समझ लेना चाहिये ॥ ११६–११७ ॥

ढाई द्वीपसे बाहर तिर्यंच लोकके असंख्यात द्वीप समुद्रोंमें जो पशु प्राणी उत्पन्न होते हैं वे सब कुपात्र दानके फलसे ही होते हैं ॥ ११८ ॥ राजघरोंमें जो घोडे और हाथी बड़े सुखी होते हैं वे कुपात्र दानके ही फलसे होते हैं यह निश्चित है ॥ ११९ ॥ नीच पात्रोंको दान देनेसे ही मूर्ख प्राणी म्लेच्छ, खेटक, भील आदि धनाढ्य कुलोंमें जन्म लेता है ॥ १२० ॥

कुपात्रोंको दान देनेसे प्राणियोंको जो लक्ष्मी प्राप्त होती है वह कुमार्गमें खर्च होती है, बडी पापिनी होती है और नरक तिर्यंच आदि दुर्गतियोंको देनेवाली होती है ॥ १२१ ॥ मनुष्योंके घर जो लक्ष्मी अन्यायसे आती है वह लक्ष्मी पाप उत्पन्न करनेवाली होती है और वह कुपात्र दानसे ही आती है ऐसा विद्वानोंको जान लेना चाहिये ॥ १२२ ॥ महा नीच कुलोंमें उत्पन्न हुए मनुष्योंको जो नरकादिके कारणरूप पापोंको उत्पन्न करनेवाला सुख प्राप्त होता है वह सब कुपात्रदानके फलसे ही होता है ॥ १२३ ॥

मनुष्योंको दुःख देनेवाली और अनेक प्रकारके अन्याय करनेवाली जो लक्ष्मी महापापके कामोंसे आती है वह भी कुपात्र दानके फलसे ही आती है ऐसा विद्वान् लोगोंने कहा है ॥ १२४ ॥ इस संसारमें दुष्ट लोग जो अन्यायसे अशुभ भोगोपभोगोंको प्राप्त करते हैं वे भी कुपात्र दानसे ही होते हैं और आगेके लिये पाप उत्पन्न करनेवाले होते हैं ऐसा निश्चितरूपसे समझ लेना चाहिये ॥१२५॥ ये प्राणी कुपात्र दानके फलसे नीच योनियोंमें थोड़से भोगोपभोग प्राप्त करते हैं परंतु उन भोगोंसे अनेक प्रकारके पाप उत्पन्न करते हैं

और फिर उन पापकर्मोंके उदयसे नरकरूपी महासागरमें ही डूबते हैं ॥ १२६ ॥

इस कुपात्रदानके दोषसे तिर्यञ्चगतिके थोड़ेसे सुख भोगकर फिर संसाररूपी वनमें जा पडते हैं और वहां पर अनेक प्रकारके दुःख भोगते हैं ॥ १२७ ॥ मनुष्योंको जो नीच कुलोंमें लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है वह सब पाप उत्पन्न करनेवाली लक्ष्मी कुपात्र दानसे ही होती है ऐसा श्रीजिनेन्द्रदेवने बतलाया है ॥ १२८ ॥ जो मूर्ख इस कुपात्रदानसे स्वर्गोंके भोग चाहते हैं वे कुबुद्धि लोग गायके सींगोंसे दूध दुहना चाहते हैं ॥ १२९ ॥ यही समझकर हे भव्य ! मोक्ष प्राप्त करनेके लिये तू कुपात्रोंको छोडकर सुपात्रोंके लिये स्वर्ग मोक्ष देनेवाला दान दे ॥ १३० ॥

इसीप्रकार अपात्रदानके दोषोंको कौन बुद्धिमान् कह सकता है ? यह अपात्रदान इसलोक और परलोकके लिये पत्थरकी नावके समान है ॥ १३१ ॥ जिसप्रकार पत्थरकी शिलापर बोनेसे बीज निष्फल होजाता है उसी प्रकार अपात्रके लिये जो कुछ दिया जाता है वह सब निष्फल होजाता है ॥ १३२ ॥ जिसप्रकार किसी वनमें चोर लोग धनको छीन लेते हैं उसीप्रकार जिसने अपात्रको दान दिया वास्तवमें उसने वह द्रव्य कुमार्गमें नष्ट कर दिया जानना चाहिये ॥ १३३ ॥

जिसप्रकार पालन किया हुआ शत्रु वा सर्प प्राणियोंको दुःख ही देता है उसीप्रकार अपात्रको दिया हुआ दान केवल पाप ही उत्पन्न करता है ॥ १३४ ॥ जिसप्रकार पत्थरकी नावपर बैठा हुआ मनुष्य समुद्रमें डूबता ही है उसीप्रकार अपात्रको पालन पोषण करनेवाला मनुष्य भी संसाररूपी सागरमें डूब ही जाता है ॥ १३५ ॥

जो मूर्ख धर्मपालन करनेके लिये अपात्रोंको दान देता है वह उस अपात्रदानसे उत्पन्न हुए पापसे नरकादिक दुर्गतियोंमें जा पहुंचता है ॥ १३६ ॥

जिसप्रकार अपात्र पापोंके संयोगसे संसारमें परिभ्रमण करता है उसीप्रकार दाता भी पाप कर्मोंके संयोगसे प्रतिदिन चारों गतियोंमें ही परिभ्रमण करता रहता है ॥ १३७ ॥ मूर्ख लोग अपात्रदानसे जो पाप उत्पन्न करते हैं वैसे पाप कुशील सेवन आदि अन्य पापोंसे भी नहीं होते ॥ १३८ ॥ धनको नाश करनेके लिये अन्धे कुएमें डाल देना अच्छा, परंतु अपात्रको देना अच्छा नहीं, क्योंकि अपात्रको देनेसे धन भी नष्ट होता है और नरकादिक दुर्गतियां भी प्राप्त होती हैं ॥ १३९ ॥

जिसप्रकार पाला हुआ वाघ छलसे अपने स्वामीको खा ही जाता है उसीप्रकार अपात्र भी अपने दाताओंको शीघ्र ही नरकमें पहुँचा देता है ॥ १४० ॥ जिसप्रकार बादलोंसे वर्षा हुआ पानी भूमिके सम्बन्धसे नीम और ईखरूप (नीममें पड़कर कड़वा और ईखमें पड़कर मीठा) हो जाता है उसी प्रकार सुपात्र और अपात्रको दिया हुआ दान भी पुण्य पापरूप होजाता है अर्थात् सुपात्रको दिया हुआ दान पुण्यरूप होजाता है और अपात्रोंको दिया हुआ दान पापरूप होजाता है ॥ १४१ ॥

जिसप्रकार स्वाति नक्षत्रमें पड़ी हुई पानीकी बूंद (वर्षाकी बूंद) सीपमें जाकर मोती होजाती है और सर्पके मुँहमें जाकर विष होजाती है उसीप्रकार सुपात्रोंको दान देनेसे पुण्य होता है व अपात्रोंको देनेसे पाप होता है ॥ १४२ ॥ जिसप्रकार पाला हुआ सर्प विष ही देता है और पाली हुई गाय दूध ही देती है उसीप्रकार अपात्रोंको

दिया हुआ दान महा पाप उत्पन्न करता है और सुपात्रको दिया हुआ दान महा पुण्य उत्पन्न करता है ॥ १४३ ॥ जिसप्रकार कल्पवृक्षोंसे भोगोपभोगोंकी ही प्राप्ति होती है और धतूरेसे विषकी ही प्राप्ति होती है उसीप्रकार सुपात्रोंको दान देनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है और कुपात्रोंको देनेसे नरककी ही प्राप्ति होती है ॥ १४४ ॥

जिसप्रकार गाय तृणोंको खाती है और दूधरूपी अमृतको देती है उसीप्रकार मुनिराज थोडासा आहार लेते हैं, परंतु उसीसे मनुष्योंको स्वर्गरूपी बहुतसे अमृतकी प्राप्ति होजाती है ॥ १४५ ॥ जिसप्रकार अच्छे स्थानपर बोया हुआ वटका बीज बहुतसी छाया और फलोंसे फलता है उसीप्रकार सुपात्रोंको दिया हुआ दान भी भोगभूमि और स्वर्गादिके अनेक फलोंको फलता है ॥ १४६ ॥

दान चाहे सुपात्रको दिया जाय, चाहे कुपात्रको दिया जाय, चाहे अपात्रको दिया जाय परंतु उत्तम विद्वानोंको कुदान कभी नहीं देना चाहिये, क्योंकि कुदान देनेसे अपनेको भी पाप लगता है और दूसरेको भी (लेनेवालेको भी) पाप लगता है ॥ १४७ ॥

प्रश्न—हे भगवन्! जिनसे पाप उत्पन्न होता है ऐसे कुदान कितने हैं और कौन कौन हैं?

उत्तर—हे वत्स! मैं उन दुःख देनेवाले कुदानोंके दस भेद कहता हूँ, तू सुन ॥ १४८ ॥ गौ, कन्या, सुवर्ण, हाथी, घोड़ा, घर, पृथ्वी, तिल, रथ और दासी आदिका दान करना कुदान कहलाते हैं। संसारमें इन कुदानोंको अज्ञानी ही किया करते हैं ॥ १४९ ॥ जो अत्यन्त अज्ञानी पुरुष पुण्य सम्पादन करनेके लिये गायका दान देता है वह बंधन घात आदिसे उत्पन्न हुए अनेक पापोंको उत्पन्न करता है ॥ १५० ॥ इसीप्रकार जो पुरुष पुण्य बढ़ानेके लिये

पापोंका महासागररूप कन्यादान करता है वह घर, मैथुन, हिंसा आदिसे उत्पन्न हुए समस्त पापोंको प्राप्त होता है ॥ १५१ ॥

जो मनुष्य शुभ कर्मोंके लिये अनेक पापोंको उत्पन्न करनेवाले सुवर्णका दान देते हैं वे हिंसा, मोह आदिसे उत्पन्न हुए अत्यंत भारी पापोंको उत्पन्न करते हैं ॥ १५२ ॥ जो अज्ञानी हाथी, घोड़े, रथ, दासी, पृथ्वी, घर, तिल आदिकोंका दान करता है वह अनेक जीवोंके घातका कारण होनेसे महा पापकर्मोंको उपार्जन करता है ॥१५३॥ मनुष्योंको पुण्य उपार्जन करनेके लिये धनका दान तो कभी देना ही नहीं चाहिये, क्योंकि धनका दान देना महा मोहको उत्पन्न करनेवाला है और ज्ञान चारित्र आदि गुणोंको घात करनेवाला है ॥ १५४ ॥

जो मनुष्य हिंसा, मोह आदिको बढ़ानेवाले धनका दान करता है वह पाप और आरम्भोंका मूल कारण ऐसे भारी पापोंको इकट्ठा करता है ॥ १५५ ॥ जिस दानसे महा पात्रता नष्ट होजाय; मोह, क्रोध, भय, लोभ, शोक, चिंता आदि उत्पन्न होजांय, ध्यान अध्ययन नष्ट होजांय, जीवोंका घात हो, वचन दुष्ट या कठोर कहने पड़ें, मनुष्योंको राग वा द्वेष उत्पन्न होजांय, लोक निंदा हो वा और भी अनेक प्रकारके पाप हों, ब्रह्मचर्यका घात हो, मन मलिन होजाय, आर्तध्यान रौद्रध्यानकी प्रवृत्ति होजाय, धर्मध्यान और शुक्लध्यानमें विघ्न होजाय, मद उत्पन्न होजाय, इंद्रियां अपने व्यापारमें लग जांय, गुण नष्ट होजांय, व्रत छूट जांय और रत्नत्रयमें दोष लग जाय ऐसा दान उत्तम विद्वानोंको कंठगत प्राण होनेपर भी नहीं देना चाहिये ॥ १५६–१५९ ॥

हलाहल विष देना अच्छा परन्तु कुपात्रोंको व्रत और ज्ञानको

घात करनेवाला कुदान देना अच्छा नहीं, क्योंकि हलाहल विष देनेसे एक भवमें ही प्राण नष्ट होते हैं, परंतु कुपात्रोंको कुदान देनेसे अनेक भवोंमें दुःख भोगना पडता है ।। १६० ।। जो अज्ञानी उत्तम मुनियोंके लिये पाप उत्पन्न करनेवाला-कुदान देता है, वह सम्यक्चारित्रके घात करनेसे उत्पन्न हुए पापसे नरकमें ही पड़ता है ।। १६१ ।। संसारमें कृपण होना अच्छा, परंतु कुदानसे होनेवाले अनेक दुःखोंके कारण और पापोंके महासागर ऐसे दाताके दुर्गुण होना अच्छा नहीं ।। १६२ ।।

जो धनी पुरुष मुनिराजोंके लिये सम्यक्चारित्रको नाश करने-वाला कुदान देता है वह महापापी होता है और उस पापसे भवभवमें दरिद्रता धारण करता है ।। १६३ ।। जो कुदानोंको देनेवाला है वह दाता नहीं कहा जा सकता और जो सुदानका देनेवाला है, भगवान् जिनेन्द्रदेवने उसीको दाता बतलाया है ।। १६४ ।। इसीलिये चतुर पुरुषोंको अपने कर्म नष्ट करनेके लिये कुदानोंको छोड़कर महापुण्य उत्पन्न करनेवाला उत्तम दान देना चाहिये ।। १६५ ।।

प्रश्न—हे स्वामिन् ! यदि गृहस्थ लोगोंको धन आदिका दान नहीं देना चाहिये तो फिर संसारमें प्राप्त हुए बहुतसे धनका क्या करना चाहिये ।। १६६ ।।

उत्तर—हे वत्स ! मोक्ष प्राप्त करनेके लिये शुभ कर्मके उदयसे प्राप्त हुए धनसे जिनभवन बनवाना चाहिये, जिनबिंब बनवाना चाहिये और भगवान जिनेन्द्रदेवकी प्रतिष्ठा कर पूजा आदि सत्कर्म सदा करते रहना चाहिए ।। १६७ ।। जो धनी जिनबिंबके साथ साथ जिन भवन बनवाता है वहां पर पूजा, स्वाध्याय आदि नित्य कर्म सदा होते रहते हैं इसलिये उसके पुण्यरूप फलोंको हम जान भी नहीं सकते ।। १६८ ।।

जो धनी अनेक जीवोंका आधारभूत (जिसमें अनेक जीव आकर पुण्य उपार्जन करते हैं) जिनभवन बनवाता है उसके प्रतिदिन धर्मकी वृद्धि होनेसे महाधर्म वा महापुण्य प्राप्त होता है ॥ १६९ ॥ गृहस्थोंको जिन भवन बनवानेके समान अन्य कोई पुण्य नहीं है। यह प्रथम तो स्वर्गकी सीढ़ी है और फिर अनुक्रमसे मुक्तिरूपी स्त्रीको देनेवाला है ॥ १७० ॥ सारभूत मनोहर जिन भवनोंमें मुनिराज आकर निवास करते हैं, उन मुनिराजोंसे धर्मकी वृद्धि होती है और धर्मसे मनुष्योंको परम सम्पत्तिकी प्राप्ति होती है ॥ १७१ ॥

भव्य जीव श्री जिनभवनमें जाकर चन्दन पुष्प आदि उत्तम उत्तम द्रव्योंसे भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा करते हैं और इसप्रकार जिनभवनसे महा पुण्य उपार्जन करते हैं। १७२॥ गृहस्थ लोग जिनभवनमें जाकर भगवानको प्रणाम करते हैं, नृत्य स्तुति करते हैं, उत्तम बाजे बजाते हैं और इसप्रकारके अनेक कर्मोंसे महा पुण्य उपार्जन करते हैं ॥१७३॥ विद्वान् लोग धर्मके आधारभूत जिनभवनमें चन्दोवा, घण्टा, चमर, ध्वजा, दीपक, झल्लरी, ताल, कंसाल, भृङ्गार, कलश आदि उत्तम धर्मोपकरण देकर महापुण्य सम्पादन करते हैं ॥१७४-१७५॥

जो गृहस्थ धर्मके कारणभूत श्री जिनभवनको बनवाता है वह समस्त संघके धर्मकी वृद्धिका कारण होता है इसलिये वह संघादिपति (संघका स्वामी) कहलाता है ॥ १७६ ॥ जिसप्रकार जिनभवनको बनाता हुआ कारीगर धीरे धीरे ऊपरको चढ़ता जाता है उसीप्रकार उस जिनभवनको बनवानेवाला बुद्धिमान् गृहस्थ भी धर्मके निमित्तसे मोक्षमें जा विराजमान होता है ॥ १७७ ॥

जिनभवन बनवानेवालेको उस भवनमें अनेक भव्योंके द्वारा

होनेवाली पूजा आदिके सम्बंधसे जो एक दिनमें पुण्य होता है उसको भी कोई विद्वान कह नहीं सकता ॥ १७८ ॥ जो पुरुष चैत्यालय या जिनभवन बनवाता है वह अनेक भव्य जीवोंको पुण्य उपार्जन करने रूप उपकारको करता है इसलिये वह सब लोगोंके द्वारा पूज्य होता है और समस्त लोकमें वंदनीय गिना जाता है ॥ १७९ ॥ जो पुरुष भक्तिमें तत्पर होकर जिनभवन बनवाता है वह सोलहवें स्वर्गके सुख भोगकर मोक्षका राज्य प्राप्त करता है ॥ १८० ॥

जो भव्य पुण्य उत्पन्न करनेवाले जिनभवनको बनवाता है उसीकी लक्ष्मी सफल और स्वर्ग मोक्ष देनेवाली होती है ॥ १८१ ॥ श्री जिनेन्द्रदेवका भक्त जो भव्य पुरुष जिनबिंबोंका निर्माण कराता है वह नित्यपूजा आदिके सम्बन्धसे अपरिमित पुण्यको प्राप्त करता है, उसके पुण्यको कोई जान भी नहीं सकता ॥ १८२ ॥ जो पुरुष महा पुण्यको देनेवाली भगवानकी पूजा प्रतिदिन करते हैं उनके लिये इंद्रपद अथवा चक्रवर्तिका पद कुछ कठिन नहीं है ॥ १८३ ॥

विद्वान्लोग जबतक उस प्रतिमाकी पूजा करते रहते हैं तबतक उसके निर्माण करनेवाले कर्ताको पुण्यकी प्राप्ति होती रहती है ॥ १८४ ॥ जिसके घरमें पुण्य उपार्जन करनेवाली भगवान जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमा नहीं है उसका घर पक्षियोंके घोंपलेके समान है और वह अत्यंत पाप उत्पन्न करनेवाला है ॥ १८५ ॥ वे लोग तीनों लोकोंमें धन्य हैं जो केवल धर्मपालन करनेके लिये भगवानकी पूजा करते हैं, उनकी स्तुति करते हैं और जिनभवन अथवा जिनबिंबोंका निर्माण कराते हैं ॥ १८६ ॥

जो भव्य पुरुष चौबीस तीर्थंकरोंकी उत्तम प्रतिमाओंका निर्माण कराता है वह स्वर्गके राज्यको व मनुष्यलोकके राज्यको पाकर अन्तमें

मोक्षका साम्राज्य प्राप्त कर लेता है ॥ १८७ ॥ जो भव्य पुरुष सुवर्णकी, चांदीकी, रत्नोंकी अथवा पाषाण आदिकी उत्तम जिन-प्रतिमा बनवाता है उसके धर्म और सुख देनेवाली लक्ष्मी प्राप्त होती है ॥ १८८ ॥ गृहस्थोंको बिंबप्रतिष्ठाके समान और कोई धर्म नहीं है, क्योंकि बिंबप्रतिष्ठामें अनेक भव्य जीवोंका उपकार होता है और धर्मरूपी महासागरकी वृद्धि होती है ॥ १८९ ॥

जो भव्य जीव बिम्बप्रतिष्ठा कराता है वह श्रेष्ठ धर्मकी वृद्धिका कारण होता है इसलिये वह इंद्र और चक्रवर्तीके सुख भोगकर अन्तमें मोक्षरूप महा ऋद्धिको प्राप्त करता है ॥ १९० ॥ जो बुद्धिमान श्री जिनेन्द्रदेवकी उत्तम प्रतिष्ठा कराते हैं वे तीर्थंकरका परम पद पाकर मुक्तिरूपी ललनाका सेवन करते हैं ॥ १९१ ॥ प्रतिष्ठामें जितनी प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा होती है और उनकी जबतक नित्य पूजा आदि होती रहती है* तबतक उसके कर्ताओंको धर्मकी प्राप्ति होती रहती है ॥ १९२ ॥

जो भव्य जीव प्रतिष्ठा कराते हैं वे देव विद्याधर सबके द्वारा पूज्य होते हैं, स्तुति और वन्दना करने योग्य होते हैं और इसलोक तथा परलोक दोनों लोकोंमें महासागरके समान महा सुखको प्राप्त होते हैं ॥ १९३ ॥ बहुत कहनेसे क्या, जो मनुष्य प्रतिष्ठा कराता है, संसारमें उसीका जन्म सफल है क्योंकि वह प्रतिष्ठा धर्म, अर्थ और सुख देनेवाली है ॥ १९४ ॥ गृहस्थोंको भक्तिपूर्वक अपनी शक्तिके अनुसार प्रतिदिन जल चन्दनादिकसे भुक्ति मुक्ति देनेवाली भगवान् जिनेन्द्रदेवकी उत्तम पूजा करनी चाहिये ॥ १९५ ॥

---

* यह ऐसा कथन उपचारसे है, वास्तवमें इतना पुण्य उसी समय हो जाता है।

जो स्वभावसे ही स्वच्छ जलसे भगवान् जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाका अभिषेक करते हैं उस धर्मके प्रभावसे उनका समस्त पापरूपी कर्म नष्ट हो जाता है ॥ १९६ ॥ जो प्रतिदिन कपूर और कुँकुमसे मिले हुए चन्दनसे भगवान् जिनेन्द्रदेवकी पूजा करते हैं वे उसके प्रभावसे स्वर्गमें अत्यन्त सुगँधित शरीर पाते हैं ॥ १९७ ॥ जो भव्य जीव अखण्ड और उज्ज्वल अक्षतोंसे भगवान् जिनेन्द्रदेवकी पूजा करते हैं वे अक्षयपद वा मोक्षके परम सुखको प्राप्त होते हैं ॥ १९८ ॥

जो भव्य जीव जाति, चम्पा, कमल, केतकी आदिके सुन्दर पुष्पोंसे भगवान् जिनेन्द्रदेवकी पूजा करते हैं वे स्वर्गमें भी पूज्य गिने जाते हैं ॥ १९९ ॥ जो भव्य दूध, लड्डू, पक्वान, शाली चावल, वड़े आदि नैवेद्यसे भगवानकी पूजा करते हैं वे तीनों लोकोंमें उत्पन्न हुए समस्त भोगोंको प्राप्त होते हैं ॥ २०० ॥ जो सम्यग्दृष्टि पुरुष कपूर और घीके बने हुए दीपकसे भगवानकी पूजा करते हैं वे केवलज्ञानको अवश्य प्राप्त करते हैं ॥ २०१ ॥

जो भव्य भगवानके सामने चन्दन, अगुरु, कपूर आदि श्रेष्ठ द्रव्योंको दहन करते हैं, इनकी धूप बनाकर खेते हैं वे कर्मरूपी ईंधनको भस्म कर डालते हैं ॥ २०२ ॥ जो गृहस्थ आम, केला, नारियल, सुपारी आदि फलोंको भगवानके सामने समर्पण करते हैं वे इच्छानुसार फलको प्राप्त होते हैं ॥ २०३ ॥ जो गृहस्थ भगवान् जिनेन्द्रदेवपर पुष्पांजलि क्षेपण करते हैं वे पुष्पवृष्टिसे भरे हुए उत्तम स्वर्गमें जा विराजमान होते हैं ॥ २०४ ॥

इसप्रकार आठ भेदोंसे उत्पन्न हुई महापूजाके महोत्सवोंसे जो भगवान् जिनेन्द्रदेवकी पूजा करते हैं उनके सब तरहकी सम्पत्ति प्राप्त होती है ॥ २०५ ॥ जो विद्वान् भगवान् जिनेन्द्रदेवके चरणकमलोंकी

पूजा करते हैं वे प्राप्त हुए उस पुण्य कर्मके उदयसे इन्द्रकी विभूति पाकर अनेक देवोंके द्वारा पूज्य होते हैं ॥२०६॥ भगवान जिनेंद्र-देवकी पूजा करनेसे भव्य जीवोंको छहों खण्ड पृथ्वीसे सुशोभित तथा रत्न और निधियोंसे विभूषित चक्रवर्तीकी विभूति प्राप्त होती है ॥२०७॥ भव्य जीवोंको इस भगवान जिनेंद्रदेवकी पूजाके प्रभावसे अनंत महिमासे सुशोभित और तीनों लोकोंके स्वामियोंके द्वारा पूज्य ऐसे तीर्थंकर पदकी प्राप्ति होती है ॥ २०८ ॥ भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा किये विना मनुष्योंको भोग और सुखकी प्राप्ति कभी नहीं होती है इसीलिये भगवान जिनेंद्रदेवकी पूजा किये विना मनुष्योंको भोग और सुखकी प्राप्ति कभी नहीं होती है इसीलिये विद्वानलोग भगवानकी पूजा सदा किया करते हैं ॥ २०९ ॥ जो उत्तम पुरुष सवेरे, दोपहर और शाम तीनों समय भगवान जिनेंद्रदेवकी पूजा करते हैं वे तीनों लोकोंमें उत्पन्न होनेवाले समस्त भोगोंको भोगकर मोक्षपदमें जा विराजमान होते हैं ॥ ११

जो भव्य पुरुष भगवान जिनेंद्रदेवकी एकवार भी उत्तम पूजा कर लेता है वह समस्त सुखोंको पाकर मुक्तिस्त्रीको वश कर लेता है ॥२११॥ यह भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा मनुष्योंको इच्छानुसार फल देनेवाले कल्पवृक्षके समान है, कामधेनुके समान है, निधिके समान है अथवा चिंतामणी रत्नके समान है ॥ २१२ ॥

जो मूर्ख मनुष्य अष्टद्रव्यसे भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा नहीं करते उनके हाथ व्यर्थ हैं, उनका जन्म व्यर्थ है और इस लोकमें उनका गृहस्थाश्रम व्यर्थ है ॥ २१३ ॥ यही समझकर विद्वानोंको अपने द्रव्यके अनुसार इसलोक परलोक दोनों लोकोंमें हित करनेवाली भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा नित्य और अवश्य करनी चाहिये ॥२१४॥

भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा करनेसे जीवोंके असह्य ज्वर, वात,

कोढ आदि घोर दुःख देनेवाले रोग सब नष्ट होजाते हैं ॥ २१५ ॥ भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा मनुष्योंके शाकिनी, डाकिनी, भूत, पिशाच, दुष्ट, शत्रु, चोर, कोतवाल, राजा आदिसे उत्पन्न हुए समस्त उपद्रव नष्ट हो जाते हैं ॥ २१६ ॥ भगवान तीर्थंकर परमदेवकी पूजा करनेसे वध बंधनसे होनेवाले दुःख तथा सांकल, सर्प विष आदिसे उत्पन्न होनेवाले संसारी मनुष्योंके दुःख सब नष्ट हो जाते हैं ॥ २१७ ॥

भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा करनेवाले चतुर पुरुषको स्वयंवरमें आई हुई कन्याके समान तीनों लोकोंमें रहनेवाली लक्ष्मी अपने आप आकर स्वीकार कर लेती है ॥ २१८ ॥ जो भावपूर्वक भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा करके द्रव्य कमानेके लिये दूसरे गांवोंको जाते हैं उनको बहुतसी लक्ष्मी देनेवाला भारी लाभ होता है ॥ २१९ ॥ भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा करनेसे गृहस्थोंके विवाह आदि समस्त मंगलकार्य निर्विघ्नतापूर्वक समाप्त हो जाते हैं ॥ २२० ॥

इसलिये गृहस्थ लोगोंको निर्विघ्नपूर्वक कार्यकी समाप्तिके लिये अथवा पुण्योपार्जन करनेके लिये भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा करनी चाहिये ॥ २२१ ॥ गृहस्थोंको इसलोक तथा परलोक दोनों लोकोंका हित करनेके लिये समस्त कल्याणोंको करनेवाली भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा सदा करते रहना चाहिये ॥ २२२ ॥

जो सम्यग्दृष्टि पुरुष भगवान जिनेन्द्रदेवका अभिषेक करते हैं वे मेरु पर्वतपर उनका जन्माभिषेक पाकर मोक्षमें जा विराजमान होते हैं—अर्थात् वे तीर्थङ्कर होते हैं, इसलिये मेरु पर्वतपर उनका जन्माभिषेक किया जाता है और अंतमें वे मोक्ष जाते हैं ॥२२३॥ जो मनुष्य पुण्य उपार्जन करनेके लिये श्री जिनेन्द्रदेवको (उनके

भवनमें) घंटा समर्पण करते हैं वे परलोकमें अनेक घण्टाओंसे सुशोभित विमानपर चढ़कर गमन करते हैं ॥ २२४ ॥ जो मनुष्य मनोहर जिनभवनमें चन्दोवा देते हैं वे अपने पुण्य कर्मके उदयसे एक छत्र महाराज्यका उपभोग करते हैं ॥ २२५ ॥

जो मनुष्य श्री जिनभवनकी शोभा बढ़ानेके लिये उसमें चमर समर्पण करता है वह अनेक दुलते हुए चमरोंसे शोभायमान स्वर्गके साम्राज्यका उपभोग करता है ॥ २२६ ॥ जो मनुष्य श्री जिनालयमें धर्मोपकरण देते हैं वे भवभवमें भोगोपभोगके उपकरण (साधन) प्राप्त करते हैं ॥ २२७ ॥

मनुष्योंको सिद्धांत ग्रंथोंका उद्धार करनेके लिये अवश्य द्रव्य प्रदान करना चाहिये। क्योंकि सिद्धांतोंका उद्धार करनेसे ही मनुष्योंका ज्ञान वा सुख आदि सब सफल गिना जाता है ॥२२८॥ धनाढ्य पुरुषोंको पुण्य उपार्जन करनेके लिये चारों प्रकारके संघको यथायोग्य रीतिसे चारों प्रकारका दान देना चाहिये ॥ २२९ ॥ गृहस्थोंको अपना पुण्य बढ़ानेके लिये, जिनालयके लिये, जिन प्रतिमाओंके लिये, जिन पूजाका उद्धार करनेके लिये और सिद्धांत ग्रन्थोंका उद्धार करनेके लिये अपना धन देना चाहिये ॥ २३० ॥

जो गृहस्थ धर्मकी वृद्धिके लिये ऊपर कहे हुए पुण्यक्षेत्रोंमें दान देता है वह उस पुण्यकर्मके उदयसे परलोकमें अनंत धनको प्राप्त होता है ॥ २३१ ॥ गृहस्थोंको अपना दयाधर्म बढ़ानेके लिये दयापूर्वक जो हिंसक वा रुद्रपरिणामी नहीं है ऐसे दीन और अनाथ लोगोंको अन्नदान अवश्य देना चाहिये ॥ २३२ ॥ जो पुरुष करुणादान नहीं करते उनका मन कठोर हो जाता है और मन कठोर हो जानेसे पाप लगता है इसलिये गृहस्थोंको सदा करुणादान देते रहना चाहिये ॥ २३३ ॥

उत्तम पुरुषोंको बावड़ी, कुआ और तलाव आदि नहीं करना चाहिये क्योंकि इनके बनवानेमें महा हिंसा होती है और इनसे संसारमें सदा पाप उत्पन्न होते रहते हैं ॥ २३४ ॥ कुआ खोदने-वाला कारीगर जिसप्रकार नीचे ही नीचेको चलता जाता है उसी प्रकार उसका खुदानेवाला अज्ञानी पुरुष भी सातवें नरक तक नीचे ही नीचे चला जाता है ॥ २३५॥ जिसप्रकार चैत्यालयके बनवानेमें उसके बनवानेवालेको सदा पुण्यकी प्राप्ति होती है उसीप्रकार कुआमें भी सदा जीवोंकी उत्पत्ति और विनाश होता रहता है इसलिये उनके बनवानेवालोंको भी सदा ही पापकी प्राप्ति होती रहती है ॥२३६॥

तलावोंमें बड़े बड़े मगरमच्छ छोटी छोटी अनेक मछलियोंको खा जाते हैं; बगला, बाज, चकवा चकवी आदि अनेक पक्षियोंका समुदाय मछलियोंकी हिंसा करते रहते हैं, और अनेक शिकारी आ आकर मछलियोंके लिये जाल फैलाते हैं, इन सब कामोंसे महा हिंसा होती है ॥ २३७-२३८ ॥ यही समझकर अहिंसाव्रतकी रक्षा करनेके लिये पापोंसे डरनेवाले श्रावकोंको पाप उत्पन्न करनेवाले बावड़ी, कुआ, तलाव आदि कभी नहीं बनवाना चाहिये ॥२३९॥

हे भव्य ! मुनियोंके लिये आहारदान देना समस्त सुखोंकी निधि है, समस्त भोग उपभोगकी खानि है, स्वर्गादिक निर्मल गति-योंको देनेवाला है, स्वर्गकी सीढी है, नरकरूपी घरको बन्द करनेके लिये किवाड़ है, अपने और दूसरोंके लिये सुखका कारण है और सबसे सुन्दर वा उत्तम है इसलिये हे भव्य ! तू मुनिराजोंके लिये सदा आहारदान दे ॥ २४० ॥ इसीप्रकार मुनियोंके लिये औषध-दान देना मुनियोंके लिये सुखका कारण है, रोगरूपी हाथीको मारनेके लिये सिंहके समान है, निर्मल गुणोंका समुद्र है और अनंत

सुखका घर है, इसलिये हे भव्य ! तू धर्मकी सिद्धिके लिये रोगी मुनियोंको सारभूत और प्रासुक औषधि दे, अर्थात् औषधदान कर ॥ २४१ ॥

आहारदान और औषधिदानके समान ज्ञानदान भी मोक्षमहलमें पहुँचानेका कारण है, समस्त जीवोंका उपकार करनेवाला है, तीनों लोकोंके स्वामी तीर्थंकर परमदेव भी इसकी सेवा करते हैं, यह समस्त तत्त्वोंको प्रगट करने–दिखलानेके लिये दीपक है, पापरूपी अन्धेरेको दूर करनेके लिये सूर्य है और धर्मरूपी वृक्षकी जड़ है, इसलिये हे विद्वन् ! श्रुतज्ञानको प्राप्त करनेके लिये तू मुनियोंके लिये ज्ञानदान दे ॥ २४२ ॥ भगवान् जिनेन्द्रदेवका जिनभवन धर्मकी खानि है, धर्मकी वृद्धि करनेवाला है, स्वर्ग मोक्षका कारण है, मुनिराज भी इसकी सेवा करते हैं (वन्दना करते हैं), और यह जिनालय एक निधानके समान है। ऐसे जिनालयको जो विद्वान् लोग बनाते हैं वे संसारमें वन्दना करने योग्य हैं। उन्होंने अपनी बुद्धिको परलोककी सिद्धिमें ही लगा रक्खा है। ऐसे लोग उस इकट्ठे किये हुए धर्मके प्रभावसे सुख देनेवाले अच्युत स्वर्गके राज्यको पाकर मोक्षमें जा विराजमान होते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ २४३ ॥

भगवान् जिनेन्द्रदेवका प्रतिबिम्ब भी संसारमें पूज्य है, सदा पूजनीय है और श्रेष्ठ पुण्यका घर है, इसलिये जो भव्य पुरुष ऐसे महा सुन्दर जिनबिंबका निर्माण कराते हैं, जिनप्रतिमा बनवाते हैं वे अनेक सुखोंको भोगकर अवश्य ही मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥२४४॥

भगवान् जिनेन्द्रदेवकी प्रतिष्ठा कराना सबमें सारभूत है, निर्मल गुणोंकी खानि है, श्रेष्ठ धर्मकी एकमात्र पृथ्वी है अर्थात् श्रेष्ठ धर्मकी उत्पत्ति प्रतिष्ठासे ही होती है, यह असंख्यात लोगोंको

पुण्य कर्मोंका उपार्जन करानेवाली है और अनन्त सुख देनेवाली है इसलिये जो विद्वान जिन प्रतिमाकी प्रतिष्ठा कराते हैं वे संसारमें धन्य हैं और वे ही सुन्दर हैं। ऐसे लोग श्रेष्ठ मोक्षमार्गरूप धर्मकी वृद्धि करनेके कारण तीनों लोकोंमें उत्पन्न होनेवाली और अपरिमित सुख देनेवाली लक्ष्मीका उपभोग कर अन्तमें अनन्त सुखकी निधि ऐसे मोक्षस्थानमें जा विराजमान होते हैं ॥ २४५ ॥

इसप्रकार आचार्य श्रीसकलकीर्ति विरचित प्रश्नोत्तर श्रावकाचारमें
चारों प्रकारके दानके स्वरूपको वर्णन करनेवाला
यह बीसवां सर्ग समाप्त हुआ।

इक्कीसवां सर्ग ।

जिन्हें समस्त शत्रुमण्डल भी नमस्कार करता है और जो धर्मरूपी अमृतको बरसानेके लिये महामेघके समान हैं ऐसे श्री नमिनाथ जिनेन्द्रदेवको मैं सुखकी प्राप्तिके लिये नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ जो बुद्धिमान पांचों अतिचारोंको त्यागकर मुनिराजके लिये आहारदान देता है वह तीनों लोकोंके भोगोंका अनुभव कर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करता है ॥ २ ॥

प्रश्न—हे भगवन्! कृपाकर मेरे लिये उन अतिचारोंका निरूपण कीजिये ।

उत्तर—हे मित्र ! सुन, मैं दानमें मल उत्पन्न करनेवाले उन अतिचारोंको कहता हूँ ॥ ३ ॥ सचित्तनिक्षेप, सचित्तापिधान, अनादर, मत्सर और कालातिक्रम ये पांच, दानमें दोष उत्पन्न करनेवाले अतिचार है ॥ ४ ॥ जो कमलपत्र आदि सचित्त पदार्थोंपर मुनिराजके

लिये देनेयोग्य प्रासुक आहार रखता है उसके सचित्तनिक्षेप नामका अतिचार लगता है ॥५॥ जो पुरुष मुनिराजके लिये देनेयोग्य दानको कमलपत्र आदि सचित्त पदार्थसे ढकता है उसके सचित्तापिधान नामका अतिचार लगता है ॥ ६ ॥

जो उत्तम पात्रोंके लिये विना आदर सत्कारके दान देता है उसके पाप उत्पन्न करनेवाला अनादर नामका अतिचार लगता है ॥ ७ ॥ जो पुरुष अन्य दाताओंके दानसे उत्पन्न होनेवाले गुणोंको सहन नहीं कर सकता है उसके मत्सर नामका अतिचार लगता है ॥ ८ ॥ जो घरमें पात्रको स्थापन करके प्रमादके कारण योग्य कालको उल्लंघन कर दान देता है उसके कालातिक्रम नामका अतिचार लगता है ॥ ९ ॥

जो पुरुष सदा दोषोंको छोड़कर महापात्रोंके लिये उत्तम दान देता है उसके सब मनोरथ फलीभूत होते हैं ॥ १० ॥ जो विद्वान सुपात्रोंके लिये चारों प्रकारका महादान देता है वह इसलोक और परलोक दोनों लोकोंके सुख भोगकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करता है ॥११॥

प्रश्न—हे स्वामिन् ! चारों प्रकारके दान देनेसे जिन्होंने बहुत अच्छा सुख प्राप्त किया है उनकी कथा कृपाकर कहिये ॥ १२ ॥

उत्तर—हे महाभाग ! सुन, मैं श्री शांतिनाथस्वामीकी महा पुण्य उत्पन्न करनेवाली कथा कहता हूं ॥ १३ ॥ आहारदान देनेमें राजा श्रीषेण तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हुए हैं इसलिये मैं उनकी पुण्य उत्पन्न करनेवाली कथा संक्षेपसे कहता हूं ॥ १४ ॥ मलय नामके शुभदेशमें रत्नसञ्चयपुर नामके नगरमें अनेक गुणोंका घर धीरवीर दाता श्रीषेण नामका राजा राज्य करता था ॥ १५ ॥ उस राजा श्रीषेणके पुण्यके प्रभावसे सिंहनंदिता और अनिंदिता नामकी दो

रानियां थीं जोकि हावभाव आदि समस्त गुणोंसे सुशोभित थीं ॥ १६॥ उनके इन्द्र और उपेन्द्र नामके दो पुत्र थे जो अत्यंत चतुर थे, शास्त्रोंके जानकार थे और दान पुण्य करनेमें निपुण थे ॥ १७ ॥

उसी नगरमें एक सात्यकी नामका ब्राह्मण रहता था उसकी ब्राह्मणीका नाम जम्बू था, उनके रूप और गुणोंसे सुशोभित सत्यभामा नामकी पुत्री थी ॥ १८ ॥ इधर पाटलिपुत्र नामके नगरमें रुद्रभट्ट नामका ब्राह्मण रहता था और ब्राह्मणोंके पुत्रोंको पढ़ाया करता था ॥ १९ ॥ उसके घरमें कपिल नामका उसकी दासीका पुत्र रहता था, वह उन पाठोंको सुनते सुनते सब शास्त्रोंका पारगामी हो गया था ॥ २० ॥ उस दासीपुत्रको शास्त्रोंका पारगामी होता देखकर रुद्रभट्टने अपने घरसे निकाल दिया, तब उसने यज्ञोपवीत और उत्तरीय (जनेऊ, डुपट्टा) आदि वस्त्र पहिनकर ब्राह्मणका भेष धारण किया तथा मिथ्याज्ञानमें तत्पर रहनेवाला वह कपिल इसप्रकार कपट धारण कर रत्नसञ्चयपुरमें पहुंचा ॥ २१-२२ ॥

वहांपर उसे सात्यकी ब्राह्मणने देखा तो उसे रूपवान् तथा वेदका पारगामी जानकर अपने घर ले आया और सत्यभामानामकी शुभ और सती कन्या उसे व्याह दी ॥२३॥ रात्रिके समय सत्यभामाने उसका अच्छा व्यवहार न देखकर हृदयमें खेद माना और एक प्रकारसे निश्चयसा कर लिया कि यह उत्तम कुलीन नहीं है ॥ २४ ॥ किसी एक समय रुद्रभट्ट ब्राह्मण तीर्थयात्राके लिये परिभ्रमण करता हुआ उसी रत्नसञ्चयपुरमें आ पहुंचा जहांकि कपिल ब्राह्मण रहता था ॥ २५ ॥ कपिलने देखते ही उसे नमस्कार किया और अपने घर लेजाकर भोजन कराकर तथा वस्त्र आभूषण देकर उसका खूब ही आदर सत्कार किया ॥ २६ ॥

उस मूर्ख कपिलने अपनी स्त्री और समस्त लोगोंके सामने उसी समय स्पष्ट शब्दोंमें कह सुनाया कि ये मेरे पिता हैं ॥२७॥ किसी एक दिन सत्यभामाने रुद्रभट्टको बहुत ही उत्तम भोजन खिलाया और उसे बहुतसा सुवर्ण देकर तथा उसके पैरोंको पड़कर कपिलका कुल पूछा ॥ २८ ॥ तब रुद्रभट्टने सच बात कह दी और कह दिया कि हे पुत्री! यह कपिल नामका तेरा पति मेरी दासीका पुत्र नीच ब्राह्मण है ॥२९॥ इस बातको सुनकर वह अपने मनमें बड़ी विरक्त हुई और विचार करने लगी कि विषमिला भोजन खा लेना अच्छा, परंतु हीनकुल मनुष्यके साथ रहना अच्छा नहीं ॥ ३० ॥

तदनन्तर उसने उस दुष्टका त्याग कर दिया और अपने शीलभंग होनेके भयसे वह महाराज श्रीषेणकी रानी सिंहनंदिता तथा अनिंदिताके शरणमें जा पहुंची ॥३१॥ सिंहनंदिताने उसे अपनी धर्मपुत्री मानकर रक्खा इसप्रकार दान पूजा आदि कार्योंको करती हुई वह सत्यभामा वहां रहने लगी ॥ ३२ ॥ किसी एक दिन ध्यान और अध्ययनमें तत्पर रहनेवाले दो चारण मुनिराज आहारके लिये महाराज श्रीषेणके घर पधारे ॥ ३३ ॥ उन्हें देखते ही महाराजने उन्हें स्थापन किया और उनके चरणकमलोंको नमस्कार किया। उन दोनों मुनिराजोंमें अर्ककीर्ति बड़े थे और अमितगति छोटे थे ॥ ३४ ॥

तदनन्तर भक्ति करनेमें तत्पर रहनेवाले महाराज श्रीषेणने उन दोनों मुनिराजोंको विधि-पूर्वक उत्तम आहार दिया ॥३५॥ जिसप्रकार महाराज श्रीषेणने वह आहारदान देकर महापुण्य उपार्जन किया उसी प्रकार उस दानकी अनुमोदना करनेके कारण दोनों रानियोंने और सत्यभामाने भी पुण्य उपार्जन किया ॥३६॥ उस दानके फलसे राजा श्रीषेण अपनी दोनों रानियोंके साथ उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न

हुआ। तथा ब्राह्मणी सत्यभामा भी आहारदानकी अनुमोदना करनेसे और उसके पुण्यके फलसे उसी उत्तम भोगभूमिमें आर्या हुई ॥३७-३८॥

वहांपर वस्त्रांग, गृहांग, मालांग, भूषणांग आदि सब तरहके कल्पवृक्ष थे, उनके कारण अपनी इच्छानुसार, उपमा रहित, स्वभावसे उत्पन्न होनेवाले, समस्त इंद्रियोंको उत्पन्न करनेवाले भोग अपने पुण्य-कर्मके उदयसे भोगने लगे, इसप्रकार दश प्रकारके कल्पवृक्षोंसे उत्पन्न हुए दश प्रकारके भोग, विना किसी रोग क्लेश आदि बाधाओंके उन्होंने तीन पल्य तक भोगे थे ॥ ३९-४१ ॥

इसप्रकार सुखपूर्वक अपनी आयु पूरी कर राजा श्रीषेणके जीवने अनेक महा ऋद्धियोंसे सुशोभित देवोंकी विभूति पाई और इस प्रकार देव और मनुष्योंके उत्तम उत्तम सुख भोगकर अपने उस भवसे बारहवें शुभ भवमें शांतिनाथ तीर्थंकर हुए। उस पात्र दानके पुण्यसे उन्हें तीथकर चक्रवर्ती और कामदेवका पद प्राप्त था ॥४२-४३॥

इस दानके ही प्रभावसे वैश्यकुलको सुशोभित करनेवाला सुकेतु देवोंसे भी अजेय हुआ था अर्थात् उसे देव भी नहीं जीत सकते थे तथा उसने अनेक ऋद्धियोंसे सुशोभित होनेवाले तथा तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध ऐसे देवोंके सुख भोगे। तदनन्तर उसने मुक्तिरूपी वधू अपने वशमें की, उसकी कथा चतुर पुरुषोंको पुण्य स्रव पुराणसे जान लेनी चाहिये। ४४-४५ ॥ इसीप्रकार अत्यन्त गुणवान वैश्यपुत्र धन्य-कुमारको दानसे उत्पन्न होनेवाले पुण्यके फलसे अनेक प्रकारकी ऋद्धियां प्राप्त हुईं थीं, निधियां प्राप्त हुईं थीं और अनेक प्रकारके भोगोपभोग प्राप्त हुए थे, उस धीरवीरकी कथा भी शास्त्रोंसे जान लेनी चाहिये ॥ ४६-४७ ॥ राजा श्रेयांसने भी श्री वृषभदेव तीर्थंकरको दान दिया था इसलिये वे तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हुए थे। देवोंने

उनके घर रत्नवृष्टि आदि पंचाश्चर्य किये थे और अन्तमें उन्हें मोक्ष पद प्राप्त हुआ था, उनकी कथा आदि पुराणसे जान लेनी चाहिये ॥ ४८–४९ ॥ राजा वज्रजंघने भी चारण मुनियोंको आहार-दान दिया था इसलिये वे अनुक्रमसे श्री वृषभदेव तीर्थंकर हुए थे। उनकी कथा धर्म और संवेगको प्रकट करनेवाले आदिनाथपुराणमें प्रसिद्ध है, वहांसे जानलेनी चाहिये ॥ ५०–५१ ॥

इस दानके प्रभावसे अन्य भी कितने ही पशुओंने सुख पाया है उन सबकी कथा कौन कह सकता है ॥ ५२ ॥ देखो, इस दानके ही प्रभावसे भगवान शांतिनाथ तीनों लोकोंके स्वामी व तीनों लोकोंमें पूज्य हुए थे, धर्मतीर्थके कर्ता हुए थे, समस्त गुणोंके समुद्र और मोक्षके अनुपम सुख प्राप्त करनेवाले हुए थे। यह पात्र दान अनेक सुखोंका कारण है इसलिये हे मित्र ! तू सदा पात्रदान कर ॥५३॥

इसप्रकार आहारदानमें प्रसिद्ध होनेवाले श्रीपेणकी कथा कहकर अब औषधि दानमें प्रसिद्ध होनेवाली वृषभसेनाकी कथा कहते हैं॥५४॥ जनपद नामके देशके कावेरी नगरमें पूर्वोपार्जित पुण्यकर्मके उदयसे राजा उग्रसेन राज्य करता था ॥ ५५ ॥ उसी नगरमें एक धनपति नामका सेठ रहता था और उसकी स्त्रीका नाम धनश्री था। उन दोनोंके अनेक गुणोंसे सुशोभित वृषभसेना नामकी पुत्री हुई थी ॥ ५६ ॥ उसकी एक धाय थी जो बड़ी बुद्धिमती थी और रूपवती उसका नाम था। वह वृषभसेनाको स्नान कराया करती थी और वस्त्र पहिनाया करती थी ॥ ५७ ॥

किसी एक दिन जिस गढेमें वृषभसेनाके स्नानका जल भर रहा था उसमें एक रोगी कुत्ता गिर गया। वह उस गढेमें कुछ लोटा पोटा और फिर निरोग होकर उसमेंसे निकल आया ॥ ५८ ॥ उसे

नीरोग होकर निकलते देखकर धायने यह विचार किया कि अवश्य ही इस वृषभसेनाके स्नानका जल रोगोंको दूर करनेका कारण है ॥५९॥ तब उसने परीक्षा करनेके लिये अपनी माताकी आंखोंपर वह जल लगाया। माताकी आंखें बारह वर्षसे बिगड़ रही थीं वे उस जलके लगाते ही अच्छी होगईं ॥ ६० ॥ तब तो वह सुलक्षणा धाय समस्त रोगोंके दूर करनेमें प्रसिद्ध होगई और सब लोग उसे मानने लगे ॥ ६१ ॥

किसी एक समय राजा उग्रसेनने अपने पिंगल नामके मन्त्रीको बड़ी सेनाके साथ अपने शत्रु राजा मधुपिंगलके साथ युद्ध करनेके लिये उसीके देशमें भेजा, परन्तु मधुपिंगलने वहांके जलोंमें विष डलवा रक्खा था इसलिये सेनाके सब लोग एक प्रकारके ज्वरसे रोगी होगये ॥ ६२-६३ ॥ वे लोग वहांपर ठहर नहीं सके इसलिये लौटकर चले आए और रूपवती धायके द्वारा उसी वृषभसेनाके स्नानके जलसे अच्छे होगये ॥ ६४ ॥ तब क्रोधित होकर राजा उग्रसेन स्वयं युद्ध करनेके लिये गया और उसीप्रकार रोगी होकर तथा युद्ध करनेमें असमर्थ होकर लौट आया ॥ ६५ ॥

राजाने उस जलकी बात मन्त्रीके मुखसे स्वयं सुनी और फिर रूपवती धायसे वह रोगोंको दूर करनेवाला जल मंगवाया ॥ ६६ ॥ तब वृषभसेनाकी माता धनश्रीने सेठसे कहा कि पुत्रीके स्नानका जल राजाके मस्तक पर किसप्रकार डालना चाहिये जरा इसका भी तो विचार कीजिये ॥ ६७ ॥ तब सेठने उत्तर दिया कि यदि महाराज जलकी बात पूछेंगे तो सच बात ज्योंकि त्यों कह दी जायगी फिर इसमें कोई दोष नहीं है ॥ ६८ ॥

तदनन्तर वह राजा उस वृषभसेनाके स्नानके जलसे नीरोग होगया। तब राजाने रूपवतीसे उस जलके माहात्म्यकी बात पूछी ॥ ६९ ॥

रूपवतीने सब ज्योंकी त्यों कह सुनाई । तब राजाने सेठको बुलाया, उस कन्याकी बड़ी प्रशंसा की और फिर अपने साथ विवाह करनेके लिये मांगी ॥७०॥ इसके उत्तरमें सेठने कहा—हे महाराज ! यदि आप अष्टाह्निकाके दिनोंमें जिनालयमें जाकर भगवान् अर्हंतदेवकी पूजा कर, पिंजड़ोंमें रहनेवाले सब पक्षियोंको छोड़दें और अपने कारागारसे (जेलसे) सब मनुष्योंको छोड़दें तो मैं आपके लिये उस कन्याको देसकता हूं ॥ ७१–७२ ॥ महाराज उग्रसेनने यह स्वीकार कर उसके साथ विवाह कर लिया और उसे पट्टरानी बनाया । प्रेमके कारण वह वृषभसेना राजाकी बहुत ही प्यारी होगई थी ॥ ७३ ॥

विवाहके समय राजा उग्रसेनने जब सबको छोड़ा था तब भी बनारसके राजा पृथ्वीचन्द्रको नहीं छोड़ा था ॥ ७४ ॥ पृथ्वीचन्द्रकी रानीका नाम नारायणदत्ता था, उसने अपने पतिको छुडानेके लिये मंत्रियोंसे सलाह लेकर रानी वृषभसेनाके नामसे बनारसमें बहुतसे उत्तम उत्तम सत्कार घर बनवाये ॥ ७५–७६ ॥

जो ब्राह्मणादिक उन सत्कारघरोंमें उत्तम भोजनकर कावेरी नगरमें पहुंचे थे उनसे उन सब सत्कार घरोंका हाल रूपवती धायने सुना ॥ ७७ ॥ तब उसने वृषभसेनासे कहा कि तूने बनारसमें अपने नामसे बहुतसे सत्कारघर बनवाये हैं सो क्या तूने विना मुझसे पूछे ही बनवा डाले ? ॥ ७८ ॥ इसके उत्तरमें पट्टरानी वृषभसेनाने कहा कि बनारसमें मैंने कुछ नहीं बनवाया है, किसी कारणसे मेरे नामसे किसी औरने बनवाये होंगे ॥ ७९ ॥ तब इसकी खोज करनेके लिये रूपवतीने बनारसके लिये बहुतसे गुप्तचर (छिपकर जांच करनेवाले) भेजे और यथार्थ बात जानकर रानीसे सब हाल कह ॥ ८० ॥

तब महारानी वृषभसेनाने महाराजसे प्रार्थना कर उसी समय राजा पृथ्वीचन्द्रको छुड़वा दिया ॥ ८१ ॥ वहांसे छूटकर पृथ्वीचन्द्रने एक चित्र बनवाया जिसमें राजा उग्रसेन और रानी वृषभसेनाका चित्र बनवाया और उनके नीचे प्रणाम करते हुए अपना चित्र बनवाया ॥ ८३ ॥ वह चित्र ले जाकर राजा उग्रसेनकी भेट किया और फिर राजा उग्रसेनको नमस्कार कर रानी वृषभसेनाकी बहुत प्रशंसा की ॥ ८४ ॥

राजा उग्रसेनने कहा कि तुम पिंगलको (मेघपिंगलको) पकड़ कर लाना, यह कह कर राजा रानी दोनोंने पृथ्वीचन्द्रको बनारसके लिये बहुत शीघ्र विदा कर दिया ॥ ८५ ॥ पृथ्वीचन्द्रके छूट जानेपर राजा मेघपिंगलने विचारा कि मेरे मर्मको जाननेवाला पृथ्वी-चन्द्र आ गया है यह सोच समझ कर वह स्वयं राजा उग्रसेनके समीप आया और नमस्कार कर उसका सेवक बन गया। राजा उग्रसेनने भी उसका सत्कार किया और हित करनेवाले सामंत पदपर नियुक्त किया ॥ ८६-८७ ॥

राजा उग्रसेनने आज्ञा दी कि मेरे यहां जो भेट आवेगी तथा वस्त्र आभूषण आवेंगे उनमेंसे आधे राजा पिंगलको दिये जांय और आधे रानी वृषभसेनाको दिये जांय। ऐसी व्यवस्था महाराज उग्र-सेनने स्वयं कर दी ८७-८८ ॥ किसी एक समय राजाकी भेटमें दो रत्नकंबल आए। राजाने दोनों पर अलग अलग नाम लिखकर दोनोंको दे दिये अर्थात् वृषभसेनाका नाम लिखकर वृषभसेनाको दे दिया और मेघपिंगलका नाम लिखकर मेघपिंगलको दे दिया ॥८९॥

किसी एक समय किसी कामके लिये राजा मेघपिंगलकी रानी रूपवतीके (वृषभसेनाकी धायके) घर आई। दैवयोगसे वा पाप-

कर्मके उदयसे वहांपर दोनोंके कंबल परस्पर बदल गये अर्थात् मेघपिंगलका कंबल वहां रह गया और वृषभसेनाका कंबल मेघपिंगलकी रानी ओढ़ गई। सो ठीक ही है, पापकर्मके उदयसे मनुष्योंके क्या २ विपरीत कार्य नहीं हो जाता है ॥ ९०-९१ ॥ किसी समय उस बदले हुए वृषभसेनाके कंबलको ओढ़कर राजा मेघपिंगल बड़ी प्रसन्नताके साथ राजा उग्रसेनकी राज सभामें आया ॥ ९२ ॥

राजा उग्रसेन उस कंबलपर वृषभसेनाका नाम देखकर बहुत ही क्रोधित हुआ और क्रोधसे उसके नेत्र लाल हो गये। अपने आनेसे ही राजाको इसप्रकार क्रोधित देखकर राजा मेघपिंगल वहांसे भाग गया ॥९३॥ मेघपिंगलको भागता हुआ देखकर राजा उग्रसेनाका सन्देह और भी बढ़ गया। उसने वृषभसेनाके समीप आकर उसका कंबल देखा और उसपर मेघपिंगलका नाम देखकर रानी वृषभसेनाको मारनेके लिये अथाह जलसे भरे हुए किसी सागरमें डलवा दिया ॥ ९४ ॥ उस समय रानी वृषभसेनाने प्रतिज्ञा की कि यदि मैं इस उपसर्गसे बचूंगी तो पापरहित तीव्र तपश्चरण करूंगी ॥९५॥

तदनंतर वृषभसेनाके व्रतके प्रभावसे, उसके शीलके माहात्म्यसे तथा पुण्यकर्मके उदयसे जलदेवताने आकर सिंहासन रच दिया तथा और भी प्रातिहार्योंकी रचना कर दी ॥ ९६ ॥ देखो, व्रतोंके माहात्म्यसे संसारमें जो कुछ हो सकता है वह सब मनुष्योंको होजाता है। इन व्रतोंके माहात्म्यसे स्वर्गका इंद्र भी दास बन जाता है ॥९७॥ वृषभसेनाकी यह महिमा सुनकर राजा उग्रसेन पश्चात्ताप करने लगा, उसको लेनेके लिये वह स्वयं गया और वचनोंके द्वारा उससे अनेक प्रकारकी क्षमा मांगी ॥ ९८ ॥

वह रानी वृषभसेना आ ही रही थी कि उसे मार्गके एक वनमें

भव्य जीवोंको धर्मोपदेश करनेवाले अवधिज्ञानी श्री गुणधरमुनिके दर्शन हुए ॥ ९९ ॥ रानी वृषभसेनाने उनके चरणकमलोंको नमस्कार किया और समीप बैठकर अपने पहिले जन्मके भव पूछे ॥ १०० ॥ मुनिराज कहने लगे–हे पुत्री ! तू चित्त लगाकर सुन, मैं तेरे पुण्य-पापको सूचित करनेवाले पहिले भव कहता हूं ॥ १०१ ॥

इसी पुण्यवती नगरीमें तू पहिले एक ब्राह्मणकी पुत्री थी। नागश्री तेरा नाम था। तू राजाके जिनभवनमें झाड़ू बुहारी देनेका काम किया करती थी ॥ १०२ ॥ किसी एक दिन महाराजके उसी जिनभवनमें भीतर मुनिदत्त नामके धीरवीर मुनिराज आकर वायुसे रहित एक गढेमें विराजमान हो गये ॥ १०३ ॥

वे ज्ञानी मुनिराज मौन और कायोत्सर्ग धारणकर पर्यंकासनसे विराजमान होगये ॥ १०४ ॥ झाड़ू देते देते जब वह नागश्री मुनिराजके समीप आ गई तब वह मुनिराजसे कहने लगी कि "हे मुनिराज ! उठो उठो, मैं यहां झाड़ू दूगी, महाराज आते ही होंगे, आप अब दूसरी जगह चले जाइये।" परन्तु मुनिराज न तो कुछ बोले और न हटे, क्योंकि वे तो ध्यानमें लीन थे, वे मौन धारण कर काठके समान अचल विराजमान थे ॥ १०५-१०६ ॥ तब नागश्रीने क्रोधित होकर सब जगहसे झाड़ बुहारकर सब कूडेका ढेर मुनिराजके चारों ओर लगा दिया और उस कूडेसे उस गढेको ढक दिया ॥ १०७ ॥

मुनिराज शरीरसे ममत्व छोड़कर मेरुपर्वतके समान निश्चल होकर अपने कर्मोंको नाश करनेके लिये घोर उपसर्ग सहन करने लगे ॥ १०८ ॥ प्रातःकाल ही वहांपर राजा आया। मुनिराजके श्वास लेनेसे वह कूड़ा कचरा कुछ हिल रहा था, उसे देखकर राजाको कुछ संदेह हुआ और उसने उसी समय कूडा हटाकर मुनि-

राजको निकाला। उस धीरवीर मुनिराजको देखकर राजाको बहुत ही आश्चर्य हुआ और उसने विचार किया कि ये मुनि बड़े ही धीर-वीर हैं इनकी धीरवीरता आश्चर्यके योग्य है ॥ १०९-११० ॥

नागश्रीने यह देखकर अपनी बड़ी निन्दा की और अपनेको बारबार धिक्कारा। उसका धर्ममें प्रेम बढ़ गया और मुनिराजके चरण-कमलोंमें नमस्कार कर उनसे क्षमा प्रार्थना की ॥ १११ ॥ तदन्तर मुनिराजका रोग दूर करनेके लिये नागश्रीने उन्हें औषधि दी और भक्तिपूर्वक उन मुनिराजकी बहुत ही वैयावृत्य की ॥ ११२ ॥ वहांसे मरकर तू इस वैश्य कुलमें अत्यन्त रूपवान और पाप-पुण्यके फलको प्रगट करनेवाली वृषभसेना हुई है ॥ ११३ ॥

पहिले जन्ममें तूने मुनिराजको औषधदान दिया था उसके फलसे ही तेरे स्नानके जलमें समस्त रोगोंके दूर करनेकी शक्ति होगई है। तथा मुनिराजकी अवज्ञा की थी इसलिए तू सागरमें फेंक दी गई थी ॥११४॥ देखो, इन्द्रियोंको तृप्त करनेकी लालसा करता हुआ यह प्राणी इस संसाररूपी समुद्रमें वारवार डूबता और उछलता हुआ अपने किये हुए पुण्य और पापोंका फल सदा भोगता रहता है ॥ ११५ ॥

मुनिराजके वचन सुनकर उस वृषभसेनाको कर्मोंको नाश करने-वाला अत्यन्त दुःख देनेवाले संसार शरीर और भोगोंसे वैराग्य उत्पन्न हुआ ॥ ११६ ॥ तदन्तर वृषभसेनाने अपने आत्माको संसारके बन्धनसे छुड़ाया, वह मुनिराजके चरणकमलोंको नमस्कार कर उन्हींके समीप अर्जिका होगई और निर्दोष घोर तपश्चरण करने लगी ॥११७॥

इसप्रकार निर्मल औषधदानके फलसे ही नागश्री अनेक प्रकारके भोगोंको सेवन करनेवाली और अनेक गुणोंसे सुशोभित सेठकी पुत्री

और राजाकी पट्टरानी वृषभसेना हुई थी जिससे सर्वौषधि ऋद्धि प्राप्त हुई थी तथा निर्दोष तपश्चरण कर उसने स्वर्गलोककी सम्पदा प्राप्त की थी इसलिये प्रत्येक गृहस्थको सदा दान देते रहना चाहिये॥११८॥

इसप्रकार औषधदानमें प्रसिद्ध होनेवाली श्री वृषभसेनाकी कथा कहकर अब शास्त्रदानमें प्रसिद्ध होनेवाले कौंडेश मुनिकी कथा कहता हूं॥ ११९॥ इसी जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें धर्म और सुखसे भरपूर एक कुरुमरी नामका गांव था॥ १२०॥ वहांपर एक गोविंद नामका गवालिया रहता था जो कि शुभ परिणामी था। उसने किसी एक दिन एक वृक्षके कोटरमें एक शास्त्रजी देखे॥ १२१॥ उन्हें वह घर ले आया और प्रतिदिन उनकी पूजा करने लगा। कितने दिनके बाद वे शास्त्रजी उसने बड़ी भक्तिके साथ मुनिराज श्री पद्म-नन्दिके लिये दे दिये॥ १२२॥

मुनिराज पद्मनंदि आदि कितने ही मुनियोंने वे शास्त्रजी पढ़कर अनेक लोगोंको धर्मोपदेश दिया, लोगोंसे उनकी महापूजा कराई और फिर उन्हें किसी कोटरमें रखकर देशांतरको चले गये। गोपाल उन शास्त्रजीको कोटरमें देखकर फिर प्रतिदिन उनकी पूजा करने लगा॥ १२३-१२४॥ अंतमें वह निदान करके मरा और किसी गांवमें उस गांवके स्वामीके यहां कौंडेश नामका पुत्र हुआ॥१२५॥

किसी एक दिन उसे उन्हीं मुनिराज श्री पद्मनंदिके दर्शन हुए और पहिले जन्ममें दिये हुए ज्ञानदानके प्रतापसे मुनिराजको देखते ही उसे जातिस्मरण हो आया॥ १२६॥ उसी समय उसे संसार शरीर और भोगोंसे वैराग्य उत्पन्न हुआ और उसने स्वर्ग मोक्षके देने-वाली जिन दीक्षा धारण करली॥ १२७॥

थोड़े ही दिनमें ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होनेसे बुद्धिमान्

और अनेक भव्य जीवोंको धर्मोपदेश देनेवाला वह कौंडेश समस्त श्रुतज्ञानरूपी महासागरका पारगामी हो गया ॥ १२८ ॥ देखो, ज्ञानदानके प्रभावसे श्री कौंडिश मुनिराज समस्त श्रुतज्ञानरूपी महासागरके पारगामी होगये थे, समस्त तत्त्वोंके ज्ञाता होगये थे, पूर्ण चारित्रको धारण करनेवाले होगये थे, वे अनेक गुणोंसे विभूषित होगये थे और समस्त संसारमें पूज्य होगये थे ऐसे श्री कौंडेश मुनिराज सदा जयशील हों ॥ १२९ ॥ इसप्रकार ज्ञानदानमें प्रसिद्ध होनेवाले कौंडेशकी कथा कह चुके ।

अब वसतिका दानमें प्रसिद्ध होनेवाले शूकरकी कथा कहते हैं ॥ १३० ॥ इसी जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें मालवा देशके घटगांवमें एक देवल नामका भद्र कुम्हार रहता था तथा उसी गांवमें धर्मल नामका महा दुष्ट और कुमार्गगामी एक नाई रहता था ॥ १३१-१३२ ॥ उन दोनोंने मिलकर धर्म और कीर्तिकी वृद्धिके लिये तथा पथिकोंके ठहरनेके लिये एक धर्मशाला बनवाई थी ॥ १३३ ॥

किसी एक दिने देवलने वह धर्मशाला किसी मुनिराजके लिये दे दी । वे मुनिराज उसमें आकर धर्मध्यान धारण कर बैठ गये । तदनन्तर धर्मलने एक सन्यासीको लाकर वहां बैठा दिया । वहांपर मुनिराजको देखकर धर्मल और सन्यासी दोनोंने मिलकर मुनिराजको बाहर कर दिया ॥ १३४-१३५ ॥ शुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाले वे मुनिराज शीत और डास मच्छरोंकी महाबाधाको सहन करते हुए किसी वृक्षके नीचे ध्यान लगाकर विराजमान होगये ॥ १३६ ॥ सवेरा होते ही देवल और धर्मल दोनों ही क्रोधपूर्वक लड़ने लगे और दोनों ही एक दूसरेकी चोटसे मर गये ॥ १३७ ॥

वे दोनों एक दूसरेपर द्वेष करते हुए आर्तध्यानसे मरे इसलिये

वे दोनों बड़े क्रोधी और क्रूर सुकर और वाघ हुए (देवलका जीव सूकर हुआ था और धर्मलका जीव वाघ हुआ था) ॥ १३८ ॥ जिस गुफामें सूकर रहता था उसमें किसी एक दिन समाधिगुप्त और त्रिगुप्त नामके मुनिराज आ विराजमान हुए ॥ १३९ ॥ उन्हें देखते ही उस सूकरको पुण्यकर्मके उदयसे जाति स्मरण होगया। उसने उन मुनिराजके चरणकमलोंको नमस्कार किया और शान्त होकर बैठ गया ॥ १४० ॥

मुनिराजने स्वयं कृपाकर उसके सामने स्वर्ग मोक्ष देनेवाला, सारभूत और श्रावकोंके व्रतोंको सूचित करनेवाले धर्मका स्वरूप कहा ॥१४१॥ सुख देनेवाले धर्मका स्वरूप सुनकर उसने अत्यन्त कठिनतासे त्याग करनेयोग्य पापोंका भी त्याग कर दिया और श्रावकके व्रतोंको धारण कर मुनिराजके समीप ही बैठ गया ॥ १४२ ॥ ठीक इसीसमय वह दुष्ट वाघ मनुष्यकी गन्ध सूंघकर उन मुनिराजको भक्षण करनेके लिये शीघ्र ही वहां आ पहुंचा ॥ १४३ ॥

सूकर उस वाघको देखकर शीघ्र ही उसके सामने गया और उन मुनिराजकी रक्षा करनेके लिये उस गुफाके दरवाजे पर जा बैठा ॥१४४॥ वाघ आया ही था कि दोनोंका युद्ध होने लगा और दोनों बड़े क्रोधसे युद्ध करने लगे । दोनों एक दूसरे पर चोट करने लगे और चोटसे दोनों मर गये ॥१४५॥ देवलका जीव जो सूकर था वह मुनिराजकी रक्षाके लिये लड़ा तथा मरा था इसलिये वह सौधर्म स्वर्गमें जाकर बड़ी ऋद्धिका धारक देव हुआ ॥ १४६ ॥

वाघ मुनिराजको भक्षण करनेके अभिप्रायसे लड़ा और मरा था इसलिये वह पापकर्मके उदयसे अत्यन्त दुःख देनेवाले महा घोर और तीव्र नरकमें जाकर पड़ा था ॥ १४७ ॥ इसप्रकार मुनिकी रक्षा

करनेके अभिप्रायसे केवल वसतिका दान देनेरूप व्रतको पालन करनेके कारण सूकर मुनिराजके चरणकमलोंको हृदयमें रखकर मरा था इसलिये वह उस निर्मल पुण्यके प्रभावसे सारभूत सौधर्म स्वर्गमें निर्मल गुणोंका समुद्र ऐसा उत्तम देव हुआ था ॥ १४८ ॥

प्रश्न—हे प्रभो ! भगवान् जिनेन्द्रदेवकी पूजा करनेसे जिसको उत्तम फल मिला है उसकी कथा कृपाकर मेरे लिये कहिये ॥१४९॥

उत्तर—हे श्रावकोत्तम ! तू एक चित्त होकर सुन। भगवान् जिनेन्द्रदेवकी पूजा करनेमें तल्लीन हुए एक मेंढकके पुण्यसे होनेवाले फलको मैं कहता हूं ॥१५०॥ इसी प्रसिद्ध जम्बूद्वीपके मगध नामके शुभ देशमें एक मनोहर राजगृह नगर शोभायमान है जिसके सब घर प्रायः धर्म अर्थ आदि पुरुषार्थोंसे भरपूर हैं ॥ १५१ ॥

उस नगरमें राजा श्रेणिक राज्य करता था। वह राजा भव्य जीवोंका शिरोमणि था, बुद्धिमान् था, धीरवीर था, धर्मकी प्रभावना करनेवाला था और क्षायिक सम्यग्दर्शनसे सुशोभित था ॥ १५२ ॥ किसी एक दिन उसने वनपालसे (मालीसे) विपुलाचल पर्वतपर श्री महावीरस्वामीके आनेके समाचार सुने इसलिये वह स्वयं अपनी बड़ी सेनाको साथ लेकर उनकी वन्दना करनेके लिये निकला। वहांपर जाकर उसने जगतगुरु भगवान् जिनेन्द्रदेव महावीरस्वामीकी तीन प्रदक्षिणाएं दीं और हाथ मस्तकपर रखकर उनको नमस्कार किया ॥ १५३–१५४ ॥

तदनन्तर उस बुद्धिमानने बड़ी भक्तिसे आठों द्रव्य लेकर भगवानकी पूजा की और फिर वह राजा श्रेणिक भगवान् महावीर-स्वामीकी स्तुति करने लगा ॥ १५५ ॥ हे देव ! आप जगतके स्वामी हैं, विना ही कारणके समस्त जीवोंकी रक्षा करनेवाले हैं और

सर्वज्ञ हैं तथा मैं नितांत बुद्धि रहित हूँ फिर भला मैं आपकी स्तुति किसप्रकार कर सकता हूँ ॥ १५६ ॥ तथापि मैं अत्यन्त मंदबुद्धि होकर भी केवल भक्तिके भारसे प्रेरित होकर आपकी स्तुति करता हूँ ॥ १५७ ॥

हे देव ! आप सबकी रक्षा करनेवाले हैं और किसीकी भी रक्षा करनेवाले *नहीं हैं, तथापि महा रक्षक हैं। आप सबके स्वामी हैं, किसीके भी स्वामी ×नहीं हैं तथापि तीनों लोकोंके स्वामी हैं। आप वीर हैं, +वीर नहीं हैं और महावीर हैं इसलिये हे देव ! आपको नमस्कार हो ॥ १५८ ॥ आप सिद्ध हैं, महा सिद्ध हैं और प्रसिद्ध हैं, आप बुद्ध (सर्वज्ञ) हैं, महा बुद्ध हैं और अतिशय बुद्धिको देनेवाले हैं। आप धीर हैं, महाधीर हैं और धीरता÷ रहित हैं इसलिये हे नाथ ! आपके लिये नमस्कार हो ॥ १५९ ॥

आप अहिंसाधर्मकी प्रवृत्ति करनेवाले हैं, तथापि कर्मोंको वा राग-द्वेषादिको नष्ट करनेके कारण हिंसक कहलाते हैं। अनन्त विभूति होनेके कारण आप सधन हैं, सुधन हैं और धनी हैं। आप अत्यन्त रूपवान हैं। शुद्ध आत्मस्वरूप होनेके कारण अरूपी हैं तथापि परम मनोहर हैं इसलिये हे देव ! आपके लिये नमस्कार हो ॥ १६० ॥ हे देव ! आप देव हैं, देवाधिदेव हैं और महादेव हैं, आप गुणोंके निधान हैं निधियोंके स्वामी हैं, आप नाथ हैं, आपका कोई स्वामी नहीं है इसलिये आप अनाथ हैं, तथापि आप जगन्नाथ

---

* आपके प्रतापसे स्वयं रक्षा हो जाती है परन्तु आप किसीकी रक्षा करते नहीं। × आप किसीको सेवक नहीं मानते। + क्योंकि आपमें क्रोधका अभाव है। ÷ क्योंकि आपने बड़ी शीघ्रताके साथ कर्मोंको नष्ट किया है।

कहलाते हैं इसलिये हे देव! आपको नमस्कार हो॥ १६१॥

हे नाथ! आप ध्यान करनेवाले ध्याता हैं, महाध्याता हैं तथापि सब आपका ध्यान करते हैं। आप किसीका ध्यान नहीं करते इसलिये आप ध्याता नहीं है। आप दयालु हैं, महादयालु हैं और निर्दयतासे कर्मोंको नाश करनेके कारण दया रहित हैं। आप सब तरह योग्य हैं, महायोग्य हैं परन्तु सांसारिक कार्योंके लिये अयोग्य हैं इसलिये हे देव! मैं आपको नमस्कार करता हूँ॥१६२॥ आप प्रतिदिन तीनों समय उपदेश देनेके कारण वक्ता हैं, सुवक्ता हैं तथापि आपकी भाषा दिव्यध्वनि निरक्षरी होनेके कारण आप अवक्ता ही हैं। आप इच्छा रहित हैं तथापि समस्त जीवोंका कल्याण करनेकी भावना होनेके कारण इच्छावाले गिने जाते हैं। आप ब्रह्मा हैं, अब्रह्मा हैं तथापि सृष्टिके कर्ता न होनेके कारण आप ब्रह्मा नहीं हैं। हे नाथ! ऐसे आपको वारवार नमस्कार हो॥ १६३॥

हे देव! आप सशरीर हैं, परमोत्कृष्ट शरीरको धारण करनेवाले तथापि शरीर रहित हैं। आप निश्चल हैं, स्थिर हैं तथापि सब जगह विहार करनेके कारण अस्थिर हैं। आप एक रत्न हैं, महारत्न हैं और परिपूर्ण रत्नत्रयसे सुशोभित हैं इसलिये हे देव! आपके लिये वारवार नमस्कार हो॥ १६४॥

हे प्रभो! इन्द्र भी आपके चरणकमलोंकी पूजा करते हैं, आप मुक्तिके स्वामी हैं, सदा इसी अवस्थामें रहनेवाले अव्यय हैं, धर्मरूपी अमृतके समुद्र हैं, सुखकी निधि हैं, केवलज्ञानको प्रकाशित करनेवाले हैं, तीनों लोकोंको इस असार संसारसे पार कर देनेके लिये अद्वितीय विद्वान् हैं और मोहके महा अभिमानको चूर चूर करनेवाले हैं. हे जिनराज! हे गुरुदेव!! हे प्रभो!!! मैं आपकी शरण आया हूँ, आप कृपाकर मेरी रक्षा कीजिये॥ १६५॥

इसप्रकार देवोंके द्वारा परम पूज्य भगवान महावीरस्वामीकी स्तुति कर और उनको प्रणाम कर राजा श्रेणिक प्रसन्नचित्त होकर मनुष्योंके कोठेमें जा बैठा ॥ १६६ ॥ वहांपर बैठकर उसने छहों द्रव्य, सातों तत्त्वोंका स्वरूप सुना और मुनि तथा गृहस्थोंके सुख देनेवाला धर्मका स्वरूप सुना ॥ १६७ ॥

उसी समय वहांपर एक बड़ी ऋद्धिको धारण करनेवाला देव बड़ी विभूतिके साथ भगवानकी पूजा करनेके लिये आया जिसके मुकुटमें मेंढ़कका चिह्न था ॥ १६८ ॥ महाराज श्रेणिकने उसे देखकर ज्ञानरूपी नेत्रको धारण करनेवाले गौतमस्वामीको नमस्कार किया और उस देवके मुकुटमें लगे हुए मेंढ़कके चिह्नका कारण पूछा ॥ १६९ ॥ इसके उत्तरमें श्री गौतमस्वामी कहने लगे कि यह अभी जाकर स्वर्गमें देव हुआ है और तुरन्त ही भगवानकी पूजा करनेके लिये आया है ॥ १७० ॥

यह सुनकर महाराज श्रेणिकने फिर पूछा कि हे स्वामिन् ! पहिले भवमें इसने कौनसा दान दिया था कौनसी पूजा की थी अथवा कौनसा तप किया था जिसके पुण्यसे यह ऐसा देव हुआ है हे स्वामिन् ! आप कृपाकर सब मुझसे कहिये ॥ १७१ ॥ यह सुनकर श्री गौतम गणधर कहने लगे कि हे श्रेणिक ! तू मन लगाकर सुन, मैं पुण्य बढ़ानेवाली इसकी कथा कहता हूं ॥ १७२ ॥

इसी तेरे नगरमें एक नागदत्त नामका सेठ रहता था। वह सेठ अत्यन्त मायाचारी था. उसकी स्त्रीका नाम भवदत्ता था ॥ १७७ ॥ किसी एक दिन वह सेठ आर्तध्यानसे मरा और उस आर्तध्यानके पापके फलसे अपने ही घरके आंगनकी बावड़ीमें मेंढक हुआ ॥ १७४ ॥ जब पानी भरनेके लिये उसकी स्त्री उस बावड़ीमें आई तब उसे

देखकर उसे जातिस्मरण होगया और पहिले भवके मोहके कारण वह उस भवदत्ताके शरीरपर उछलकर चढने लगा, परंतु भवदत्ताने वह नीच मेंढक बहुत दूर फेंक दिया, परन्तु पूर्वकर्मोंके उदयसे वह मेंढक चिल्लाता हुआ टर्रटर्र करता हुआ फिर शीघ्रतासे आकर उसके ऊपर चढने लगा ॥ १७५-१७६ ॥

तब उस बुद्धिमती भवदत्ताने अपने मनमें समझ लिया कि यह मेरा कोई अभीष्ट (सम्बन्धी-या मुझसे प्रेम रखनेवाला) होगा ॥ १७७॥ तदनंतर किसी एक दिन उस सेठानीने अवधिज्ञानसे सुशोभित श्री सुव्रत नामके मुनिराजसे उस मेंढककी कथा पूछी ॥ १७८ ॥ तब मुनिराजने कहा कि हे पुत्री ! यह तेरे पतिका जीव पापकर्मके उदयसे अत्यंत दुःखी मेंढक हुआ है ॥ १७९ ॥

भवदत्ताने उस मेंढकको अपने पतिका जीव जानकर मोहके कारण तथा उसपर भक्ति करनेके लिये उसे अपने घर लाकर बड़े आदरसे रक्खा ॥ १८० ॥ हे राजन् ! श्री महावीरस्वामीके यहां पधारने पर तू आनंदभेरी दिलाकर भक्तिपूर्वक भगवानकी वंदना करनेके लिये आया ॥ १८१ ॥ तब वह भवदत्ता सेठानी भी बड़ी भक्तिसे अपने भाई कुटुम्बियोंके साथ वैभार पर्वतपर भ० वर्धमान-स्वामीकी पूजा करनेके लिये आई ॥ १८२ ॥

यह देखकर वह मेंढक भी भक्तिमें तल्लीन होकर अपनी वावडी-मेंसे एक कमलका दल लेकर भगवानकी पूजा करनेके लिये निकला ॥ १८३ ॥ वह मार्गमें आरहा था इसलिये वह मेंढक मार्गमें ही हाथीके पैरसे दबकर चूरचूर होगया, परन्तु उसके हृदयमें भगवानकी पूजा करनेके भाव बने ही रहे ॥ १८४ ॥

भगवानकी पूजा करनेके परिणाम बने रहनेके कारण उसके

पुण्य प्रभावके कारण यह सुखके सागर ऐसे सौधर्म स्वर्गमें बड़ी ऋद्धिको धारण करनेवाला देव हुआ है ॥ १८५ ॥ उत्पन्न होनेके समयसे अन्तर्मुहूर्तमें ही यह युवक होगया था और धीरवीर दिव्य वस्त्रोंको धारण करनेवाला और अनेक आभूषणोंसे सुशोभित होगया था ॥ १८६ ॥

यह देव अपने अवधिज्ञानसे पहिले भवकी सब बात जानकर अपनी बड़ी भारी विभूतिके साथ भगवान महावीरस्वामीकी पूजा करनेके लिये आया है ॥ १८७ ॥ हे श्रेणिक ! केवल भगवानकी पूजाके परिणाम होनेके कारण इस देवको स्वर्गमें बहुतसी विभूतियां और बहुतसे भोग प्राप्त हुए हैं ॥ १८८ ॥

देखो, भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजाका फल मनुष्योंको महा लक्ष्मी और सुखका कारण है तथा इसलोक परलोक दोनों लोकोंके सब अनिष्ट दूर करनेवाला है ॥ १८९ ॥ यही विचारकर राजा श्रेणिकके, अत्यंत सुख देनेवाले भगवान जिनेन्द्रदेवके चरणकमलोंकी प्रतिदिन पूजा करनेके भाव उत्पन्न होगये ॥ १९० ॥

मेंढ़ककी इस कथाको सुनकर कितने ही भव्य जीव पापोंसे डरकर और संवेग वैराग्यमें तल्लीन होकर प्रतिदिन भगवानकी पूजा करनेके भाव करने लगे ॥ १९१ ॥ तदनंतर राजा श्रेणिक परम आनंदित होकर और जगतगुरु भगवान महावीरस्वामीको तथा गौतम गणधरको नमस्कार कर अपने घर जा पहुंचा ॥ १९२ ॥

देखो, शुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाला मेंढ़क केवल भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा करनेके भाव उत्पन्न करनेके कारण प्राप्त हुए निर्मल पुण्यके प्रतापसे समस्त सुखोंके घर ऐसे स्वर्गमें बड़ी ऋद्धिको

धारण करनेवाला देव हुआ था ॥ १९३ ॥ जो मनुष्य भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा करता है वह तीनों लोकोंमें उत्पन्न होनेवाली समस्त ऋद्धियोंको पाकर तथा अंतमें समस्त कर्मोंको नष्ट कर देनेके कारण सुखकी खानि ऐसे मोक्षमें अवश्य ही जा विराजमान होता है ॥ १९४ ॥

यह भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा नरकरूपी घरको बंद करनेके लिये अर्गल है, गुणोंकी खानि है, स्वर्गमें चढ़नेके लिये सीढ़ी है, अपरिमित सुखकी खानि है, अत्यंत निर्मल है, दुःखरूपी महासागरसे पार कर देनेवाली है, अशुभ वा पापरूपी ईंधनको जलानेके लिये अग्निके समान है, धर्मको देनेवाली है और श्री तीर्थंकर प्रकृतिका बंध करनेवाली है इसलिये हे बुद्धिमानों ! इस संसारमें भगवान तीर्थंकर परमदेवकी पूजा प्रतिदिन करो ॥ १९५ ॥

इसप्रकार आचार्य श्रीसकलकीर्ति विरचित प्रश्नोत्तर श्रावकाचारमें चारों दानोंमें प्रसिद्ध होनेवाले श्रीषेण, वृषभसेना, कौंडेश और शूकरोंकी कथाको तथा भगवानकी पूजामें प्रसिद्ध होनेवाले मेंढ़ककी कथाको कहनेवाला यह इक्कीसवां सर्ग समाप्त हुआ ।

बाइसवां सर्ग ।

जो नेमिनाथ भगवान् जगत्पूज्य हैं, इच्छानुसार फल देनेवाले हैं, कामदेवको नष्ट करनेवाले हैं, समस्त इंद्रियरूपी हाथियोंकी सेनाको वश करनेके लिये सिंह हैं और महा बलवान हैं ऐसे श्री नेमिनाथस्वामीको मैं नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥

मोक्ष प्राप्त करनेके लिये बारह व्रतोंका निरूपण कर अब मोक्ष प्राप्त होने पर्यन्त सुख देनेवाली सल्लेखनाको कहते हैं ॥ २ ॥ अत्यंत बुढापा आ जानेपर दृष्टि, इंद्रिय आदि सब शिथिल हो जानेपर, शरीरकी शक्ति छूट जानेपर, व्रतोंके भंग होनेके कारण उपस्थित हो जानेपर, धर्मके नाश हो जानेपर, जिसका कोई उपाय नहीं होसकता ऐसे महारोगके हो जानेपर, तिर्यञ्च वा मनुष्योंसे होनेवाले महाघोर उपसर्ग होनेपर और महादुर्भिक्षके पडनेपर उत्तम पुरुषोंको धर्मपालन करने और समाधि धारण करनेके लिये स्वर्गमोक्षके सुख देनेवाली सल्लेखना अवश्य धारण करनी चाहिये ॥ ३–५ ॥

जो मुनि जीवनपर्यन्त घोर तपश्चरण करते हैं वे जब प्राण छूटनेके समय सल्लेखना धारण करते हैं तभी उनका वह तप सफल होता है ॥ ६ ॥ जो गृहस्थ समस्त व्रतोंको पालन कर अन्तमें समाधिमरण धारण करता है उसीके सब प्रकारके सुख देनेवाले व्रत सफल कहे जाते हैं ॥ ७ ॥

कदाचित् सर्प आदिके काट लेनेसे अथवा किसी भारी उपसर्गके आ जानेपर असमयमें ही मृत्यु आ जाय और वह सन्देहरूपमें हो अर्थात् जिसमें जीने मरने दोनोंका सन्देह हो तो उससमय इसप्रकार समाधिमरण धारण करना चाहिये कि यदि इस घोर परीषहसे इसी समय मेरी मृत्यु हो गई तो मेरे चारों प्रकारके आहारके त्यागका नियम है। यदि मैं किसी प्रकार जीवित हो गया तो फिर भोजन करूँगा ॥ ८–१० ॥ अथवा अपने आए हुए मरणका निश्चय कर हे भव्य ! तू विधिपूर्वक इस समाधिमरणको धारण कर ॥ ११ ॥

हे मित्र ! तू स्त्री मित्र आदिकोंमें होनेवाले प्रेम, स्नेह, मोहको सर्वथा छोड़ दे तथा आत्माको शुद्ध करनेके लिये धन धान्य और

शरीरादिकमें होनेवाले ममत्वका सर्वथा त्याग कर दें ॥ १२ ॥ हे भव्य ! विधिपूर्वक समाधिमरण धारण करनेके लिये रोग आदिके हो जानेपर दूसरी जगह भी वैर, द्वेष और कलुषता आदि समस्त शत्रुओंके समुदायका त्याग कर देना चाहिये ॥ १३ ॥

समाधिमरण धारण करनेमें तत्पर होनेवाले और शुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाले धीरवीर आराधकको कोमल वचनोंके द्वारा मन वचन कायसे अपने सब कुटुम्बियोंसे, स्त्रीसे, पुत्रादिकोंसे, सेवकोंसे तथा पहिलेसे वैरभाव रखनेवाले महा शत्रुओंसे क्षमा करानी चाहिये और सबको स्वयं क्षमा कर देना चाहिये ॥ १४–१५ ॥

इसीप्रकार हे भव्य ! समाधिमरण धारण करते समय जो पाप कृत कारित अनुमोदनासे किये हैं, जो पाप जीवनपर्यन्त होनेवाले घरके व्यापारसे हुए हैं, जो पाप मिथ्यात्व, अविरत, कषाय, प्रमाद और योगोंसे हुए हैं, जो बुरी संगतिसे, विषयोंसे वा अन्य कारणोंसे हुए हैं उन सब पापोंको नाश करनेके लिये आचार्यके समीप दश दोषोंसे रहित होकर स्वयं आलोचना कर ॥ १६–१८ ॥

आकँपित, अनुमानित, दृष्ट, बादर, सूक्ष्म, छन्न, शब्दाकुलित, बहुजन, अव्यक्त और तत्सेवित ये दश दोष उत्पन्न करनेवाले आलोचनाके दोष गिने *जाते हैं ॥ १९–२० ॥ जो इन सब

---

* यदि कुछ उपकरण देकर दोष कहूँगा तो कम प्रायश्चित्त मिलेगा ऐसा विचारना आकम्पित दोष है। मैं रोगी हूँ, दुर्बल हूँ, मुझे थोड़ा प्रायश्चित्त दिया जायगा तो मैं सब दोष कह दूँगा ऐसा कहना अनुमानित दोष है। केवल देखे हुए दोषोंको कहना दृष्ट दोष है। केवल बड़े दोष कहना छोटे छिपा लेना बादर दोष है, केवल छोटे दोष कहना बड़े छिपा लेना सूक्ष्म दोष है, ऐसा अतिचार

दोषोंका त्यागकर आचार्य निकट बालकके समान (बिना किसी छल कपटके) आलोचना करता है उसकी आलोचनामें कोई दोष नहीं लग सकता ॥ २१ ॥

यही समझकर हे भव्य ! पापोंको नाश करनेके लिये और आत्माको शुद्ध करनेके लिये तू मनको शुद्ध कर गुरुके समीप आलोचना कर ॥ २२ ॥ तदनंतर मोक्ष प्राप्त करनेके लिये समस्त परिग्रहोंका त्याग कर समस्त महाव्रत धारण करने चाहिये ॥ २३ ॥

हे धीरवीर तू मनके समस्त संकल्प विकल्पोंको छोड़कर शरीरादिकमें तथा भाई, बंधु आदि कुटुम्बी लोगोंमें निममता (ममताके त्याग करनेका) चिंतवन कर ! अर्थात् ममताका त्याग कर ॥२४॥ तदनन्तर तू शोक, भय, स्नेह, कलुषता, अरति, रति, मोह, विषाद और रागद्वेष आदिको स्वयं छोड़ ॥ २५ ॥ ये संसार, देह, भोग, नरक और तिर्यञ्च गतिके दुःख देनेवाले हैं और सब प्रकारके दुःखोंके घर हैं इसलिये हे भव्य ! तू इनमें वैराग्य धारण कर ॥ २६ ॥

लगनेपर क्या प्रायश्चित्त होगा इस उपायसे पूछना छन्न दोष है। वार्षिक, मासिक वा पाक्षिक आलोचनाके होते हुए तथा उनके ऊँचे शब्द होनेपर पहिलेके दोष कहना (जो सुनाई न पड़े) शब्दाकुलित दोष है। गुरुने जो प्रायश्चित्त दिया है वह ठीक है वा नहीं, शास्त्रानुकूल है या नहीं इसप्रकार थोड़ा प्रायश्चित्त लेनेके अभिप्रायसे अनेक लोगोंसे पूछना बहुजन दोष है। अपना कुछ भी प्रयोजन विचार कर अपने समानवाले किसी मुनिसे अपना दोष कहना अव्यक्त दोष है। किसीके द्वारा किसी अपराधके कहने और प्रायश्चित्त बतलानेपर ठीक ऐसा ही मेरा अपराध है, मुझे भी यही प्रायश्चित्त कर लेना चाहिये इसप्रकारके दोषको तत्सेवित दोष कहते हैं।

हे मित्र ! तू अपने आत्माकी सिद्धिके लिये अपना उत्साह प्रगट कर और अपनी शक्तिको प्रगट कर सुख देनेवाले वारह प्रकारके घोर तपश्चरणको धारण कर ॥ २७ ॥

इसी प्रकार सिद्धांत ग्रंथोंका अमृत पान कर तथा महा आराधना ग्रन्थोंको पढ़कर तू अपना मन अत्यन्त शांत कर ॥ २८ ॥ बुद्धिमानोंको अवमोदर्य तपश्चरणके द्वारा अपना आहार प्रतिदिन थोडा थोडा घटाना चाहिये और इसप्रकार अनुक्रमसे थोडा थोडा घटाते घटाते समस्त आहारका त्याग कर देना चाहिये ॥ २९ ॥

आराधकको इसप्रकार समस्त आहारका त्यागकर दूधका सेवन करना चाहिये और फिर समाधि धारण करनेके लिये दूधका भी त्याग कर तक्र वा छाछका सेवन करना चाहिये ॥ ३० ॥ फिर ध्यानकी सिद्धिके लिये अनुक्रमसे छाछका भी त्याग कर गर्म जल लेना चाहिये और फिर गर्म जलका भी त्यागकर केवल शुभ उपवास करना चाहिये ॥ ३१ ॥ समस्त सिद्धांतशास्त्रोंके पारगामी निर्यापक (समाधिमरण करानेवाले) महाचार्यको निवेदन कर उनकी आज्ञानुसार जन्मपर्यन्ततकके लिये उपवास धारण करना चाहिये और उसका निर्वाह बड़े प्रयत्नसे करना चाहिये ॥ ३२ ॥ समाधिमरण धारण करनेवाले आराधकको मोक्ष प्राप्त करनेके लिये अन्तसमयमें एकचित्त होकर पांचों परमेष्ठियोंके नामको प्रगट करनेवाले मन्त्रोंका जप करना चाहिये ॥ ३३ ॥

यदि उसका शरीर क्षीण होगया हो और वह पांचों परमेष्ठियोंके वाचक मन्त्रोंका जप करनेमें असमर्थ हो तो उसे श्री तीर्थङ्करके वाचक "णमो अरहंताणं" इस एक पदका ही जप करना चाहिये ॥ ३४ ॥ यदि वह अत्यन्त क्षीण हो गया हो और उस मंत्रको

वचनसे न जप सकता हो तो उसे अपने स्वभावसे ही जीवन पर्यन्त अपने मनमें ही उन मंत्रोंका जप करना चाहिये ॥ ३५ ॥

यदि सन्यास धारण करनेवालेका कण्ठ सर्वथा क्षीण हो गया हो और वह अपने मनमें भी उन मन्त्रोंका जप न कर सकता हो तो फिर उसकी उत्तरसाधना करनेवाले वैयावृत्य करनेवाले अन्य लोगोंको प्रतिदिन उसके कानमें मंत्रराजका (पंचनमस्कारमंत्रका) जप करना चाहिये अर्थात् उसके कानमें सुनाना चाहिये ॥ ३६ ॥

इसप्रकार विवेकी आराधकको मोक्ष प्राप्त करनेके लिये समाधि-मरण धारण कर और अन्तमें जिन मुद्रा धारण कर बड़े प्रयत्नके साथ प्राणोंका त्याग करना चाहिये ॥ ३७ ॥ यदि समाधिमरण धारण करनेवाला उत्तम विद्वान् चरमशरीरी हुआ तो वह आठों कर्मोंको नाश कर अनन्त सुख देनेवाले मोक्षमें अवश्य ही जा विराजमान होगा ॥ ३८ ॥

यदि समाधिमरण धारण करनेवाला चरमशरीरी नहीं है तो वह उस शरीरको तथा पापकर्मोंको नष्ट कर और महा पुण्य उपार्जन कर सर्वार्थसिद्धिमें जा विराजमान होता है ॥ ३९ ॥ इस समाधिमरणको धारण करनेसे कितने ही विद्वान् ग्रैवेयकोंमें जन्म लेते हैं, और कितने ही विद्वान् धर्म और सुखकी खानि ऐसे परमोत्तम सोलहवें स्वर्गमें उत्पन्न होते हैं ॥ ४० ॥ विधि-पूर्वक समाधिमरण धारण करनेसे कितने ही लोग सुखके घर और अनेक प्रकारके भोगोपभोगोंकी सामग्रियोंसे भरे हुए ऐसे सौधर्म स्वर्गसे लेकर अच्युतस्वर्गतक किसी भी स्वर्गमें उत्पन्न होते हैं ॥४१॥

कितने ही उत्तम पुरुष इस समाधिमरणसे प्राणोंको छोड़कर और इन्द्रका उत्तम पद पाकर पीछे मोक्षमें जा विराजमान होते हैं

॥४ ॥ कितने ही सम्यग्दृष्टी पुरुष इस समाधिमरणके प्रभावसे स्वर्गके महा सुखोंका उपभोग कर अन्तमें तीर्थंकरके परम पदको प्राप्त होते हैं ॥ ४३ ॥ धर्मात्मा पुरुष इस समाधिमरणके प्रभावसे ही स्वर्गके सुख भोगकर चक्रवर्तीकी विभूतिको पाते हैं ॥ ४४ ॥

जो विद्वान् इस समाधिमरणको जघन्य रीतिसे धारण करते हैं वे देव और मनुष्योंके सुख भोगकर सात आठ भवमें मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं ॥४५॥ बहुत कहनेसे क्या ? थोड़ेसमें इतना समझ लेना चाहिये कि मनुष्योंको इस समाधिमरणके समान कल्याण करनेवाला धर्म तीनों कालमें नहीं हो सकता ॥ ४६ ॥ इसप्रकार जो श्रावक मरनेके समय अतिचार रहित समाधिमरण धारण करता है, संसारमें उसीके व्रत सफल होते हैं ॥ ४७ ॥

प्रश्न—हे भगवन् ! धर्म पालन करनेके लिये और समाधिमरणको शुद्धतापूर्वक धारण करनेके लिये कृपाकर समाधिमरणके उन अतिचारोंका निरूपण कीजिये ॥ ४८ ॥

उत्तर—हे विद्वन् ! तू चित्त लगाकर सुन, मैं समाधिमरणको विशुद्ध रखनेके लिये उस समाधिमरणरूपी धर्ममें दोष लगानेवाले समाधिमरणके अतिचारोंको कहता हूँ ॥ ४९ ॥ जीविताशंसा, मरणेच्छा, भय, मित्रस्मृति और निदान ये पांच समाधिमरणके अतिचार गिने जाते हैं ॥ ५० ॥

जो समाधिमरण धारण करके भी अपने जीवित रहनेकी इच्छा रखता है उसके सल्लेखना व्रतमें जीविताशंसा नामका पहिला अतिचार लगता है ॥५१॥ जो उपवास धारण करके रोग, क्लेश वा परीषहोंके कारण शीघ्र ही अपने मरनेकी इच्छा करता है उसके मरणाशंसा नामका अतिचार लगता है ॥ ५२ ॥ जो इसलोक तथा परलोकके

सम्बन्धी तीव्र भय करता है उसके सन्यासमें मल उत्पन्न करनेवाला भय नामका अतिचार लगता है ॥ ५३ ॥

जो मोहके कारण अपने मित्रोंका बालकपनके खेल कूदोंका स्मरण करता है उसके मित्रानुराग नामका अशुभ अतिचार लगता है ॥५४॥ जो पुरुष भोगोपभोगोंके कारणोंकी इच्छा करता है, आगेके लिये स्वर्गादिक राज्य चाहता है और इसप्रकार निदान करता है उसके अत्यंत पाप उत्पन्न करनेवाला निदान नामका अतिचार लगता है ॥ ५५ ॥

जो बुद्धिमान गृहस्थ पांचों अतिचारोंको छोड़कर समाधिमरण धारण करता है उसको मुनिके समान फल मिलता है ॥ ५६ ॥ यह समाधिमरण समस्त गुणोंका निदान है, स्वर्ग मोक्षका एक अद्वितीय कारण है, जिनराज और गणधरदेव भी इसकी प्रशंसा करते हैं, यह पापरूपी वृक्षको काटनेके लिये कुठार है, समस्त इंद्रियोंको वश करनेके लिये जाल है, व्रतोंसे परिपूर्ण है और पुण्यसे भरपूर है, इसलिये हे भव्य ! तू भी मरनेके समय होनेवाला समाधिमरण अवश्य धारण कर ॥ ५७ ॥ यहांतक व्रत प्रतिमाका निरूपण किया।

जो बुद्धिमान् प्रातःकाल, मध्यान्हकाल और सायंकाल तीनों समय नियम पूर्वक सदा सामायिक करता है उसके तीसरी सामायिक प्रतिमा कही जाती है ॥ ५८ ॥ सामायिकका लक्षण, उसकी विधि आदि सब हमने पहिले सामायिक नामके शिक्षाव्रतमें निरूपण किया है अतएव दुबारा कथन होजानेके कारण यहां नहीं कहा ॥ ५९ ॥ तीसरी प्रतिमा धारण करनेवाले बुद्धिमानोंको आवर्त नमस्कार आदि सहित सामायिकका स्वरूप वहांसे जान लेना चाहिये ॥ ६० ॥

जो गृहस्थ अष्टमी और चतुर्दशीके दिन प्रत्येक महीनेके चारों

पर्वोंमें प्रोषधोपवास करता है और प्राण नष्ट होनेपर भी उसको नहीं छोड़ता उसके चौथी प्रोषधोपवास प्रतिमा समझना चाहिये ॥ ६१ ॥ इस प्रोषधोपवासका स्वरूप पहिले प्रोषधोपवास नामके शिक्षाव्रतमें कह चुके हैं, अब पुनरुक्त दोषके कारण और विस्तार होनेके डरसे यहां नहीं कहते हैं ॥ ६२ ॥ चौथी प्रतिमा धारण करनेवाले गृहस्थोंको जिसमें समस्त पापोंका त्याग किया जाता है ऐसे इस प्रोषधोपवासकी विधि लक्षण कर्तव्य आदि सब वहींसे जान लेना चाहिये ॥ ६३ ॥

सचित्तविरत नामकी पांचवीं प्रतिमा धारण करनेवाले बुद्धिमान् गृहस्थोंको आम, नारंगी, खजूर, केला आदि सब प्रकारके फल, नींब आदिक फूल, गेहूँ, तिल, चावल, मूग, चना, इलायची, जीरा आदि जिनमें अलग जीव रहनेकी सम्भावना है, अदरक आदि कन्द वृक्षोंकी जड़ मूली, गीली छाल, पत्तियां, शाखा, कोंपल और अनंत जीवोंसे भरे हुए नागरवेलके पान आदि सब प्रकारके सचित्त पदार्थोंका त्याग कर देना चाहिये ॥ ६४–६७ ॥

सचित्तविरत नामकी पांचवीं प्रतिमा धारण करनेवाले धीरवीर पुरुषोंको अपनी पांचवीं प्रतिमाका पालन करनेके लिये जो पदार्थ अग्निपर पकाये हुए नहीं हैं, अथवा जिनमें किसी प्रकारका भी चेतना गुण है ऐसे सचित्त पदार्थोंका अवश्य त्यागकर देना चाहिये ॥ ६८ ॥ पांचवीं प्रतिमा धारण करनेवाले गृहस्थोंको जिसका निजका वर्ण वा रंग बदला नहीं है, न जिसका स्पर्श बदला है, ऐसे अप्रासुक और विना गर्म किये हुए जलका त्याग कर देना चाहिये ॥ ६९ ॥

पांचवीं प्रतिमा धारण करनेवाले गृहस्थोंको लोंग, काली मिरच आदि द्रव्योंके सम्बन्धसे जिसके निजका वर्ण बदल गया है अथवा जो अग्निसे गर्म कर लिया गया है ऐसा जल आंखोंसे परीक्षा कर

ग्रहण करना चाहिये ॥ ७० ॥ जो गृहस्थ विना पके हुए अथवा आधे पके हुए सचित्त कन्द, बीज, फल आदिको ग्रहण नहीं करता है उसके सचित्तविरत नामकी पांचवीं प्रतिमा होती है ॥ ७१ ॥

जो बुद्धिमान् सब तरहके प्राणियोंसे भरे हुए सचित्त पदार्थोंको नहीं खाता वह दयाकी मूर्ति समझा जाता है और संसारमें उसीका जन्म सफल गिना जाता है ॥७२॥ जो दुष्ट अपनी जिह्वाकी लंपटताके कारण जीव सहित सचित्त पदार्थोंको जानकर भी खाता है वह क्या अपनेको अमर समझता ! है ॥ ७३ ॥ जो समस्त सचित्त पदार्थोंको खाता है उसका मन निर्दय होजाता है और मनके निर्दय होनेसे नरकको ले जानेवाला पाप उत्पन्न होता है ॥ ७४ ॥

यही समझकर पापोंसे डरनेवाले चतुर पुरुषोंको प्राण नाश होनेपर भी महापाप उत्पन्न करनेवाले और अनेक जीवोंका घात करनेवाले सचित्त पदार्थ कभी ग्रहण नहीं करने चाहिये ॥ ७५ ॥ हे भव्य ! इन सचित्त पदार्थोंका ग्रहण करना समस्त पापोंकी खानि है, नरकमें पहुँचानेके लिये चतुर है, दुष्ट पुरुष ही इसका ग्रहण करते हैं, इसमें अनेक जीव रहते हैं, यह विषयसुखोंको उत्पन्न करनेवाला है और धीरवीर धर्मका शत्रु है इसलिये हे भव्य ! स्वर्ग मोक्षादिको सिद्ध करनेके लिये तू विषके समान इन सचित्त पदार्थोंका त्यागकर ॥७६॥

जो बुद्धिमान् रात्रिमें अन्न, पान, खाद्य, स्वाद्य आदि चारों प्रकारके आहार पानीका त्याग कर देता है उसके रात्रिभोजन त्याग नामकी छठी प्रतिमा होती है ॥ ७७ ॥ रात्रिमें मनुष्योंकी थालियोंमें डांस, मच्छर, पतंगे आदि छोटे छोटे अनेक जीव आ पड़ते हैं ॥७८॥ रात्रिमें यदि दीपक न जलाया जाय तो स्थूल जीव भी दिखाई नही पड सकते। यदि दीपक जला लिया जाय तो उसके प्रकाशसे थाली आदिमें और अनेक जीव आ जाते हैं ॥ ७९ ॥

भोजन पकते समय भी उस अन्नकी वायु चारों ओर फैलती है इसलिये उस वायुके कारण उन पात्रोंमें अनन्त जीव आ आकर पड़ते हैं ॥ ८० ॥ पापोंसे डरनेवाले मनुष्योंको ऊपर लिखे हुए अनेक दोषोंसे भरे हुए रात्रिभोजनको विष मिले हुए अन्नके समान सदाके लिये अवश्य त्याग कर देना चाहिये ॥ ८१ ॥

चतुर पुरुषोंको लड्डू, पेडा, बरफी, आदि खानेकी चीजें वा नारियलका दूध, फल आदि कोई भी पदार्थ ग्रहण नहीं करना चाहिये ॥ ८२ ॥ जो पुरुष रात्रिमें पेडा, बरफी आदि स्वाद्य पदार्थोंको खाते हैं–अन्नके पदार्थ नहीं खाते, वे भी पापी हैं, क्योंकि अन्न व स्वाद्य पदार्थोंमें कोई भेद नहीं है ॥ ८३ ॥

चतुरपुरुषोंको रात्रिमें सुपारी, जावित्री आदि भी नहीं खानी चाहिये क्योंकि इनमें भी अनेक कीडोंकी संभावना रहती है। इसलिये इनका खाना भी महा पाप उत्पन्न करनेवाला है ॥ ८४ ॥ धीरवीर पुरुषोंको अपना दयाधर्म पालन करनेके लिये प्यास लगनेपर भी अनेक सूक्ष्म जीवोंसे भरे हुए जलको भी रात्रिमें कभी नहीं पीना चाहिये ॥ ८५ ॥

जो विद्वान् रात्रिमें चारों प्रकारका आहार त्याग कर देते हैं उन्हें प्रत्येक महीनेमें पंद्रह दिन उपवास करनेका फल प्राप्त होता है ॥ ८६ ॥ यही समझकर मनुष्योंको धर्मकी सिद्धिके लिये, तपके वा मोक्ष प्राप्त करनेके लिये रात्रिमें चारों प्रकारके आहारका त्याग सदाके लिए कर देना चाहिए ॥ ८७ ॥

जो मनुष्य व्रत पालन करनेके लिए रात्रिमें अन्नपान आदि सब प्रकारके आहारका त्याग कर देता है उसके आत्माको शुद्ध करने– वाला अपार पुण्य होता है ॥ ८८ ॥ रात्रिमें आहारका त्याग कर

देनेसे इंद्रियां सब वशीभूत हो जाती और इंद्रियोंके वशीभूत होनेसे जीवोंके वात पित्त आदिसे उत्पन्न हुए सब रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ८९ ॥

जो गृहस्थ रात्रिमें स्वयं पानी तकका भी त्याग कर देते हैं उनके लिए तीनों लोकोंमें रहनेवाली लक्ष्मी अपने आप आजाती है ॥ ९० ॥ रात्रिभोजनका त्याग करनेसे प्राणियोंके रोग सब नष्ट हो जाते हैं, उनके शरीरमें लावण्यता आ जाती है, अनेक गुण आ जाते हैं और वे सब तरहसे सुन्दर हो जाते हैं ॥ ९१ ॥

रात्रिभोजनका त्याग करनेसे जीवोंको अनेक भोगोपभोगोंसे भरे हुए और अपरिमित सुखसे भरे हुए राज्यकी प्राप्ति होती है इसमें कोई संदेह नहीं ॥ ९२ ॥ रात्रिमें आहार पानीका त्याग कर देनेसे जीवोंको स्वर्गके देवोंकी विभूतियोंसे सुशोभित निरूपम सुखकी प्राप्ति होती है ॥ ९३ ॥

जो अज्ञानी सदा रात्रिमें भोजन करते रहते हैं उनके इसलोकमें भी कोढ़ वा वायु आदिके अनेक प्रकारके महा रोग उत्पन्न होते हैं ॥ ९४ ॥ रात्रिमें भोजन करनेवाले मनुष्योंकी लक्ष्मी सब भग जाती है और महा दुःख देनेवाली घोर दरिद्रता उनके सामने आ उपस्थित होती है ॥ ९५ ॥

जो मनुष्य जिह्वाके स्वादसे लंपटी होकर रात्रिमें भोजन करते हैं उनके महा पाप उत्पन्न होता है और वे अगले जन्ममें नरकमें ही जाकर पड़ते हैं ॥ ९६ ॥ रात्रिभोजनमें लालसा रखनेवाले मनुष्य मरकर परलोकमें गीदड़, कुत्ता, बिल्ली, बैल आदि नीच गतियोंमें जाकर उत्पन्न होते हैं ॥ ९७ ॥ रात्रिभोजनके पापसे यह मनुष्य परलोकमें भील, चांडाल, वहेलिया आदिके नीच कुलोंमें महा दरिद्री उत्पन्न होता है ॥ ९८ ॥

रात्रिमें भोजन करनेके पापसे अनेक दोषोंसे परिपूर्ण, पाप उत्पन्न करनेवाली, मलिन, रागद्वेषसे अन्धी, शीलरहित, कुरूपिणी और दुःख देनेवाली स्त्री मिलती है ॥ ९९ ॥ रात्रिभक्षण करनेसे इस मनुष्यको पुत्र अनेक बुरे व्यसनोंसे रंगे हुए मिलते हैं, पुत्रियां शीलरहित मिलती हैं और भाई बन्धु आदि शत्रुओंके समान दुःखदाई मिलते हैं ॥ १०० ॥

यह जीव रात्रिभोजनके पापसे भवभवमें अन्धा, बौना, कुब्जा, दरिद्री, कुरूप, बदसूरत, लंगड़ा, कुशीली अनेक बुरे व्यसनोंका सेवन करनेवाला, दुःखी, डरपोंक, अपनी ही अपकीर्ति फैलानेवाला, थोड़ी आयुवाला पापी, कुजन्मा, अङ्ग भङ्ग शरीरवाला, दुर्गतियोंमें जानेवाला, कुमार्गगामी और अत्यन्त निंद्य होता है ॥ १०१–१०३ ॥

बहुत कहनेसे क्या! थोडेसेमें इतना समझ लेना चाहिये कि संसारमें जो कुछ दुःख हैं वे सब मनुष्योंको रात्रिभोजनके पापसे ही, उत्पन्न होते हैं ॥ १०४ ॥ जो मूर्ख रात्रिमें भी आहार पानी नहीं छोडते वे आठों पहर भक्षण करनेके कारण पशु ही समझे जाते हैं ॥ ॥ १०५ ॥ रात्रिभोजनमें सदा तत्पर रहनेवाले मनुष्य कीडे, मकोडे, पतंगे आदि अनेक सूक्ष्म जीवोंका भक्षण कर जाते हैं इसलिये वे मांस भक्षियोंके ही सम न गिने जाते हैं ॥ १०६ ॥

जो अज्ञानी मनुष्य पान सुपारी आदि भी रात्रिमें खाते हैं वे भी उसके साथ अनेक कीड़े मकोड़ेका भक्षण कर जाते हैं इसलिये मांस त्यागका नियम उनके भी नहीं निभ सकता ॥ १०७ ॥ जो मनुष्य आंखसे दिखाई देनेवाले अनेक कीडोंसे भरे हुए जलको रात्रिमें पीते हैं वे अन्य पापोंके समान अहिंसाव्रतको किसप्रकार पालन कर सकते हैं अर्थात् जैसे अन्य पापोंमें अहिंसाव्रत नहीं पल सकता उसी प्रकार रात्रिभोजनमें भी अहिंसा व्रत नहीं पल सकता ॥१०८॥

चतुर पुरुषोंको स्वर्ग मोक्ष प्राप्त करनेके लिये अनेक जीवोंकी हिंसा करनेवाला, महा पाप उत्पन्न करनेवाला और महा पापरूप ऐसे चारों प्रकारके आहारका रात्रिभोजन अवश्य छोड देना चाहिये ॥१०९॥ संसारमें एकवार प्राणोंको नाश करनेवाला हलाहल विष खालेना अच्छा, परन्तु अनेक भवोंतक दुख देनेवाला रात्रिभोजन करना अच्छा नहीं ॥ ११० ॥ यही समझकर विद्वानोंको प्राणोंके वियोग होनेका समय आनेपर भी अभक्ष्यके समान रात्रिमें सब प्रकारके आहारका त्याग सदाके लिए कर देना चाहिये ॥ १११ ॥

पापोंसे डरनेवाले गृहस्थोंको मन वचन कायसे रात्रिमें किसी भूखेको भी पाप उत्पन्न करनेवाला भोजन नहीं देना चाहिये ॥११२॥ जो मनुष्य मन वचन कायसे व कृत कारित अनुमोदनासे रात्रिभोजन नहीं करता उसके यह रात्रिभोजन त्याग नामका व्रत निर्मल रीतिसे पालन होता है ॥ ११३ ॥

हे मित्र ! यह रात्रिभोजन त्याग नामका व्रत नरकरूपी घरको बन्द करनेके लिये किवाड है, स्वर्गरूपी घरके लिये मुख्य मार्ग है, समस्त सज्जन इसका पालन करते हैं, समस्त श्रेष्ठ व्रतोंकी जड़ है, पाप रहित है, आत्माको सुख देनेवाला है और धर्मरत्नकी खानि मित्र ! ऐसे इस रात्रिभोजनका त्याग नामके व्रतको तू सदा पालन कर ॥ ११४ ॥ जा इन पहिली छह प्रतिमाओंका पालन करता है वह जघन्य श्रावक कहलाता है और इन्द्रके द्वारा भी पूज्य होता है ऐसा श्री जिनेन्द्रदेवने कहा है ॥ ११५ ॥

इसप्रकार आचार्य श्री सकलकीर्तिविरचित प्रश्नोत्तर श्रावकाचारमें
सल्लेखना, सामायिक, प्रोषधोपवास सचित्तत्याग और
रात्रिभोजनत्याग प्रतिमाओंको निरूपण करनेवाला
यह बाइसवां सर्ग समाप्त हुआ

तेईसवाँ सर्ग ।

जो पार्श्वनाथ भगवान् देवोंके द्वारा पूज्य हैं, शिष्योंको अपने समीप ही स्थान देनेवाले हैं, और जिनके समीपका निवास अनन्त सुख देनेवाला है ऐसे श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकर परम देवको मैं उनके समीप पहुंचनेके लिये नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥

अब मैं मोक्ष प्राप्त करनेके लिये तीनों लोकोंमें पूज्य और कातर जीवोंके लिये अत्यन्त कठिन ऐसी ब्रह्मचर्य प्रतिमाको कहता हूं ॥ २ ॥ जो मनुष्य मनके सब राग भावोंको छोड़कर छोटी कन्या-ओंको अपनी पुत्रीके समान देखता हैं, रूप लावण्यसे सुशोभित यौवनवती स्त्रियोंको अपनी बहिनके समान देखता है और अत्यन्त गुणवती वृद्ध स्त्रियोंको अपनी माताके समान देखता है वह ब्रह्मचारी कहलाता है ॥ ३—४ ॥

देखो, स्त्रियोंका मुंह कफसे भरा हुआ है, चमड़ेसे मढ़ा हुआ हड्डियोंका समूह है, सब बुरी चीजोंका आधार है, दुर्गंधमय है और कुटिल है ॥ ५ ॥ स्त्रियोंके स्तन मांसके पिण्ड हैं, नेत्रोंको लोभ उत्पन्न करनेवाले हैं और नरककी सीढी है, पेट विष्ठा व अनेक प्रकारके कीड़ोंसे भरा हुआ है ॥ ६ ॥

स्त्रियोंका जघनस्थल अत्यन्त घृणाजनक है, निंद्य है, मूत्रादिक मल सदा उससे बहता है, अत्यन्त दुर्गंध सहित है और घोर नरक कूपके समान अशुभ है ॥ ७ ॥ पवित्र ब्रह्मचर्यमें तत्पर रहनेवाले मनुष्योंको अपने हृदयमें स्त्रियोंका स्वरूप इसप्रकार चितवन करना चाहिये । यह स्त्रियोंका रूप केवल बाहरसे ही सुन्दर दिखता है ॥८॥

स्त्रियोंका स्वरूप इसीप्रकारका है, वह केवल ऊपरसे चमड़ेसे ढका हुआ है, जो पुरुष ऐसी स्त्रियोंका त्याग करता है उसके निर्मल

ब्रह्मचर्य होता है ॥९॥ जो पुरुष ब्रह्मचर्यका पालन नहीं करते उनके अत्यन्त दुःख देनेवाले कास श्वास, कम्प, वायु आदि अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १० ॥

स्त्रीसेवनसे कभी तृप्ति नहीं होती, प्राप्त होनेपर यह अत्यंत नीरस होता है, अत्यन्त अपवित्र है, अपवित्रता करनेवाला है, निंद्य है, निंद्य क्रियासे उत्पन्न होता है, अशुद्ध स्थानोंसे उत्पन्न होता है, भयानक है, तीव्र दुःख उत्पन्न करनेवाला है, महा मुनिराज दूरसे ही इसका त्याग कर देते हैं, यह सर्पके घरके समान है, रात्रिमें नीच लोगोंके द्वारा सेवन किया जाता है, गधा आदि नीच पशु सदा इसका सेवन करते हैं अथवा दुष्ट मूर्ख इसे अमृत समझकर इसका आदर करते हैं, यह स्त्रियोंके शरीरके संघट्टनसे उत्पन्न होता है, नरक तिर्यंच आदि कुगतियोंको देनेवाला है, दाह कम्प आदि अनेक रोगोंको उत्पन्न करनेवाला है. पापकी जड़ है, अत्यन्त घृणित है, और अनेक दोषोंसे भरपूर है! ब्रह्मचारियोंको अपने निर्दोष ब्रह्मचर्यको पालन करनेके लिये इस स्त्रीसेवनका सदा इसीप्रकार चिंतवन करते रहना चाहिये ॥ ११-१५ ॥

स्त्रियोंका शरीर स्वभावसे ही निंद्य है, अनेक जन्तुओंसे भरा हुआ है और अनेक जीवोंका उत्पन्न होनेका स्थान है, ऐसे अपवित्र और अशुद्ध स्त्रियोंके शरीरमें भला कौन ज्ञानी प्रेम करेगा? ॥ १६ ॥ स्त्रियोंकी योनिमें, स्तनोंमें, कांखोंमें अत्यन्त सूक्ष्म मनुष्य सदा उत्पन्न होते रहते हैं ॥ १७ ॥ उन जीवोंकी संख्या नौ लाख है और वे सब स्त्रीसेवन करनेसे मर जाते हैं ऐसा श्री जिनेन्द्रदेवने अपने केवलज्ञान रूपी नेत्रोंसे देखकर बतलाया है ॥ १८ ॥

जिसप्रकार कपास वा रुईसे भरी हुई नाली अग्निके संयोगसे जल

जाती है उसीप्रकार स्त्री सेवन करनेसे योनिके सब जीव मर जाते हैं ॥ १९ ॥ स्त्री सेवन करनेसे अनेक जीवोंका घात होता है और नरकमें पहुंचानेवाला महा राग उत्पन्न होता है इसलिये मनुष्योंको स्त्री सेवन करनेसे महापाप उत्पन्न होता है ॥ २० ॥

मनुष्योंको हलाहल विष खा लेना अच्छा, परन्तु स्त्री सेवन करना अच्छा नहीं, क्योंकि हलाहल विष खानेसे एक भवमें ही मृत्यु होगी परंतु स्त्री सेवन करनेसे असंख्यात भवोंमें महा दुःख प्राप्त होगा ॥ २१ ॥ फण निकाले हुए क्रोधित हुई सर्पिणीका आलिंगन कर लेना अच्छा परंतु महा दुःख देनेवाली और नरकरूपी घरकी देहलीके समान स्त्रीका आलिंगन करना अच्छा नहीं ॥ २२ ॥

जिस प्रकार सर्पिणीकी दुःख देनेवाली संगति अच्छी नहीं, उसीप्रकार ब्रह्मचारियोंको कुछ नहीं तो कलंक लगनेकी शंकासे ही स्त्रियोंकी संगतिका त्याग कर देना चाहिये ॥ २३ ॥ सांप, वाघ, शत्रु व चोर आदिकोंके साथ रहना तो अच्छा परन्तु स्त्रियोंके समीप क्षणभर भी रहना अच्छा नहीं क्योंकि स्त्रियोंके साथ रहनेमें क्षणभरमें ही कलंक लगनेकी शंका रहती है ॥ २४ ॥

जिस मकानमें स्त्रियोंके चित्र भी हों उस मकानमें भी व्रतियोंको रहना ठीक नहीं है फिर भला जिनमें स्त्रियां स्वयं रहती हों उनमें तो रहना बहुत ही बुरा है ॥ २५ ॥ व्रतियोंको स्त्रियोंके साथ रहनेमें पहिले अमिट कलंक लगता है, फिर व्रत भँग होता है और फिर नरकगतिमें महा दुःख भोगने पड़ते हैं ॥ २६ ॥

ब्रह्मचर्यको पालन करते हुए उस व्रतके साथ श्रेष्ठ मरण कर-जाना अच्छा परंतु ब्रह्मचर्य व्रतके विना असंख्यात वर्ष भी जीवित रहना अच्छा नहीं ॥ २७ ॥ जो कोई मनुष्य अनेक शास्त्रोंका जान-

कार हो, गुणवान हो और तपश्चरणसे सुशोभित हो परंतु ब्रह्मचर्य पालन न करता हो तो फिर संसारमें उसका कहीं कोई आदर सत्कार नहीं करता ॥ २८ ॥

जिसप्रकार विना दांतोंके हाथी शोभायमान नहीं होता, विना हाथोंके शूरवीर शोभा नहीं देता और विना दानके गृहस्थ शोभा नहीं देता, उसीप्रकार ब्रह्मचर्यके विना व्रती मनुष्य भी शोभा नहीं देता ॥ २९ ॥ जिसप्रकार बुझायी हुयी अग्नि अपमानको प्राप्त होती है, निंद्य समझा जाता है उसीप्रकार संसारमें ब्रह्मचर्यरूपी तेजसे रहित होनेपर व्रती मनुष्य भी सर्वथा निंद्य समझा जाता है ॥ ३० ॥

जो ब्रह्मचर्यसे रहित है वह घरका स्वामी होकर भी अपने ही कुटुम्बीलोगोंसे अपमानित होता है फिर भला वह अन्य लोगोंसे अपमानित क्यों न होगा ? ॥ ३१ ॥ कहीं कहीं पर योगीलोग सर्प, शत्रु और वाघ आदिके साथ रहना अच्छा समझते हैं परंतु पापोंसे डरकर ब्रह्मचर्य व्रतको भंग करनेवालोंके साथ स्वप्नमें भी रहना स्वीकार नहीं करते ॥ ३२ ॥ ब्रह्मचर्यको भंग करनेवाले मनुष्योंको इसलोकमें भी राजाकी ओरसे भी वध बंधन आदिके अनेक दुःख भोगने पडते हैं इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ ३३ ॥

ब्रह्मचर्यको न पालनेवाले महा मूर्ख मनुष्य महा पापके भारसे परलोकमें भी घोर महा दुःखोंसे भरे हुए दुर्गतियोंके दुःख भोगते हैं ॥ ३४ ॥ ब्रह्मचर्यव्रतके साथ साथ एक दिन भी जीवित रहना अच्छा परंतु विना ब्रह्मचर्यके करोडों पूर्वोतक भी जीवित रहना अच्छा नहीं ॥ ३५ ॥ जिस व्रतीने समस्त सुख देनेवाला ब्रह्मचर्यव्रत छोड़ दिया उसने समस्त व्रतोंको छोड़ दिया ही समझना चाहिये क्योंकि विना ब्रह्मचर्यके कोई व्रत हो ही नहीं सकता ॥ ३६ ॥

ब्रह्मचर्यका भंग करनेसे हिंसा होती है, झूठ बोलना पड़ता है और स्त्री आदि पर पदार्थोंकी इच्छा करनी पड़ती है। इसप्रकार उसे सब प्रकारके पाप करने पड़ते हैं ॥ ३७ ॥ जिसप्रकार दिनके विना सूर्य दिखाई नहीं देता उसीप्रकार चतुर पुरुषोंको विना ब्रह्मचर्यके कोई भी व्रत दृष्टिगोचर नहीं होता ॥ ३८ ॥

अन्य सब व्रतोंके विना इस संसारमें एक ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करना सबसे उत्तम है क्योंकि विना ब्रह्मचर्यके मनुष्योंको कोई व्रत हो ही नहीं सकता है ॥ ३९ ॥ यही समझकर धीरवीर पुरुषोंको बड़ी दृढ़ताके साथ शीलव्रत पालन करना चाहिये और दुर्लभ निधिके समान उसे प्राण नाश होनेपर भी नहीं छोड़ना चाहिये ॥ ४० ॥

इस ब्रह्मचर्य व्रतको धीरवीर ज्ञानी व्रतोंके पालन करनेमें सदा तत्पर रहनेवाले मनुष्य ही पालन कर सकते हैं, अन्य कातर मनुष्योंसे यह कभी पालन नहीं हो सकता ॥४१॥ जो शूरवीर मनुष्य बाणोंकी वर्षासे भरे हुए युद्धमें अचल खड़े रहते हैं वे ही शूरवीर स्त्रियोंके कटाक्षोंके युद्धमें कभी नहीं ठहर सकते ॥ ४२ ॥ हाथी, बाघ और शत्रुओंको गिरा देनेवाले बहुतसे शूरवीर देखे जाते हैं परंतु कामदेव-रूपी मल्लको गिरा देनेवाला कोई भी दिखाई नहीं देता। काम मल्लको मारनेवाले केवल उत्तम मुनि ही हैं ॥ ४३ ॥

इस संसारमें ब्रह्मचर्य पालन करनेवालोंको ही ज्ञानसे उत्पन्न होनेवाली, सब पदार्थोंको सिद्ध करनेवाल महाविद्याएं सिद्ध होती हैं इसमें कोई संदेह नहीं है ॥४४॥ संसारमें वे ही मनुष्य धन्य हैं और वे ही मनुष्य तीनों लोकोंमें पूज्य हैं जो बड़ी दृढ़ताके साथ अखंड शीलव्रतका पालन करते हैं और जो स्त्रियोंके द्वारा वा अन्य लोगोंके द्वारा घोर उपसर्ग और परीषहोंके आजाने पर भी स्वप्नमें भी उसे नहीं छोड़ते ॥ ४५ ॥

ब्रह्मचर्य पालन करनेवालोंके चरणकमलोंको इन्द्र आदि समस्त देव भी भक्तिके वशसे नम्र होकर मस्तक झुकाकर नमस्कार करते हैं ॥ ४६ ॥ इस शीलव्रतके प्रभावसे भक्तिसे नम्रीभूत हुए देवोंके भी आसन कंपायमान हो जाते हैं अथवा इस शीलव्रतके प्रभावसे इस संसारमें क्या२ महिमा प्राप्त नहीं होती है अर्थात् सबप्रकारकी महिमा प्राप्त होजाती है ॥ ४७ ॥ ब्रह्मचर्य व्रतको पालन करनेवाले मनुष्योंके चरणकमलोंको चक्रवर्ती आदि महापुरुष भी भक्तिके वशसे दबकर नमस्कार करते हैं, फिर भला अन्य राजाओंकी तो बात ही क्या है ॥ ४८ ॥

इस ब्रह्मचर्यव्रतके फलसे ही मनुष्योंको महा विभूतियोंसे सुशोभित स्वर्ग भी अपने घरका आंगन बन जाता है ॥ ४९ ॥ शीलव्रतको धारण करनेवाले धीर पुरुषोंको इंद्रकी भी विभूति प्राप्त होती है जो महा महिमासे सुशोभित होती है और जिसे सब देव नमस्कार करते हैं ॥ ५० ॥ इस ब्रह्मचर्यके फलसे मनुष्योंको नौ निधि, चौदह रत्न और छहो खण्ड पृथ्वीकी विभूतिसे सुशोभित चक्रवर्तीकी विभूति और उपभोग प्राप्त होते हैं ॥ ५१ ॥

इस ब्रह्मचर्यरूपी रत्नसे सुशोभित होनेवाले मनुष्य तीर्थंकर पदको प्राप्त होते हैं, जो तीनों लोकोंमें चमत्कार करनेवाला है और समस्त देवों वा इंद्रोंके द्वारा वंदनीय है ॥ ५२ ॥ इस ब्रह्मचर्यरूपी सिंहासन पर विराजमान हुआ मनुष्य इस संसारमें जो जो चाहता है वह चाहे तीनों लोकोंमें कहीं भी क्यों न हो, उसके पुण्यके प्रभावसे उसे अवश्य प्राप्त हो जाता है ॥ ५३ ॥ बहुत कहनेसे क्या लाभ है, थोड़ेसेमें इतना समझ लेना चाहिये कि संसारमें जो कुछ उत्तम सुख है वह सब ब्रह्मचर्यके फलसे ही मनुष्योंको प्राप्त होता है ॥ ५४ ॥

यह सुखकी खानि शीलव्रत स्वर्ग लोकमें भी दुर्लभ है परन्तु इस लोकमें मनुष्योंको सुगमतासे प्राप्त हो जाता है इसलिये चतुर पुरुषोंको क्या यह स्वीकार नहीं करना चाहिये ? अवश्य करना चाहिये ॥ ५५ ॥

शीलव्रतरूपी आभूषणोंसे सुशोभित होनेवाले मुनियोंको मुक्ति स्त्री भी आकर रागपूर्वक स्वयं स्वीकार करती है फिर भला स्वर्गकी देवांगनाओंकी तो बात ही क्या है ॥ ५६ ॥ उत्तम पुरुष इस शील-व्रतरूपी बहुमूल्य महारत्नको पाकर उसकी रक्षा करनेके लिये महा-प्रयत्न करते हैं ॥ ५७ ॥

इस ब्रह्मचर्य व्रतकी रक्षा करनेमें तत्पर रहनेवाले मनुष्य हाव-भाव विलासोंसे सुशोभित और वस्त्र व आभूषणोंसे विभूषित ऐसे स्त्रीके रूपको कभी नहीं देखते हैं ॥ ५८ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि स्त्रियोंका रूप देखनेसे चित्त मोहित हो जाता है यही समझकर उत्तम पुरुष अपने चित्तको शुद्ध रखनेके लिये स्त्रियोंके रूपको कभी नहीं देखते हैं ॥ ५९ ॥

ब्रह्मचारी पुरुष अपना ब्रह्मचर्य पालन करनेके लिये लड्डू आदि अत्यन्त उत्तम पदार्थ, दूध, अधिक घी और पौष्टिक पदार्थ आदिकोंको कभी सेवन नहीं करते हैं ॥ ६० ॥ पौष्टिक आहार करनेसे स्वप्नमें मनुष्योंका वीर्य च्युत हो जाता है तथा स्त्रियोंका समागम मिलनेपर उसके व्रत (ब्रह्मचर्य) का भँग हो जाता है। यही समझकर सम्यग्ज्ञानी पुरुषोंको अपने ब्रह्मचर्य व्रतकी पूर्ण रक्षा करनेके लिये विष मिले हुए अन्नके समान सब प्रकारके पौष्टिक आहारोंका त्याग कर देना चाहिये ॥ ६१-६२ ॥

ब्रह्मचारी पुरुषोंको अपना मुँह धोकर सदा स्नानकर, अँजन

लगाकर, आभूषण पहिनकर, सुगँधित द्रव्य लगाकर, माला, कोमल शय्या, कोमल आसन, धुले हुए वस्त्र तथा और भी राग उत्पन्न करनेवाले भोगोपभोगोंसे अपने शरीरका संस्कार नहीं करना चाहिये ॥ ६३-६४ ॥ अपने शरीरका संस्कार करनेसे कामाग्नि प्रगट हो जाती है यही समझकर उत्तम ब्रह्मचारियोंको अपने शरीरका संस्कार— अपने शरीरको विभूषित कभी नहीं करना चाहिये ॥ ६५ ॥

ब्रह्मचारियोंका हावभाव विलासोंसे भरी हुई, शृङ्गारको बढ़ाने- वाली और स्त्रियोंमें राग उत्पन्न करनेवाली कथाएँ न कभी करनी चाहिये और न कभी सुननी चाहिये ॥ ६६ ॥ शृङ्गारकी कथाएँ कहने सुननेसे ब्रह्मचारियोंको राग उत्पन्न होता है और राग उत्पन्न होनेसे उनका व्रत नष्ट होता है इसलिये ब्रह्मचारी लोग ऐसी कथाएँ कभी नहीं सुनते हैं ॥ ६७ ॥

इसीप्रकार जितेन्द्रिय पुरुष पहिले भोगे हुए भोगोंका स्मरण भी कभी नहीं करते हैं क्योंकि उनका स्मरण करनेसे मनकी स्थिरता नष्ट हो जाती है और मनकी स्थिरता नष्ट होनेके साथ साथ योगियोंके द्वारा निंदा करने योग्य ऐसा अत्यन्त राग उत्पन्न होता है ॥ ६८ ॥ पहिले भोगे हुए भोगोंको स्मरण करनेसे कामाग्नि प्रज्वलित हो उठती है इसलिये व्रती लोग पहिले भोगे हुए भोगोंको कभी स्मरण नहीं करते हैं ॥ ६९ ॥

व्रती लोग अपना चित्त शुद्ध करनेके लिये स्त्रियोंके साथ न तो कभी हँसी करते हैं न उनके साथ बात करते हैं न कथा वार्ता करते हैं न गोष्ठी (एकसाथ बैठना, उठना चलाना आदि) करते हैं और न उनके साथ प्रेम करते हैं ॥ ७० ॥

ब्रह्मचारी व्रती केवल पापोंकी शँकासे ही जिस घरमें स्त्रियां

रहती हैं, उसमें न तो सोते हैं, न बैठते हैं और न क्षणभर वह रहते हैं ॥ ७१ ॥ कोई २ बुद्धिमान् सांप आदि भयानक जन्तुओंसे भरे हुए घरमें ठहर सकते हैं परन्तु महा निंद्य और कलँक उत्पन्न करनेवाले स्त्रियोंके घरमें कभी नहीं ठहरते ॥ ७२ ॥ पहिले समयमें जो मुनि स्त्रियोंकी संगति पाकर नष्ट हो गये हैं उनकी कथा चतुर पुरुष शास्त्रोंमें सुनते ही हैं ॥ ७३ ॥

जिसप्रकार अग्निके सम्बन्धसे वर्तनमें रक्खा हुआ जल भी गर्म होजाता है उसीप्रकार स्त्रियोंके आश्रयसे उत्पन्न होनेवाली अग्निसे मनुष्योंका हृदय भी तप जाता है ॥७४॥ पहिले तो स्त्रियोंमें थोड़ेसे चित्तसे (ऊपरी मनसे) दृष्टिपात होता है अर्थात् मन स्त्रियोंके देखनेमें लगता है, फिर उनके समागमके लिये मनमें संकल्प होता है। तदनन्तर हृदयमें समस्त शरीरको संतप्त करनेवाली कामकी जलन उत्पन्न होती है, उस जलनसे पीड़ित होकर यह जीव लज्जा और अभिमान सबको छोड़ देता है। फिर कामाग्निसे सन्तप्त होकर और किसी सुन्दरीको एकांतमें पाकर सब व्रतोंको छोड़कर पापकर्ममें डूब जाता है ॥ ७५–७७ ॥

तदन्तर कामसेवन करनेसे उसके तप, ज्ञान, व्रत, कीर्ति, बड़प्पन, अभिमान आदि सब जलकर भस्म होजाते हैं ॥ ७८ ॥ इसप्रकार व्रतोंको भंग करनेवाले स्त्रियोंसे उत्पन्न हुए दोषोंको समझकर बुद्धिमानोंको जिसके देखने मात्रसे विष चढ़कर मनुष्य मर जाता है ऐसी दृष्टिविष सर्पिणीके समान स्त्रियोंके समागमका त्याग कर देना चाहिये ॥ ७९ ॥

जिसप्रकार हाथ पैर रहित और नाक कान रहित कुरूपा स्त्रीको छोड़ देते हैं उसीप्रकार व्रतियोंको दूरसे ही स्त्रियोंका त्याग कर देना

चाहिये ॥ ८० ॥ संसारमें अग्निकी ज्वालाके समान स्त्रियां समझी जाती हैं और मनुष्योंका मन मक्खनके समान समझा जाता है फिर भला वे दोनों एक स्थानमें मिलजानेपर विना अनर्थ किये किसप्रकार रह सकते हैं ॥ ८१ ॥

जो पुरुष इस लोक परलोक दोनों लोकोंमें दुःख देनेवाले स्त्रियोंके स्मरणको स्वप्नमें भी नहीं करते हैं संसारमें उन्हींका मन शुद्ध हो सकता है और तप, ज्ञान, यम, नियम आदि सब कुछ उन्हींका फल सकता है ॥ ८२ ॥ जो पुरुष स्त्रियोंके समागमको छोड़कर मन, वचन, काय तीनों योगोंको स्थिर कर तप करता है संसारमें उसीके व्रत निर्मल रीतिसे पल सकते हैं ॥८३॥ जो पुरुष उन्मत्त करनेवाली यौवन अवस्थामें तपश्चरण रूपी तलवारसे कामरूपी शत्रुको मारकर ब्रह्मचर्यको पालन करते हैं, संसारमें वे ही पुरुष धन्य कहलाते हैं और तीनों लोकोंमें वे ही पुरुष पूज्य गिने जाते हैं ॥ ८४ ॥

जिनका अत्यन्त दुर्लभ शीलरूपी रत्न स्त्री आदि चोरोंने कहीं स्वप्नमें भी हरण नहीं किया उन्हींका जन्म इस संसारमें सफल माना जाता है ॥ ८५ ॥ जिन्होंने यौवन अवस्थामें अनेक स्त्रियोंसे घिरे रहने पर भी और प्राण नाश होनेपर भी अपना ब्रह्मचर्य नहीं छोड़ा है उन्हींके ब्रह्मचर्यको मैं वास्तविक ब्रह्मचर्य मानता हूं ॥ ८६ ॥

यौवनरूपी ईंधनके संयोगसे तथा स्त्रीरूपी वायुकी प्रेरणासे और पौष्टिक आहाररूपी तैलसे यह कामरूपी अग्नि प्रगट होती है, उस अग्निको बुझानेके लिये धीरवीर पुरुषोंने शीलरूपी पानी ही बतलाया है। स्त्रियोंके सेवन करने आदि अन्य कार्योंसे वह अग्नि कभी नहीं बुझ सकती ॥ ८७-८८ ॥ जो मूर्ख स्त्रियोंके सेवन करने आदि कार्योंसे कामरूपी अग्निको बुझाना चाहता है वह मूर्ख अपनी कुबुद्धिके

कारण घीसे अग्निकी भारी ज्वालाको बुझाना चाहता है ॥ ८९ ॥ यही समझकर हे विद्वानों ! अपने मनमें समस्त विषयोंको त्यागकर यौवन अवस्थामें भी पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन करो ॥ ९० ॥

जो मनुष्य कामसेवनमें अत्यन्त लोलुपी होता हुआ अपने मस्तक पर सफेद बालोंको देखकर भी (बूढ़ा होकर भी) कामसेवनका त्याग नहीं करता वह मूर्ख अपने भाग्यसे ठगा जाता है ॥९१॥ दुर्बुद्धिको धारण करनेवाले जो मूर्ख वृद्धावस्थामें भी विषयोंकी आसक्तता नहीं छोड़ते वे पापकर्मके उदयसे कुत्तेके समान मरकर अनेक दुर्गतियोंमें परिभ्रमण करते हैं ॥ ९२ ॥

जो बूढ़ा होकर भी मृत्युपर्यन्त स्त्रीका सेवन करता है वह जिस-समय यमराजके द्वारा पकड़ा जाता है—मरता है उससमय वह महा-चोरके समान अत्यंत दुःखी होता है ॥९३॥ यही समझकर गृहस्थोंको यौवन अवस्थामें स्त्रीका स्वीकार करना चाहिये और वृद्धावस्थामें बाल सफेद होनेपर स्वर्ग मोक्ष प्राप्त करनेके लिये अवश्य ही ब्रह्म-चर्यका पालन करना चाहिये ॥ ९४ ॥

यह ब्रह्मचर्य समस्त गुणोंकी निधि है, स्वर्ग मोक्षके अद्वितीय कारण है, संसाररूपी महासागरसे पार करनेके लिये जहाज है, दुःख और संतापको दूर करनेवाला है, पापरूपी वनको जलानेके लिये महा अग्नि है और धर्मरूपी रत्नोंका घर है इसलिये हे भव्य ! तू अपने आत्माकी सिद्धिके लिये अत्यन्त सुदृढ़ शक्तिसे इस ब्रह्मचर्यका पालन कर ॥ ९५ ॥

यह ब्रह्मचर्य एक उत्तम देवता है, यह संसाररूपी महासागरसे पार कर देनेवाला है, नरकके द्वारको बंद करनेके लिये अत्यन्त मजबूत अर्गल या बेंडा है, पुण्य बढ़ानेवाला है, श्री तीर्थङ्कर परमदेव

भी इसकी सेवा करते हैं, इन्द्रादिक समस्त देव इसकी पूजा करते हैं, यह अत्यन्त आदर सत्कार देनेवाला है, सबमें सार है और समस्त गुणोंकी खानि है। हे मित्र! ऐसे इस ब्रह्मचर्यरूपी देवताकी सदा आराधना कर ॥ ९६ ॥

इसप्रकार सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमाका निरूपण कर अब कर्मोंका संवर वा निर्जरा करनेके लिये आरम्भ त्याग नामकी आठवीं प्रतिमाका निरूपण करते हैं ॥९७॥ जो पुरुष मन, वचन, कायसे छहो कायके जीवोंका नाश करनेवाले सब तरहके आरम्भोंका त्याग करता है उसके पुण्य बढ़ानेवाली आठवीं प्रतिमा होती है ॥ ९८ ॥

जो बुद्धिमान धर्मध्यान धारण कर और अनेक शास्त्रोंका पठन कर सदा अपना समय व्यतीत करता है वह व्रत पालन करनेवालोंमें सबसे मुख्य गिना जाता है॥ ९९ ॥ आरम्भ करनेसे अनेक जीवोंको दुःख देनेवाली हिंसा होती है, उस हिंसासे चारों गतियोंका कारण ऐसा महापाप उत्पन्न होता है और उस पापसे अत्यंत दुखी हुआ वह जीव दुःखरूपी सिंह व्याघ्रोंसे भरे हुए इस संसाररूपी वनमें सदा परि-भ्रमण किया करता है इसमें कोई संदेह नहीं है ॥१००–१०१॥

यही समझकर चतुर पुरुषोंको महापापका कारण ऐसे घोर आरम्भका त्यागकर हिंसासे सर्वथा रहित और अनेक गुणोंकी खानि ऐसे धर्मका सेवन करना चाहिये ॥१०२॥ आरम्भ त्याग प्रतिमाको धारण करनेवाले धीरवीर व्रती पुरुषोंको अपने आरम्भका त्याग कर-नेके लिये मन, वचन, काय और कृत कारित अनुमोदनासे पृथ्वी खोदना, कपड़े धोना, दीपक मसाल आदिका जलाना, वायु करना, वनस्पतियोंको तोड़ना, काटना, छेदना, गेहूँ, जौं आदि बीजोंको कूटना, पीसना, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय आदि

जीवोंको बाधा पहुँचाना वा उनकी ताड़ना करना आदि निन्द्य आरम्भोंका बहुत शीघ्र त्याग कर देना चाहिये ॥१०३–१०५॥

आरम्भ त्याग प्रतिमा धारण करनेवाले व्रतियोंको प्राण नष्ट होनेपर भी स्थूल जीवोंकी हिंसा करनेवाले और निंद्य ऐसे रथ आदि सवारियों पर चढ़कर कभी नहीं चलना चाहिये ॥ १०६ ॥ आरम्भ त्यागी चतुर पुरुषोंको दया धारण कर व्यापार आदिके महारम्भ, विवाहादिक कार्य और घर बनाना आदि आरम्भके कार्योंका सदाके लिये त्याग कर देना चाहिये ॥ १०७ ॥

जो पुरुष जीवोंकी हिंसा करनेवाले घर सम्बन्धी सब तरहके आरम्भोंका मन, वचन, कायसे त्याग कर धर्मसेवन करता है उसके आरम्भ त्याग नामका यह व्रत निर्मल रीतिसे पालन होता है ॥१०८ यह घर सम्बन्धी आरम्भ चारों गतियोंमें परिभ्रमण करानेवाला है, पापकी खानि है, नरकका मुख्य कारण है, स्वर्गरूपी घरको बन्द कर देनेके लिये किवाड़ है, रोग, क्लेश, भय आदिको देनेवाला है, अनेक जीवोंका घातक है, अपने और दूसरोंके लिये दुःखकी जड़ है, धर्मका शत्रु है, धीर-वीर चतुर मुनियोंके द्वारा त्याग करने योग्य है और झूठ चोरी आदि पापोंका सागर है और बड़ी कठिनतासे त्याग किया जाता है। जो पुरुष सन्तोष धारण कर इसका त्याग करता है वह अवश्य ही मोक्षस्थानको प्राप्त करता है ॥ १०९–१११ ॥

जो मनुष्य सब तरहके आरम्भोंका त्यागकर थोड़ा भी तप करता है, वह इसलोक तथा परलोक दोनों लोकोंमें तीनों लोकोंमें उत्पन्न हुए समस्त महासुखोंको प्राप्त होता है ॥ ११२ ॥ जो पुरुष आरम्भोंके साथ २ तप करता है उसका वह तप करना हाथीके

स्नानके समान व्यर्थ है, उस तपसे उसके कर्म कभी नष्ट नहीं होसकते ॥११३॥ जो पुरुष अपने व्रत पालन करनेके लिये अपनी सब शक्ति लगाकर पापरूप आरम्भोंका त्याग करता है वह सोलहवें स्वर्गके सुख भोगकर अनुक्रमसे मोक्ष प्राप्त करता है ॥ ११४ ॥

जिसने समस्त पापोंकी निर्जरासे रहित ऐसे आरंभका त्याग कर दिया है मैं उसीके जन्मको सफल मानता हूँ॥ ११५॥ यह घर सम्बन्धी आरंभ अत्यंत निंद्य है। जो इस आरंभका त्याग करता है उसीके तप और संवर होता है ॥ ११६ ॥ यही समझकर व्रती पुरुषोंको स्वयं स्वर्ग मोक्ष प्राप्त करनेके लिये अपनी पूर्ण शक्तिको प्रगट कर सब तरहके आरम्भोंका सदाके लिये त्याग कर देना चाहिये ॥ ११७ ॥

यह आरम्भ विद्वानोंके द्वारा निंद्य है, पाप और संतापकी खानि है, भयंकर नरकका मार्ग है, धर्मरूपी घरका चोर है, समस्त गुणोंके वनको जलानेके लिये अग्नि है और स्वर्ग मोक्षका एक अद्वितीय शत्रु है इसलिये हे भव्य ! तू इस सब तरहके आरम्भका सदाके लिये त्याग कर ॥ ११८ ॥

यह आरम्भ त्याग नामकी आठवीं प्रतिमाका व्रत समस्त सज्जनोंके द्वारा सेवा करने योग्य है, धर्मरूपी अमृतका कूआ है, पापरूपी वृक्षके लिये कुठार है, स्वर्ग देनेके लिये अत्यन्त समर्थ है, सब गुणोंका समुद्र है, मुक्तिको देनेवाला है और सुखोंका घर है। इस-लिये हे भव्य ! तू इस आरम्भ त्याग नामके व्रतको अर्थात् आठवीं प्रतिमाको अवश्य धारण कर ॥ ११९ ॥

इसप्रकार आठवीं प्रतिमाका स्वरूप वर्णन कर अब मोक्ष प्राप्त करनेके लिये पुण्य बढ़ानेवाली परिग्रहत्याग नामकी नौवीं प्रतिमाको

कहते हैं ॥ १२० ॥ जो पुरुष क्षेत्र, वास्तु, धन, धान्य, दास, पशु, आसन, शयन, कुप्य, भांड इन सब पाप बढ़ानेवाले दश प्रकारके परिग्रहोंमेंसे केवल वस्त्रोंको छोड़कर तथा अपने मनकी इच्छाको रोककर बाकीके सब परिग्रहोंका त्याग कर देता है उसके नौवीं प्रतिमा कही जाती है ॥ १२१-१२२ ॥

जो मनुष्य संतोषरूपी अमृतको पीकर सब तरहके परिग्रहोंका त्याग कर देता है उसके इस लोकमें भी आत्मासे उत्पन्न हुआ अनुपम सुख प्राप्त होता है ॥ १२३ ॥ सोना चांदी आदि धनके होनेसे कामका उद्रेक, माया, लोभ, क्रोध, असह्य मनका द्वेष, राग, चिंता, शोक, भय, आशा आदि सब होता है। यही समझकर व्रत धारण करनेवालोंको अपना धर्म सिद्ध करनेके लिये काली सर्पिणीके समान इस धनको स्वप्नमें भी ग्रहण नहीं करना चाहिये ॥ १२४-१२६ ॥

इस नौवीं प्रतिमाको धारण करनेवाले व्रतियोंको वीतरागताको सूचित करनेवाले वस्त्रोंको छोड़कर अन्य चिंता उत्पन्न करनेवाले, रोग उत्पन्न करनेवाले अधिक मूल्यके वस्त्र कभी ग्रहण नहीं करने चाहिये ॥ १२७ ॥ व्रती मनुष्योंको अपनी सेवा चाकरी करनेके लिये अपने पासमें अव्रती मनुष्य कभी नहीं रखना चाहिये ॥ १२९ ॥ विद्वान् त्यागियोंको अपने रहनेके लिये अत्यन्त ममता उत्पन्न करनेवाला और महा हिंसा करनेवाला मठ आदि कभी ग्रहण नहीं करना चाहिये ॥ १२८ ॥

इसी प्रकार व्रती मनुष्योंको अनेक जीवोंकी हिंसा करनेवाले हिंसाके पात्र, पाप बढ़ानेवाले और राग उत्पन्न करनेवाले गाय, घोड़ा आदि पशु भी नहीं रखने चाहिए ॥ १३० ॥ संसारमें जो जो

परिग्रह मनुष्योंके द्वारा निंद्य गिने जाते हैं, और जो व्रतोंमें दोष उत्पन्न करनेवाले हैं वे सब परिग्रह विष मिले हुए अन्नके समान व्रती लोगोंको छोड़ देने चाहिए ॥ १३१ ॥

जो मनुष्य लोभके कारण सोना, चांदी आदि धनको छोड़ नहीं सकता वह पुरुष पुरुष नहीं नपुंसक है, ऐसा नपुंसक मनुष्य आगे चलकर कर्मरूपी सेनाको किसप्रकार नष्ट कर सकता है ? ॥१३२॥ जो मनुष्य परिग्रहोंका त्याग किये विना ही मोक्षकी इच्छा करता है वह मूर्ख है। भला जो लंगडा मार्गमें गिरता पड़ता हुआ चलता है वह मेरुपर्वतको किसप्रकार उल्लंघन कर सकता है ? ॥ १३३ ॥

जो भाग्यहीन मनुष्य परिग्रहके साथ साथ मोक्षकी इच्छा करते हैं वे आकाशके फूलोंसे वंध्यापुत्रका मुकुट बनाना चाहते हैं ॥ १३४ ॥ जो मनुष्य परिग्रह रखते हैं उनके ध्यान सिद्ध होनेके लिए समस्त पापोंसे रहित और गुणोंकी खानि ऐसी मनकी शुद्धि होना अत्यंत कठिन है ॥ १३५ ॥

भगवान् जिनेन्द्रदेवने परिग्रहोंका त्याग मनुष्योंका मन शुद्ध करनेके लिये बतलाया है, तथा परिग्रहोंका त्याग किये विना व्रतोंका पालन करना (नौवीं प्रतिमा धारण करना) छिलके कूटनेके समान है—अर्थात् छिलके कूटनेसे जैसे चावल नहीं निकलते उसीप्रकार परिग्रहोंका त्याग किये विना यह प्रतिमा हो नहीं सकती ॥१३६॥ जिसप्रकार पत्थरकी नावपर बैठा हुआ मनुष्य अवश्य ही समुद्रमें डूबता है उसीप्रकार व्रती मनुष्य भी परिग्रहके भारसे इस संसार-सागरमें अवश्य डूबता है ॥ १३७ ॥

इसप्रकार परिग्रहके दोषोंको समझकर जो बुद्धिमान इन परिग्रहोंका त्यागकर देता है उसके पास स्वर्गरूपी लक्ष्मीके साथ साथ मुक्तिरूपी

भी अपने आप आ जाती है ॥ १३८ ॥ इस संसारमें जिसकी इच्छा धनादिकसे नष्ट होजाती है, संसारमें उसीको पुण्यवान मानता हूं और उसीसे ये पृथ्वीके सब गुण सुशोभित होते हैं ॥ १३९ ॥ जो उत्तम मनुष्य धनादिकमें संतोष धारण करता है उसके पास तीनों लोकोंमें रहनेवाली सब लक्ष्मी अपने आप आ जाती है ॥ १४० ॥ संतोष धारण करनेसे व्रती पुरुषोंको पुण्यकर्मके उदयसे इन्द्र, चक्रवर्ती, गणधर और तीर्थंकर आदिके समस्त उत्तम पद प्राप्त होते हैं इसमें कोई संदेह नहीं ॥ १४१ ॥

जो लोभी पुरुष धनसे अपना लोभ छो ; वे इस लोक और परलोकमें स्वर्ग मोक्षपर्यंत तकके सुख प्राप्त करते हैं ॥ १४२ ॥ निर्लोभी मनुष्य जिस प्रकार इस लोकमें यश, बडप्पन आदि प्राप्त करते हैं उसीप्रकार उन्हें परलोकमें भी अनेक प्रकारके सुख प्राप्त होते हैं ॥ १४३ ॥ लोभका त्याग करनेसे मन शुद्ध होता है, मन शुद्ध होनेसे ध्यान होता है, ध्यानसे कर्म नष्ट होते हैं और कर्म नष्ट होनेसे मोक्ष प्राप्त होती है इसमें कोई संदेह नहीं। तथा मोक्षमें विद्वानोंको समस्त विषयोंसे रहित, संसारमें अन्य कोई जिसकी उपमा नहीं ऐसा आत्मासे उत्पन्न हुआ परमोत्तम सारभूत अनंत सुख सदा प्राप्त होता रहता है ॥ १४४–१४५ ॥

विद्वानोंको संतोषके इसप्रकार गुण जानकर पाप उत्पन्न करनेवाला लोभ छोड़ देना चाहिए और परिग्रह त्याग नामका व्रत धारण करना चाहिये ॥ १४६ ॥ यह परिग्रह त्याग नामका व्रत समस्त गुणोंकी निधि है, धर्मात्मा लोगोंके द्वारा धारण किया जाता है, समस्त सुखोंका सागर है, मोक्ष प्राप्त करानेमें चतुर है, समस्त संसारमें पूज्य है और दुःख चिंता आदिसे दूर है, इसलिये हे भव्य ! निर्मल

गुणोंको प्राप्त करनेके लिये तू इस परिग्रह त्याग व्रतको (नौवीं प्रतिमाको) अवश्य धारण कर ॥ १४७ ॥

यह परिग्रह त्याग व्रत अनन्त गुणोंको देनेवाला है, अत्यन्त निर्मल है, स्वर्ग मोक्षमें पहुँचा देनेवाला है, धर्मध्यानका कारण है, पुण्यरूपी वृक्षोंके लिये बाग है, देवोंके द्वारा पूज्य है, चिंता आदि दोषोंसे रहित है, सुखका घर है, विद्वानोंके द्वारा सेवा करने योग्य है, अत्यन्त पवित्र है और हिंसादि पापोंसे सर्वथा रहित है । हे भव्य ! ऐसे परिग्रह त्याग व्रतको तू सदा धारण कर ॥ १४८ ॥ जो पुरुष मन, वचन, कायकी शुद्धता पूर्वक दर्शन प्रतिमासे लेकर परिग्रह त्याग नामकी नौवीं प्रतिमा तक नौ प्रतिमाओंका पालन करते हैं वे इस संसारमें श्रीजिनेन्द्रदेवके द्वारा मध्यम श्रावक कहे जाते हैं ॥ १४९ ॥

इसप्रकार आचार्य श्रीसकलकीर्ति विरचित प्रश्नोत्तर श्रावकाचारमें ब्रह्मचर्य, आरम्भत्याग, परिग्रहत्याग प्रतिमाओंका निरूपण करनेवाला यह तेईसवां सर्ग समाप्त हुआ ।

चौवीसवा सर्ग ।

जो श्री वर्द्धमानस्वामी जगत्पूज्य हैं, भव्यरूपी कमलोंके लिये सूर्य हैं, और गुणोंके समुद्र हैं ऐसे श्री महावीरस्वामीको मैं सिद्धपद प्राप्त करनेके लिये नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

ऊपर लिखे अनुसार परिग्रह त्याग प्रतिमाका निरूपण कर अब समस्त पापोंको शांत करनेके लिये संक्षेपसे पापरूप अनुमतिका त्याग करने रूप अनुमति त्याग नामकी दशवीं प्रतिमाको कहते हैं ॥ २ ॥

जो दयालु मनुष्य पापोंसे डरकर किसी आरम्भमें, घरके काममें, खेती करनेमें, व्यापारमें विवाहादि कार्योंमें तथा और भी ऐसे ही

कार्योंमें अपनी सम्मति नहीं देता है उसके पुण्य बढ़ानेवाली दशवीं उत्तम प्रतिमा होती है ॥ ३–४ ॥

संसारमें मनके संकल्प करने मात्रसे मनुष्योंको विना ही प्रयोजनके नरक तिर्यंच गतिका कारण ऐसा घोर पाप उत्पन्न होता है ॥ ५ ॥ शरीरसे और वचनसे तो कभी कभी पाप होता है परन्तु संसारमें मनकी प्रबलतासे मनुष्योंको निरन्तर घोर पाप लगता रहता है ॥ ६ ॥ विना वश किया हुआ यह मन महापापरूप कार्योंमें सम्मति देकर रात्रि दिन पाप करता रहता है ॥ ७ ॥

जो मूर्ख घरके आरम्भ करता है और जो उसमें सम्मति देता है उन दोनोंको एकसा पाप लगता है ऐसा श्री जिनेन्द्रदेवने कहा है ॥ ८ ॥ स्वयंभूरमणसमुद्रमें जो तन्दुल मत्स्य है वह महामत्स्यके पापोंका संकल्प करनेसे ही नरकमें जाकर पड़ता है ॥ ९ ॥ यही समझकर व्रती बुद्धिमानोंको पापोंसे डरकर हिंसा आदि पापरूप कार्योंमें तथा घरमें अपनी सम्मति कभी नहीं देनी चाहिये ॥ १० ॥

व्रती श्रावकको अपने वा दूसरेके घर नीरस वा सरस अनेक प्रकारके आहारमें जान बूझकर कभी सम्मति नहीं देनी चाहिये ॥ ११ ॥ चतुर व्रतियोंको राग छोड़कर अपने घर वा दूसरेके जहां कहीं कृत कारित अनुमोदना आदि दोषोंसे रहित आहार मिल जाय वहीं कर लेना चाहिये ॥ १२ ॥ जो व्रती घरसम्बन्धी समस्त कार्योंमें अपनी सम्मति देनेका त्याग कर देता है उसके किसी समयमें भी अशुभ कर्मोंका बन्ध नहीं होता ॥ १३ ॥

किसी प्रकारका संकल्प न करनेरूप तलवारके बलसे जिसने अपना चित्त जीत लिया है, उसके मोक्षके कारणकी प्राप्ति होना आदि सब मनोरथ सिद्ध होजाते हैं ॥ १४ ॥ जो व्रती ध्यान रूपी

तलवारसे अपने चँचल मनको वशकर तथा अत्यंत निस्पृह होकर समस्त आरम्भोंका त्याग कर रहते हैं, किसीमें अपनी सम्मति नहीं देते वे मनुष्य तीनों लोकोंमें धन्य गिने जाते हैं ॥ १५ ॥

जिसने अपना मन जीत लिया उसने समस्त इंद्रियोंको जीत लिया और कर्मोंके समूहको जीत लिया तथा सुखकी खानी ऐसा महापुण्य उसने प्राप्तकर लिया ॥ १६ ॥ इस दशवीं प्रतिमाको धारण करनेवाले व्रतियोंको पापरूप सम्मतिके त्य ग करदेनेसे परलोकमें चक्रवर्ती, इन्द्र और तीर्थंकरपदकी प्राप्ति होती है ॥ १७ ॥

जिसने अपने मनके संकल्प विकल्पोंके समूहको नाशकर अपना चित्त वशमें कर लिया है मैं इस संसारमें उसीका जन्म सफल मानता हूं ॥ १८ ॥ बहुत कहनेसे क्या लाभ है, थोड़ेसेमें इतना समझ लेना चाहिए कि जिन्होंने अपना पूर्ण उद्योत कर मन, वचन, कायसे सम्मति देनेका त्याग कर दिया है वही मनुष्य परलोकमें पूज्य और महापुरुष होता है ॥ १९ ॥

हे भव्य ! यह अनुमतित्याग व्रत शुभ गतियोंमें जानेका मार्ग है, मोक्षमहलकी सीढ़ियोंकी पंक्ति है, पापरूपी वनको जला देनेके लिये अग्नि है, धर्मरूपी रत्नोंका पिटारा है, समस्त पापोंसे रहित है और कर्मोंका शत्रु है इसलिये हे भव्य ! तू अपने आत्माको शुद्ध करनेके लिये इस अनुमतित्याग नामके व्रतको अवश्य धारणकर ॥२०॥

इस प्रकार दशवीं प्रतिमाका वर्णन कर अब धर्मके लिये उद्दिष्टाहार त्याग नामकी ग्यारहवीं प्रतिमाका निरूपण करते हैं ॥२१॥ जो गृहस्थ संसार शरीर और भोगोंसे विरक्त होकर तथा घर और कुटुम्बका त्याग कर मुनिराजके समीप जाता है, तथा वहां जाकर इंद्र चक्रवर्ती आदि महापुरुषोंके द्वारा पूज्य ऐसे मुनिराजके चरण-

कमलोंका आराधन कर और खण्ड वस्त्र धारण कर क्षुल्लककी दीक्षा धारण करता है, सदा मुनिराजके समीप रहता है और भिक्षा भोजन करता है उसके उद्दिष्ट त्याग नामकी ग्यारहवीं प्रतिमा होती है ॥ २२-२४ ॥

अपने व्रतोंको पालन करनेवाले क्षुल्लक श्रावकको दो तीन अथवा चार महिने बाद अपने मस्तकको मुडवा डालना चाहिए वा कचीसे कतरवा डालना चाहिए अथवा लोंच कर देना चाहिए ॥ २५ ॥ व्रत पालन करनेमें तत्पर रहनेवाले क्षुल्लक श्रावकको लीख जूं आदि पडनेके डरसे बाल नहीं रखना चाहिये और राग पाप वा हिंसा होनेके डरसे स्नान नहीं करना चाहिए ॥ २६ ॥

केशोंका लोंच करना वैराग्यको बढ़ानेवाला है, धीरवीर पुरुषोंको लोभका त्याग करनेवाला है, और कातर जीवोंको अपनी शक्ति बढ़ानेवाला है । इसलिये सदा लोंच करना ही अच्छा है ॥२७॥ ब्रह्मचर्यकी रक्षा करनेवाले व्रती क्षुल्लकोंको राग बढ़ानेवाले कोमल बिछोनेपर कभी नहीं सोना चाहिये अथवा कामोद्रेग होनेके डरसे वा पाप उत्पन्न होनेके डरसे ऐसे बिछाने पर कभी नहीं सोना चाहिये ॥२८॥

जो विद्वान् व्रती कोमल बिछोनेपर सोता है उसका ब्रह्मचर्य कामदेवके डरसे दूर भाग जाता है ॥२९॥ व्रती क्षुल्लकोंको शस्त्रोंपर सोजाना अच्छा परन्तु राग बढ़ानेवाले, पाप तथा कामको उत्पन्न करनेवाले ऐसे रुई आदिके बिछोने परसोना अच्छा नहीं ॥ ३० ॥ राग द्वेष और सुखका त्याग कर देनेवाले ब्रह्मचारी व्रतियोंको गद्दा आदि कोमल आसनों पर कभी नहीं बैठना चाहिये ॥ ३१ ॥

अपने आत्माको सुखमें तल्लीन कर देनेवाले जो व्रती गद्दा आदि कोमल आसनों पर बैठते हैं उनके ब्रह्मचर्यव्रत किसप्रकार पल

सकता है ? अर्थात् कभी नहीं ॥३२॥ ब्रह्मचारी क्षुल्लकोंको शौचके लिये पापरहित, वीतरागरूप, और सब तरहके भयोंसे रहित ऐसा कमण्डलु ग्रहण करना चाहिये ॥ ३३ ॥

जो अच्छी (अधिक मूल्यकी) धातुओंसे बना हो, जिसका मुँह छोटा हो, और जिसका मध्यदेश दिखाई न पड़ता हो ऐसा भय उत्पन्न करनेवाला कमण्डलु वा वर्तन चतुर व्रतियोंको कभी नहीं लेना चाहिये ॥३४॥ इसलिये जिसका मुँह बड़ा हो, जो योग्य हो, थोड़े मूल्यका हो, प्रासुक हो, जिसके रखनेमें किसी तरहका भय न हो और जिससे वा जिसके निमित्त किसी तरहकी हिंसा न होती हो ऐसा कमण्डलु ग्रहण करना चाहिये ॥ ३५ ॥

व्रती क्षुल्लकोंको कोपीन और खण्ड वस्त्र रखना चाहिये और वह ऐसा रखना चाहिये जिसके रखनेमें न तो राग हो न किसी तरहका भय हो, जो थोड़े मूल्यका हो और दूसरेके द्वारा दिया गया हो ॥३६॥ चतुर क्षुल्लकोंको प्राण नाश होनेपर भी अधिक मूल्यका और बड़ा वस्त्र कभी ग्रहण नहीं करना चाहिये क्योंकि ऐसा वस्त्र पाप राग चिंता शोक और भय आदि अनेक विकार व पाप उत्पन्न करनेवाला है ॥ ३७ ॥

जो कुमार्गगामी पुरुष लोभके कारण सुन्दर वस्त्रोंको ग्रहण करता है उनके उस वस्त्रके चले जाने आदिका सदा भय लगा रहनेके कारण धर्मध्यान आदि सब नष्ट होजाता है ॥३८॥ व्रती क्षुल्लकोंको पापके डरसे अप्रासुक जलसे कभी उन वस्त्रोंको नहीं धोना चाहिये क्योंकि उन वस्त्रोंके धोनेमें अनेक जीवोंकी हिंसा होगी ॥ ३९ ॥ जो व्रती अप्रासुक जलसे ही अपने वस्त्रोंको धो डालते हैं उनके अनेक जीवोंकी हिंसा होनेसे अहिंसाव्रत कभी नहीं पल सकता ॥ ४० ॥

व्रती क्षुल्लकोंको भिक्षाके लिये एक छोटासा पात्र रखना चाहिये और वह ऐसा होना चाहिये जिसके रखनेमें चोरी आदिका डर न हो, जो वीतराग रूप हो और जिसके रखनेमें अपनी मान मर्यादा व रक्षा करनेकी चिन्ता आदि न करनी पड़े ॥ ४१ ॥ व्रती क्षुल्लकोंको अधिक मूल्यकी थाली आदि कभी नहीं रखना चाहिये क्योंकि ऐसे पात्रोंके रखनेमें राग, द्वेष, चिन्ता, भय, शोक आदि सब विकार उत्पन्न हो　　४२ ॥

बहुमूल्यके पात्र रखनेमें धर्मध्यान नहीं हो सकता और न व्रत ही पल सकते हैं तथा उसके चोरी चले जानेसे मनुष्यके आर्तध्यान उत्पन्न होता है ॥ ४३ ॥ यही समझकर धर्मध्यानादिकमें तत्पर रहनेवाले क्षुल्लकोंको बहुमूल्यके और बड़े पात्र कभी ग्रहण नहीं करने चाहिये । उनको वीतरागताको सूचित करनेवाला और जो शंका चिन्ता आदि न करनेवाला हो ऐसा छोटा पात्र ही रखना चाहिये ॥ ४४ ॥ उस पात्रको लेकर सात मुहूर्त दिन चढ़ जानेपर योग्य समयमें क्षुल्लक व्रतीको योग्य भिक्षाके लिये चर्या करनी चाहिये ॥ ४५ ॥

क्षुल्लकोंको भिक्षाके लिये न तो शीघ्र गमन करना चाहिये न धीरे धीरे चलना चाहिये न देर करके जाना चाहिये और न मार्गमें खड़े होकर कुछ बातचीत करनी चाहिये ॥ ४६ ॥ सब जीवोंपर दया करनेवाले क्षुल्लकोंको अपने दोनों नेत्रोंसे चार हाथ भूमि देखकर यत्नाचार पूर्वक पैर रखना चाहिये ॥ ४७ ॥

भिक्षाके लिये चर्या करनेवाले क्षुल्लकको संसार शरीर और भोगोंमें वैराग्य धारण करते हुए निर्दोष श्रेष्ठ घरमें प्रवेश करना चाहिये ॥ ४८ ॥ यह घर गरीबका है वा धनीका है ऐसा विचार

संयमीको कभी नहीं करना चाहिये। तथा उसे घरकी पंक्तियोंमें अनुक्रमसे ही प्रवेश करना चाहिये बीचमें किसी घरको छोडना नहीं चाहिये ॥ ४९ ॥

संयमीको घरके दरवाजे तक जाना चाहिये, यदि भिक्षा मिल जाय तो लेलेना चाहिये, यदि न मिले दूसरे घरमें जाना चाहिये। भिक्षाके मिलने न मिलने दोनोंमें सन्तोष धारण करना चाहिये ॥५०॥ व्रती क्षुल्लकोंको अग्निपर विना पकाया हुआ आहार, वीज, कन्द, फल, पत्र, पुष्प, आदि निंद्य आहार कभी नहीं लेना चाहिये ॥५१॥

जो आहार स्वादिष्ट हो, गरम हो, जिसमें जीव हों और जो एक ही पात्रमें दो जगह रक्खा हो ऐसा आहार ब्रह्मचारी क्षुल्लकोंको कभी नहीं लेना चाहिये ॥ ५२ ॥ जो आहार कामाग्निको वढ़ानेवाला है और जो तीव्र है, ऐसे लड्डू आदि निंद्य आहार विषमिले अन्नके समान क्षुल्लकोंको सर्वथा नहीं लेना चाहिये ॥ ५३ ॥ जिससे जिह्वामें लंपटता आजाय और जो कामको उत्तेजित करनेवाला हो ऐसा दूध आदिसे मिला हुआ अन्न व्रती क्षुल्लकोंको त्याग कर देना चाहिये ॥ ५४ ॥

तदनन्तर क्षुधा रोगसे असमर्थ हुए उस क्षुल्लकको किसी एक घरमें बैठकर वह भिक्षामें प्राप्त हुआ भोजन खा लेना चाहिये। उस समय उसे अपनी जिह्वा इंद्रिय वशमें कर लेनी चाहिये और रूखा चिकना, ठण्डा गर्म, नमकीन, विना नमकका स्वाद रहित जैसा कुछ आ गया है वैसा सब भोजन उसे कर लेना चाहिये ॥ ५५–५६ ॥

पापसे डरनेवाले व्रती क्षुल्लकोंको अनेक पापोंका कारण और अनेक जंतुओंसे भरा हुआ ऐसा रात्रिका रक्खा हुआ दही अथवा छाछ कभी नहीं लेना चाहिये ॥ ५७ ॥ मांस, रुधिर, चर्म, हड्डी,

मद्य, जीवोंका वध और त्याग किया हुआ पदार्थ, ये सात प्रकारके भोजनके अन्तराय गिने जाते हैं, क्षुल्लकोंको इनको टालकर भोजन करना चाहिये ॥ ५८ ॥

जो व्रती भोजन करता हुआ मांसको देख लेता है उसके शक्तिको बढ़ानेवाला भोजनका अन्तराय गिना जाता है ॥ ५९ ॥ जो व्रती भोजन करता हुआ चार अँगुल प्रमाण रुधिरकी धाराको देख लेता है उसे भी भोजनका अन्तराय समझा जाता है ॥ ६० ॥ यदि भोजन करता हुआ व्रती गीले चमड़ेको देख ले अथवा सूके चमड़ेसे उसका स्पर्श होजाय या किसी कारणसे भोजनमें हड्डी आजाय तो वह भी भोजनका अन्त ाय माना जाता है ॥ ६१ ॥

व्रतियोंको मद्यकी धारा देखकर आहार छोड़ देना चाहिये और घी अथवा छाछ आदिमें दो इंद्रिय आदि जीवोंका घात होगया हो तो भी आहार छोड़ देना चाहिये ॥ ६२ ॥ त्याग किये हुए पदार्थोंका भक्षणकर लेनेसे व्रतोंका भंग होता है इसलिये व्रती मनुष्योंके लिये यह भी भोजनका अन्तराय माना जाता है ॥ ६३ ॥ हिंसाका त्याग करनेवाले चतुर पुरुषोंको विना अन्तरायके थोड़ासा भी अन्न नहीं छोड़ना चाहिये, सब खा लेना चाहिये क्योंकि अन्नके छोड़नेसे हिंसाकी प्रवृत्ति होती है ॥ ६४ ॥

यदि भोजनमें कोई अन्तराय आजाय तो वह भोजन खाया हो, वा न खाया हो, उद्दिष्ट त्यागीको वह अवश्य छोड देना चाहिये ॥ ६५ ॥ तदनंतर व्रती श्रावकको (उद्दिष्ट त्यागीको) प्रासुक जलसे आचमन (कुल्ला) कर लेना चाहिये और फिर अपना पात्र धोकर शीघ्र ही अपने गुरुके समीप चले जाना चाहिये ॥ ६६ ॥ गुरुको नमस्कार कर अपने हृदयको धर्मध्यानमें तल्लीन करनेवाले व्रतीको उनके मुखसे

ही चारों प्रकारका प्रत्याख्यान ग्रहण करना चाहिये ॥ ६७ ॥

इसप्रकार पाप रहित आहारकी प्रवृत्ति करनेवाले व्रती त्यागीको अपने जीवन पर्यंत प्रयत्न पूर्वक सदा इसीप्रकार आहार ग्रहण करना चाहिये ॥ ६८ ॥ व्रती त्यागियोंको अपनी शक्तिको प्रगट कर अनशन आदि बारह प्रकारका तप करना चाहिये तथा वेला तेला आदि भी करना चाहिये। संसारमें यह तप ही स्वर्गरूपी महलकी सीढ़ी है, मुक्तिको वश करनेवाला है, अत्यंत कठिन है, संसाररूपी समुद्रसे पार करनेवाला है, तथा इंद्र चक्रवर्ती और तीर्थंकर आदिके पद देनेवाला है। इसलिये कर्मोंसे डरनेवाले त्यागियोंको ऐसा तपश्चरण अवश्य करना चाहिये ॥ ६९–७१ ॥

व्रती त्यागियोंको अनेक उपवास करके भी पारणाके दिन नीच वा निंद्य क्रियाओंसे उत्पन्न हुआ और पाप बढ़ानेवाला आहार कभी नहीं लेना चाहिये ॥ ७२ ॥ यथायोग्य और निर्दोष आहार प्रतिदिन ग्रहण करना अच्छा परंतु एक महीनाके उपवासके बाद किये हुए पारणाके दिन सदोष आहार ग्रहण करना अच्छा नहीं ॥ ७३ ॥

जिस प्रकार यथायोग्य व्यवहार करनेवाले सद्गृहस्थोंकी शुद्धि बतलाई है उसीप्रकार क्षुल्लक वा मुनियोंकी भी भीक्षा शुद्धि कही गई है ॥ ७४ ॥ जो त्यागी सदोष आहार ग्रहण करते हैं उनके विषमिले दूधके समान अनेक उपवास, मौन, और वीरासन आदि स्थान सब व्यर्थ हैं ॥ ७५ ॥

समस्त व्रतोंमें अहिंसाव्रत ही प्रधान है, यह व्रत सब व्रतोंकी जड़ है और मोक्षका साधक है, वही अहिंसाव्रत सदोष आहार ग्रहण करनेवालोंके नहीं हो सकता क्योंकि सदोष आहार ग्रहण करनेसे छहों कायके जीवोंकी हिंसा होती है ॥ ७६ ॥ जो त्यागी सदोष

आहार ग्रहण करते हैं वे छहों कायके जीवोंकी विराधना करते हैं इसलिए जीवोंकी हिंसा होनेसे उनका आहार इस संसारमें संवेगको बढ़ानेवाला कैसे हो सकता है ? ॥ ७७ ॥

जो अज्ञानी मुनि सदोष आहारमें लीन रहता है वह गृहस्थपनेको प्राप्त होता है तथा हिंसा करनेके कारण वह दोनों ओरसे भ्रष्ट होता है क्योंकि गृहस्थपनेको प्राप्त होकर भी वह दान पूजा आदि गृहस्थोंके शुभ कर्म नहीं करता ॥७८॥ जो नीच गृहस्थाश्रम छोड़कर दीक्षा धारण करता है और फिर भी सदोष आहार ग्रहण करता है उसका दीक्षा लेना व्यर्थ ही समझना चाहिए ॥ ७९ ॥

जिह्वा लँपटी जो पुरुष महा निंद्य पापरूप आहार ग्रहण करता है वह अनेक जीवोंकी हिंसा करता है और इसीलिए संसारमें उसकी अपकीर्ति होती है ॥ ८० ॥ सदोष आहार ग्रहण करनेवाले व्रतियोंका हृदय निर्दय रहता है, इसलिए उनको परलोकमें भी सुख नहीं मिल सकता है, ऐसे लोगोंको परलोकमें पाप और दुर्गतियोंसे उत्पन्न हुए अनेक प्रकारके भारी भारी दुःख भोगने पड़ते हैं ॥ ८१ ॥

निर्दोष गृहस्थ पद अच्छा परंतु इंद्रिय सेवन, स्त्री जन्य दोष वा राग, द्वेष आदिसे कलंकित हुआ मनुष्योंका मुनिपद अच्छा नहीं ॥ ८२ ॥ एकवार प्राणोंका नाश करनेवाला हलाहल विष खा लेना अच्छा परंतु संसाररूपी समुद्रमें डुबानेवाला सदोष आहार ग्रहण करना अच्छा नहीं ॥ ८३ ॥ यही समझकर व्रती पुरुषोंको प्राण नाश होनेपर भी अभक्ष्यके समान सदोष आहारका सर्वथा त्याग कर देना चाहिए ॥ ८४ ॥

जो त्यागी निर्दोष आहार ग्रहण करते हैं उन्हींका तप, व्रत, यम आदि सब सफल हैं, उन्हींके तप यमादिक मोक्षरूपी वृक्षके बीज

हैं और पुण्यको अतिशय संचय करनेवाले हैं ॥ ८५ ॥ जिसने अपने समस्त इंद्रियोंके सुखोंका त्याग कर दिया है और वैराग्यरूपी जालमें फँसकर जिसने अपनी जीभको वशमें कर लिया है उसीका जन्म इस संसारमें सफल माना जाता है ॥ ८६ ॥

संसारसे भयभीत होनेवाले और भावनाओंमें तत्पर रहनेवाले व्रती त्यागियोंको स्वर्ग मोक्ष प्राप्त करनेके लिए प्रतिदिन धर्मध्यानपूर्वक रहना चाहिए ॥८७॥ श्रेष्ठ गुणोंको धारण करनेवाले त्यागियोंको दुख देनेवाले कर्म नाश करनेके लिए सदा प्रयत्न पूर्वक ध्यान और अध्ययनमें ही अपना समय बिताना चाहिये ॥ ८८ ॥ विद्वान् पुरुषोंको यह दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर सदा धर्मध्यान करते रहना चाहिये । विना धर्मध्यानके प्रमादमें एक घडी भी कभी नहीं खोनी चाहिये ॥ ८९ ॥

दूसरोंका दिया हुआ अन्न ग्रहण करके विरागी पुरुषोंको महा-पाप उत्पन्न करनेवाली और निंद्य विकथाएँ स्वप्नमें भी कभी नहीं करनी चाहिये ॥ ९० ॥ जो त्यागी दूसरेके घर आहार ग्रहण कर विकथा कहते हैं वे उस पापके भारसे मरकर परलोकमें बैल होते हैं ॥ ९१ ॥ बुद्धिमानोंको चोर कथा, राज कथा, भोजन कथा और स्त्री कथा कभी नहीं करनी चाहिये क्योंकि ये विकथाएं व्यर्थ ही पाप उत्पन्न करनेवाली हैं इसीप्रकार देश भाषा आदिकी अन्य ऐसी ही कथाएं भी विकथाएं हैं वे भी त्यागियोंको नहीं करनी चाहिये ॥९२॥

प्रमादमें डूबे हुए तथा विकथा करने सुननेवाले त्यागियोंका जन्म ही निरर्थक जाता है और उनकी ली हुई दीक्षा निःसन्देह व्यर्थ गिनी जाती है ॥९३॥ त्यागियोंको या तो मौन धारण करना चाहिये या श्रेष्ठ धर्मका उपदेश देना चाहिये या सिद्धांत शास्त्रोंका पठन-पाठन

करना चाहिये अथवा परमेष्ठियोंका ध्यान करना चाहिये ॥ ९४ ॥ अथवा व्रती त्यागियोंको अपने वैराग्यको सुदृढ़ बनानेके लिये अपने मनमें सदा कर्मोंको नाश करनेवाली सारभूत बारह अनुप्रेक्षाओंका चिंतवन करना चाहिये ॥ ९५ ॥

धर्मात्मा त्यागियोंको मोक्ष प्राप्त करनेके लिये अपने मनमें उत्तम क्षमा मार्दव आर्जव शौच सत्य संयम तप त्याग आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य इन दस धर्मोंका सदा चिंतवन करते रहना चाहिये ॥९६॥ चतुर त्यागियोंको तीर्थंकरकी विभूति देनेवाली दर्शन विशुद्धि आदि सोलहकारण भावनाओंका चिंतवन सदा करते रहना चाहिये ॥९७॥

व्रती त्यागियोंको स्वर्गमोक्ष प्राप्त करनेके लिये आज्ञाविचय, अपाय विचय, विपाक विचय, संस्थानविचय ये चारों प्रकारके धर्मध्यान सदा धारण करते रहना चाहिये ॥ ९८ ॥ बुद्धिमान त्यागियोंको अपने मनके समस्त संकल्प विकल्प छोडकर अनंत कर्मोंके समूहको नाश करनेवाली, अपने आत्माके चिंतवन करनेकी भावना सदा करते रहना चाहिये ॥ ९९ ॥

चतुर त्यागियोंको अपने कर्म नाश करनेंके लिये समता वंदना आदि छहों प्रकारके आवश्यक प्रयत्न पूर्वक रात दिन पालन करते रहना चाहिये ॥ १०० ॥ धीरवीर त्यागियोंको प्राण नाश होनेपर भी व्रतोंके दोषोंको नाश करनेवाले और सब प्रकारके सुखोंकी खानि ऐसे सर्वोत्तम आवश्यक कभी नहीं छोड़ने चाहिये ॥ १०१ ॥

जिसप्रकार विना दांतोंके हाथी शोभायमान नहीं होता, विना दाढोंके सिंह शोभायमान नहीं होता और विना दानके गृहस्थ शोभायमान नहीं होता उसीप्रकार विना आवश्यकोंके संयमी भी शोभायमान नहीं होता ॥ १०२ ॥

पूर्ण व्रतोंको पालन करनेवाले त्यागियोंको सबसे पहिले आव-श्यकोंका पालन करना चाहिये और फिर ध्यान अध्ययन आदि अन्य समस्त कार्य करने चाहिये ॥१०३॥ पुस्तक, जल, पात्र, वस्त्र अथवा और भी धर्मोपकरण जो कुछ दयालु व्रतियोंको लेना वा रखना हो वह सब मुलायम उपकरणसे वारवार देख शोधकर तथा उस पदार्थ वा स्थानको अच्छीतरह देखकर उठाना वा रखना चाहिये ॥ १०४-१०५॥

इसप्रकार चतुर त्यागियोंको जीवोंके दुःख दूर करनेके लिए किसी पदार्थको उठाने वा रखनेमें प्रत्येक पदार्थको देख व शोध लेना चाहिये ॥ १०६ ॥ दिनमें कभी नींद नहीं लेनी चाहिये क्योंकि दिनमें नींद लेना प्रमाद बढ़ानेवाला, पाप उत्पन्न करने-वाला, और समस्त दोषोंको प्रगट करनेवाला है इसलिये पूर्ण व्रतोंको न पालनेवाले क्षुल्लकोंको भी दिनमें नहीं सोना चाहिये ॥ १०७ ॥ चतुर त्यागियोंको यत्नपूर्वक भूमिपर संस्तर करना चाहिये । वह संस्तर शरीरके समान हो बड़ा न हो, वीतरागरूप हो और स्त्री जन्तु आदिसे सर्वथा रहित हो ॥ १०८ ॥

बुद्धिमानोंको दिनमें अथवा रातमें तीनों समय अथवा सदा कर्मरूपी ईन्धनको जलानेके लिये अग्निके समान ऐसा कायोत्सर्ग अवश्य करना चाहिये ॥ १०९ ॥ उत्तम व्रतियोंको पहिले तो अपने आवश्यक करने चाहिये और फिर रातमें डेढ़ पहर (साडे चार घँटे) रात बीत जानेपर केवल परिश्रमको शांत करनेके लिये दो घड़ी नींद लेनी चाहिये ॥ ११० ॥ परलोकको सिद्ध करनेवाले और इंद्रिय सम्बन्धी सुखोंका त्याग कर देनेवाले उत्तम व्रतियोंको अपने व्रत पालन करनेके लिये ब्रह्मचर्य आदि व्रतोंको नाश करनेवाली अधिक नींद कभी नहीं लेनी चाहिये ॥ १११ ॥

व्रतियोंको तीव्र निद्रा दूर करनेके लिये और सुखका त्याग कर देनेके लिए धनुषके आकारकी शय्या बनानी चाहिए वा दंडाकार सोना चाहिए अथवा मृतकासनसे सोना चाहिए ॥ ११२ ॥ संयमियोंको रात्रिके पिछले पहर शय्यासे उठकर छहों आवश्यकोंके अन्तर्गत रहनेवाला धर्मध्यान अवश्य करना चाहिए ॥ ११३ ॥ बहुत कहनेसे क्या, थोड़ेसेमें इतना समझ लेना चाहिये कि घर गृहस्थीका त्याग करनेवाले क्षुल्लकोंको अपना सदाका समस्त समय धर्मध्यानपूर्वक ही व्यतीत करना चाहिए ॥ १४ ॥

जो बुद्धिमान मन, वच कायकी शुद्धतापूर्वक इन ग्यारह प्रतिमाओंका पालन करते हैं वे इस संसारमें श्री तीर्थङ्कर परमदेवके द्वारा उत्तम श्रावक कहे जाते हैं ॥ ११५ ॥ जो जीव इस संसारमें व्रत और चारित्रके आचरण करनेसे ही लोगोंके द्वारा सर्वथा पूज्य हुए हैं वे ही संसारमें धन्य हैं और वे ही संसारमें पूज्य हैं ॥ ११६ ॥ जो उत्तम श्रावक (क्षुल्लक) स्वर्ग मोक्ष प्राप्त करनेके लिए व्रत पालन करता है तो उस धर्म प्रभावसे वह स्वर्गकी ऐसी सम्पदा प्राप्त करता है जो समस्त गुणोंकी निधि है, सब देवोंके द्वारा पूज्य है, मतिज्ञान, श्रुतिज्ञान, अवधिज्ञान इन तीनों ज्ञानोंसे सुशोभित है, सबमें सारभूत है, आठों ऋद्धियोंका घर है और निरुपम गुणोंकी खानि है ॥११७॥

उत्तम श्रावक अपने निरुपम (उपमारहित) व्रतोंके पालन करनेसे सोलहवें अच्युत स्वर्गको प्राप्त करता है। वह अच्युत स्वर्ग सब गुणोंका सागर है, समस्त भोगोंका एकमात्र स्थान है, अनेक गुणोंसे भरपूर है, ज्ञान और ऋद्धियोंसे सुशोभित है, सब प्रकारके दुःखोंसे रहित है और पुण्यकी जड़ है ॥ ११८ ॥ उत्तम श्रावकोंको उनके द्वारा पालन किये गये उत्तम व्रतोंसे उत्पन्न हुए पुण्यसे चक्र-

र्तियोंका उत्तम पद प्राप्त होता है। वह चक्रवर्तियोंका पद छहों खण्ड पृथ्वीसे उत्पन्न हुए सुखोंका घर है और नौनिधि तथा चौदह रत्नोंसे सुशोभित है ॥ ११९ ॥

उत्तम श्रावकोंको व्रतोंके प्रभावसे श्री तीर्थङ्करकी विभूति प्राप्त होती है। यह तीर्थङ्करकी विभूति इन्द्र चक्रवर्तियोंके द्वारा पूज्य है, तीनों लोकोंमें पूज्य है, घोर तपश्चरण करनेवाले महा मुनिराज भी घोर तपश्चरणके द्वारा इसकी प्रार्थना करते हैं, यह अनन्त गुणोंकी खानि है, अत्यन्त निर्मल है, परम सुखका घर है,और मुक्तिको देनेवाली है। ऐसी यह तीर्थङ्करकी विभूति उत्तम श्रावकोंको प्राप्त होती है ॥ १२० ॥

बुद्धिमानोंको इस उत्तम गृहस्थधर्मके प्रभावसे अनुक्रमसे मोक्ष प्राप्त होती है। इस मोक्षको मुनिराज भी श्रेष्ठ तपश्चरणके द्वारा प्रार्थना करते हैं, यह जन्म जरा मरणसे रहित है, अनुपम गुणोंसे सुशोभित है और समस्त सुखोंका सागर है ॥ १२१ ॥ उत्तम मनुष्य गृहस्थ धर्मसे उत्पन्न हु. ुण्यके प्रभावसे तीनों लोकोंमें जो सुख सबसे उत्तम है उनको पाकर अनुक्रमसे समस्त दुःखोंसे रहित और सुखका समुद्र ऐसे मोक्षरूप परम स्थानको प्राप्त होते हैं ॥१२२॥ श्री जिनेन्द्रदेवने यह उत्तम ी दो प्रकारका बतलाया है–एक मुनियोंका और दूसरा गृहस्थोंका। मुनियोंका धर्म अत्यंत कठिन है। जो इसे पालन नहीं कर सकते उन्हें गृहस्थोंके ये व्रत अवश्य पालन करने चाहिये ॥ १२३ ॥

यह गृहस्थ धर्म संसाररूपी समुद्रसे पार कर देनेवाला है, सुख देनेवाला है, स्वर्गरूपी घरको उघाड़नेवाला है, नरकके द्वारके किवाड़ोंको बंद कर देनेवाला है, अनेक गुण प्रगट करनेवाला है, सबमें

सारभूत है, अनुक्रमसे मोक्ष प्राप्त करानेवाला है, इसमें उत्तम मध्यम जघन्य सब प्रकारके व्रत पालन किये जाते हैं, और यह समस्त दोषोंसे रहित है। हे विद्वानो ! तुम लोग स्वर्ग मोक्ष प्राप्त करनेके लिये ऐसे इस गृहस्थ धर्मका सेवन करो ॥ १२४ ॥

जो चतुर पुरुष इस गृहस्थ धर्मका पालन करते हैं वे मनुष्य और देवोंके समस्त सुख पाकर तथा सबके द्वारा पूज्य ऐसे तीर्थंकर परमपदको पाकर और केवलज्ञानकी परम विभूतिको पाकर अनुक्रमसे मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ १२५ ॥ जो पुरुष भक्तिपूर्वक इस श्रावकाचार ग्रंथका पठन पाठन करते हैं वे उन आचरणोंका पालन कर देव मनुष्योंके सब सुख पाते हैं और अन्तमें मोक्षपदको प्राप्त होते हैं ॥ १२६ ॥

जो बुद्धिमान अपने परिणामोंको शुद्धकर इस श्रावकाचारका पठन पाठन करते हैं वे इस संसारमें अपनी निर्मल कीर्ति फैलाते हैं तथा अनेक गुण देनेवाले शुभ अशुभ पदार्थोंको जानकर और समस्त पापोंका त्याग कर अतिशय पुण्यको प्राप्त होते हैं ॥ १२७ ॥ जो पुरुष इस ग्रन्थको गुणी श्रावकोंके लिये अथवा अपने पुत्रोंके लिये पढ़ाते हैं अथवा जैनी श्रावकोंके मध्यमें बैठकर इसका व्याख्यान करते हैं, सुनाते हैं वे ज्ञान दानके प्रभावसे निर्मल केवलज्ञानको पाकर मोक्षको प्राप्त करते हैं ॥१२८॥ जो गृहस्थ एकाग्रचित्तकर बड़ी भक्तिसे पुण्य बढ़ानेवाले इस ग्रन्थको सुनते हैं वे उस ज्ञानसे और निर्मल चारित्रको धारण करनेसे तीनों लोकोंके सुख पाकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ १२९ ॥

हे पुण्यवान मनुष्यो ! यह ग्रंथरूपी अमृत संवेग और धर्मको उत्पन्न करनेवाला है, गुणोंसे सुशोभित है, गृहस्थोंके समस्त श्रावका-

चारको कहनेवाला है और सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञानरूपी निर्मल जलसे भरा हुआ है। हे पुण्यवानों, ऐसे इस ग्रंथरूपी अमृतका तुम लोग पान करो, अर्थात् इसका पठनपाठन मनन श्रवण आदि करो ॥ १३० ॥

जो राग द्वेष रहित और अनेक शास्त्रोंके जानकार मुनि इसीके समान किसी दिगम्बर आचार्यके बताये हुए शास्त्रोंसे श्रावकाचारको कहनेवाले इस ग्रंथका शोधन करते हैं वा इसका निरूपण करते हैं वे भी अनंत पुण्यके भागी होते हैं ॥ १३१ ॥ यह उपासकाचार ग्रन्थ अर्थरूपसे तो भगवन् अरहंत देवके मुखसे प्रगट हुआ है, गणधर देवोंके द्वारा अनेक प्रकारके अक्षरोंसे गूँथा गया है और इस संसारमें मुनिराज सकलकीर्तिके द्वारा विस्तारताको प्राप्त हुआ है ॥ १३२ ॥

जो तीर्थङ्कर परमदेव तीनों लोकोंमें इंद्रादिकोंके द्वारा प्रतिदिन पूज्य हैं, जो संसाररूपी समुद्रसे पार कर देनेवाले हैं, जो गणधर और मुनिराजोंके द्वारा वंदनीय हैं, जो अनंत सुख आदि निर्मल गुणोंसे सुशोभित हैं और संसारमें जिनकी कोई उपमा नहीं है ऐसे श्री तीर्थंकर परमदेवके चरणकमलोंको मैं निर्मल बुद्धि प्राप्त करनेके लिये नमस्कार करता हूँ ॥१३३॥ जो समस्त इन्द्रादि देवोंके द्वारा पूज्य हैं, अनुपम गुणोंसे सुशोभित हैं और इन्द्रिय तथा कामदेवको जीतनेवाले हैं, ऐसे पूर्व विदेहमें विराजमान श्री सीमंधर तीर्थंकर परमदेवकी मैं उनके समस्त गुण प्राप्त करनेके लिये स्तुति करता हूँ ॥१३४॥

जो तीर्थंकर परमदेवकी सारभूत विभूतिको प्राप्त हुए हैं, इन्द्रादिक देव भी जिनकी सेवा करते हैं, जो अनन्त गुणोंकी खानि हैं, अनन्त गुण देनेवाले हैं, और जिनकी उपमा संसारमें कोई नहीं है ऐसे भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों कालोंमें होनेवाले अनन्तानन्त

तीर्थङ्करोंके पुण्य बढ़ानेवाले चरणकमलोंको मैं केवल मोक्ष प्राप्त करनेके लिये नमस्कार करता हूँ ॥ १३५ ॥

जो सिद्ध भगवान् लोकशिखरपर विराजमान होते हैं, सम्यक्त्व आदि आठों गुणोंसे सुशोभित हैं, संसारमें जिनकी कोई उपमा नहीं, जिन्हें अनेक मुनिराजोंके समूह भी नमस्कार करते हैं, जो शरीरके भारसे रहित हैं, सारभूत अनंत सुखोंकी खानि हैं, अत्यंत निर्मल हैं, जो मध्य अन्त रहित हैं और जो धर्मको प्रदान करनेवाले हैं, ऐसे श्री सिद्ध भगवानके समस्त गुण प्राप्त करनेके लिये मैं उनका प्रतिदिन ध्यान करता हूं ॥ १३६ ॥

जो आचार्य सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, तप और वीर्य इन पांचों आचारोंको स्वयं पालन करते हैं और शिष्योंसे पालन कराते हैं तथा जो शुद्ध आचरणोंके द्वारा मोक्षके कारण बने रहते हैं ऐसे समस्त आचार्योंको मैं सदा नमस्कार करता हूं ॥ १३७ ॥ जो उपाध्याय ज्ञान देनेवाले और पूर्वरूप श्रुतज्ञानको स्वयं पढ़ते हैं और अपने शिष्य मुनियोंको पढ़ाते हैं ऐसे उपाध्याय परमेष्ठीके चरणकमलोंकी मैं शुभ श्रुतज्ञान प्राप्त करनेके लिये स्तुति करता हूं ॥ १३८ ॥

जो मुनिराज सद्धर्मरूपी महासागरके मध्यमें विराजमान हैं, जो रत्नत्रयसे सुशोभित हैं, जिन्होंने अपने ध्यानसे समस्त पापरूपी विष धोडाला है, जो स्वर्ग मोक्षको सिद्ध करनेवाले हैं, अनंत गुणोंको धारण करनेवाले हैं, जो तपश्चरणरूपी धनसे ही धनी हैं, और जो रत्नत्रयमें सदा लीन रहते हैं ऐसे मुनिराजोंके समस्त गुण प्राप्त करनेके लिए मैं उनके चरणकमलोंको सदा नमस्कार करता हूं॥१३९॥

यह श्री तीर्थङ्कर परमदेवका शासन सब सुखोंकी खानि है,

समस्त भव्योंका हित करनेवाला है, विद्वानोंके द्वारा पूज्य है, इन्द्रादि समस्त देव भी इनकी पूजा करते हैं, यह तीनों लोकोंमें सर्वोत्तम है, और जिनका मन संसारसे भयभीत है उनके लिये परम शरण है, ऐसा यह श्री तीर्थङ्कर परमदेवका शासन (जैनमत) सदा जयशील हो ॥ १४० ॥

इस संसारमें सम्यग्ज्ञान ही सार है, गणधर और मुनिराज भी इसकी सेवा करते हैं, यह समस्त तत्त्वोंको प्रगट करनेके लिए दीपकके समान है, समस्त दोषोंसे रहित है, श्री जिनेन्द्रदेवने स्वयं इसका निरूपण किया है, देव विद्याधर सब इसकी पूजा करते हैं और यह समस्त सुखोंकी निधि है, ऐसे सम्यग्ज्ञानको प्राप्त करनेके लिए मैं उसे नमस्कार करता हूं ॥ १४१ ॥

यह उपासकाचार (प्रश्नोत्तर श्रावकाचार) ग्रंथ देवोंके द्वारा भी पूज्य है, उत्तम धर्मका निरूपण करनेवाला है, अनेक गुणोंसे भरपूर है, उत्तम पुण्यका कारण है और श्री सकलकीर्ति मुनिराजका बनाया हुआ है, ऐसा यह प्रश्नोत्तर श्रावकाचार संसारभरमें जयशील हो ॥ १४२ ॥ यह ग्रंथ न तो कीर्ति बढ़ानेके लिए बनाया गया है, न किसी लाभके लोभमें बनाया है और न अपने कवि होनेके अभिमानसे बनाया है किन्तु इस संसारमें अपना कल्याण करनेके लिए तथा दूसरोंका कल्याण करनेके लिए और अपने आत्माको शुद्ध करनेके लिए (परलोक सुधारनेके लिए) ही मैंने यह ग्रंथ बनाया है ॥ १३३ ॥

अपने अज्ञानके कारण अथवा प्रमादके कारण इसमें अक्षर स्वर संधि पद मात्रा आदि जो कुछ कम हो वह सब ज्ञानी मुनिराजोंको क्षमा कर देना चाहिए ॥ १४४ ॥ इस ग्रन्थकी संख्या

मुनिराजोंने दोहजार आठसौ अस्सी (२८८० श्लोक) बतलाई है। ऐसा यह ग्रंथ इस पृथ्वीपर जबतक समय रहे तबतक वृद्धिको प्राप्त होता रहे ॥ १२५ ॥

इसप्रकार आचार्य श्री सकलकीर्तिविरचित प्रश्नोत्तर श्रावकाचारमें अनुमतित्याग और उद्दिष्टत्याग नामकी उत्तम प्रतिमाओंको निरूपण करनेवाला यह चौबीसवां सर्ग समाप्त हुआ।